ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
स्वभाव अध्यात्म है—अध्याय—8 (प्रवचन—पहला)

श्रीमद्भगवद्गीता (अथ अष्टमोऽध्यायः)
अर्जुन उवाच
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।।1।।
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।2।।
श्रीभगवानुवाच
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।।3।।
अर्जुन बोला, हे पुरुषोत्तम, जिसका आपने वर्णन किया, वह ब्रह्म क्या है, और अध्यात्म क्या है तथा कर्म क्या है, और अधिभूत नाम से क्या कहा गया है तथा अधिदैव नाम से क्या कहा जाता है?

और हे मधुसूदन, यहां अधियज्ञ कौन है, और वह इस शरीर में कैसे है, और युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अंत समय में आप किस प्रकार जानने में आते हो?

श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, परम अक्षर अर्थात जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानंदघन परमात्मा तो ब्रह्म है और अपना स्वरूप अर्थात स्वभाव अध्यात्म नाम से कहा जाता है तथा भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला जो विसर्ग अर्थात त्याग है, वह कर्म नाम से कहा गया है।

अर्जुन के प्रश्नों का कोई अंत नहीं है। किसी के भी प्रश्नों का कोई अंत नहीं है। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मनुष्य के मन में प्रश्न लगते हैं। और जैसे झरने नीचे की तरफ बहते हैं, ऐसा मनुष्य का मन प्रश्नों के गड्ढों को खोजता है।

कृष्ण जैसा व्यक्ति भी मौजूद हो, तो भी प्रश्न उठते ही चले जाते हैं। और शायद उन्हीं प्रश्नों के कारण अर्जुन कृष्ण को भी देख पाने में समर्थ नहीं है। और शायद उन्हीं प्रश्नों के कारण अर्जुन कृष्ण के उत्तर को भी नहीं सुन पाता है।

जिस मन में बहुत प्रश्न भरे हों, वह उत्तर को नहीं समझ पाता है। क्योंकि वस्तुतः जब उत्तर दिए जाते हैं, तब वह उत्तर को नहीं सुनता; अपने प्रश्नों को ही, अपने प्रश्नों को ही भीतर गुंजाता चला जाता है।

कृष्ण कहते हैं जरूर; अर्जुन तक पहुंच नहीं पाता है। दुविधा है; लेकिन ऐसी ही स्थिति है। जब तक प्रश्न होते हैं मन में, तब तक उत्तर समझ में नहीं आता। और जब प्रश्न गिर जाते हैं, तो उत्तर समझ में आता है। और प्रश्न से भरा हुआ मन हो, तो कृष्ण भी सामने खड़े हों, साक्षात उत्तर ही सामने खड़ा हो, तो भी समझ के बाहर है। और मन से प्रश्न गिर जाएं, तो पत्थर भी पड़ा हो सामने, तो भी उत्तर बन जाता है।

निष्प्रश्न मन में उत्तर का आगमन होता है। प्रश्न भरे चित्त में उत्तर को आने की जगह भी नहीं होती। इतनी भीड़ होती है अपनी ही कि उत्तर के लिए प्रवेश का मार्ग भी नहीं मिलता है।

अर्जुन पूछे चला जाता है। ऐसा भी नहीं है कि समझने की कोशिश न करता हो; पूरी कोशिश करता है। लेकिन बहुत बार समझने की कोशिश ही समझने में बाधा बन जाती है। जब भी मन कोशिश करता है, तो तनावग्रस्त हो जाता है, खिंच जाता है। उस खिंची हुई, तनी हुई हालत में कुछ भी समझ नहीं आता है।

समझने की कोशिश भी जहां नहीं है, सिर्फ पी लेने का भाव है; पूछने का भी जहां खयाल नहीं है, जो मिल जाए, उसे प्राणों में संजो लेने की आकांक्षा है; खींच लेने की भी आतुरता नहीं है कि यही मैं खींच लूं, जान लूं, पा लूं, द्वार खोलकर प्रतीक्षा करने की जहां हिम्मत है, वहां उत्तर चुपचाप, बिना पदचाप किए भीतर चला आता है।

और बड़े-बड़े प्रश्न पूछने से उत्तर मिल जाएगा, ऐसा भी नहीं है। मन बड़े-बड़े प्रश्न खड़े कर देता है। लेकिन जब तक मन प्रश्न खड़े करता रहता है, तब तक छोटा भी उत्तर नहीं मिलता, क्योंकि मन ही बाधा है।

अर्जुन प्रश्नों की एक कतार खड़ी करता है। इसके पहले कृष्ण उत्तर देते रहे हैं। पिछले सात अध्यायों में उन्होंने बहुत उत्तर दिए हैं। वह घूम-घूमकर नए-नए प्रश्नों के नाम से फिर पुरानी-पुरानी बातें खड़ी कर लेता है। वह फिर पूछता है। और एक बात भी नहीं पूछता, यह भी थोड़ी समझ लेने जैसी बात है।

वह पूछता है, हे पुरुषोत्तम, ब्रह्म क्या है?

प्रश्न का अंत नहीं होता, यद्यपि समस्त प्रश्नों का अंत ब्रह्म के प्रश्न के साथ हो जाता है। उसके बाद प्रश्न बचते नहीं। ब्रह्म के बाद भी कोई प्रश्न शेष रह जाएगा? ब्रह्म तो दि अल्टिमेट क्वेश्चन है, आखिरी सवाल है। इसके बाद पूछने को क्या बचता होगा? लेकिन पूरी कतार है।

अर्जुन पूछता है, ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत क्या है? अधिदैव क्या है? यहां अधियज्ञ कौन है? इस शरीर में वह कैसे है? और युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अंत समय में आप किस प्रकार जानने में आ जाते हो?

ऐसा भी नहीं लगता कि किसी भी एक प्रश्न में उसकी बहुत उत्सुकता होगी! वह इतनी त्वरा से, इतनी तीव्रता से सवाल पूछ रहा है कि लगता है, सवाल पूछने के लिए ही सवाल पूछे जा रहे हैं। अन्यथा ब्रह्म के बाद कोई सवाल नहीं है। और ब्रह्म के बाद जो सवाल पूछता है, वह कहता है, ब्रह्म में उसकी बहुत उत्सुकता और जिज्ञासा नहीं है। अन्यथा एक सवाल काफी है कि ब्रह्म क्या है? दूसरा सवाल उठाने की अब कोई और जरूरत नहीं है। इस एक का ही जवाब सबका जवाब बन जाएगा। एक को ही जानने से तो सब जान लिया जाता है। लेकिन जो सबको जानने की विक्षिप्तता से भरे होते हैं, वे एक को भी जानने से वंचित रह जाते हैं।

ब्रह्म के बाद भी अर्जुन के लिए सवाल हैं। इससे एक बात साफ है कि कोई भी जवाब मिल जाए, अर्जुन के सवाल हल होने वाले दिखाई नहीं पड़ते हैं। जो ब्रह्म के बाद भी सवाल पूछ सकता है, वह हर सवाल के बाद, हर जवाब के बाद, नए सवाल खड़े करता चला जाएगा।

असल में हमारा मन जब भी एक जवाब पाता है, तो उस जवाब का एक ही उपयोग करना जानता है, उससे दस सवाल बनाना जानता है।

पूरे मनुष्य जाति के मन का इतिहास नए-नए प्रश्नों का इतिहास है। एक भी उत्तर आदमी खोज नहीं पाता। हालांकि हर दिए गए उत्तर के साथ दस नए सवाल खड़े हो जाते हैं।

अगर हम पीछे लौटें, तो आदमी के उत्तर जितने आज हैं, उतने ही सदा थे। कृष्ण के समय में भी उत्तर वही था; बुद्ध के समय में भी उत्तर वही था; आज भी उत्तर वही है। लेकिन सवाल आज ज्यादा हैं। अगर कोई प्रगति हुई है, तो वह एक कि हमने और ज्यादा सवाल पैदा कर लिए हैं; जवाब नहीं। और ज्यादा सवालों की भीड़ में जो हाथ में जवाब थे, वे भी छूट गए हैं और खोते चले जाते हैं।

यह बात उलटी मालूम पड़ेगी कि जहां बहुत सवाल होते हैं, वहां जवाब कम हो जाते हैं; और जहां सवाल बिलकुल नहीं होते, वहीं जवाब, उत्तर, दि आंसर, एक ही उत्तर सारी ग्रंथियों को, सारी उलझनों को तोड़ जाता है।

बादरायण का ब्रह्म-सूत्र एक छोटे-से सूत्र से शुरू होता है। और एक छोटे-से सवाल का ही जवाब पूरे बादरायण के ब्रह्म-सूत्र में है। छोटे-से दो शब्दों से शुरू होता है ब्रह्म-सूत्र, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा–यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा शुरू होती है। पर यह आखिरी सवाल है; अब इसके आगे सवाल नहीं हो सकते। हेंस दि इंक्वायरी आफ दि ब्रह्म; यहां से शुरू होती है ब्रह्म की जिज्ञासा। बस, अब कोई सवाल नहीं उठ सकते; आखिरी सवाल पूछ लिया गया।

अर्जुन भी पूछता है, ब्रह्म क्या है? लेकिन क्षणभर रुकता नहीं, जरा-सा अंतराल नहीं है। पूछता है, अध्यात्म क्या है? अगर कृष्ण ने लौटकर पूछा होता कि अर्जुन, अपने सवाल को फिर दोहरा, तो जैसे मुझे उसका कागज हाथ में रखना पड़ा, ऐसा उसे भी रखना पड़ता। बहुत संभावना तो यही है कि वह दुबारा अपना सवाल वैसा का वैसा न दोहरा पाता। और यह भी संभावना बहुत है कि उसमें ब्रह्म और अध्यात्म चूक सकते थे, भूल जा सकते थे।

ऐसा मेरा रोज का अनुभव है। आता है कोई, कहता है, ईश्वर के संबंध में कुछ कहें। अगर मैं दो क्षण उसकी बात को टाल-मटोल कर जाता हूं, पूछता हूं, कब आए? कैसे हैं? वह फिर घंटेभर बैठकर बात करता है, दुबारा नहीं पूछता उस ईश्वर के संबंध में, जिसे पूछते हुए वह आया था!

ऐसे सवाल भी हम कहां से पूछते होंगे? ये हमारे हृदय के किसी गहरे तल से आते हैं या हमारी बुद्धि की पर्त पर धूल की तरह जमे हुए होते हैं? ये हमारे प्राणों की किसी गहरी खाई से जन्मते हैं या बस हमारी बुद्धि की खुजलाहट हैं? अगर यह बुद्धि की खुजलाहट है, तो खाज को खुजला लेने से जैसा रस आता है, वैसा रस तो आएगा, लेकिन बीमारी घटेगी नहीं, बढ़ेगी।

अर्जुन की बीमारी घटती हुई मालूम नहीं पड़ती। वह पूछता ही चला जाता है। वह यह भी फिक्र नहीं करता कि जो मैं पूछ रहा हूं, वह बहुत बार पहले भी पूछ चुका हूं। वह यह भी फिक्र नहीं करता कि मैं केवल नए शब्दों में पुरानी ही जिज्ञासाओं को पुनः-पुनः खड़ा कर रहा हूं। वह इसकी भी चिंता नहीं करता कि कृष्ण उत्तर देते जा रहे हैं, लेकिन मैं उत्तर नहीं सुन रहा हूं।

शायद वह इस खयाल में है कि कोई ऐसा सवाल पूछ ले कि कृष्ण अटक जाएं! शायद वह इस प्रतीक्षा में है कि कोई तो वह सवाल होगा, जहां कृष्ण भी कह देंगे कि कुछ सूझता नहीं अर्जुन, कुछ समझ नहीं पड़ता। इस प्रतीक्षा में उसका गहरा मन है। उसका अनकांशस माइंड, उसका अचेतन मन इस प्रतीक्षा में है कि कहीं वह जगह आ जाए, या तो कृष्ण कह दें कि मुझे नहीं मालूम; या कृष्ण ऊब जाएं, थक जाएं और कहें कि जो तुझे करना हो कर; मुझसे इसका कुछ लेना-देना नहीं है! तो अर्जुन जो करना चाहता है, उसे कर ले।

लेकिन कृष्ण जैसे लोग थकते नहीं। यद्यपि यह बिलकुल चमत्कार है। अर्जुन जैसे थकाने वाले लोग हों, तो कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी थक ही जाना चाहिए। लेकिन कृष्ण जैसे व्यक्ति थकते नहीं हैं। और क्यों नहीं थकते हैं? न थकने का कुछ राज है, वह मैं आपसे कहूं, फिर हम कृष्ण के उत्तर पर चलें।

न थकने का एक राज तो यह है कि कृष्ण यह भलीभांति जानते हैं कि अर्जुन, तुझे तेरे प्रश्नों से कोई भी संबंध नहीं है। और अगर अर्जुन इस दौड़ में लगा है कि हम प्रश्न खड़े करते चले जाएंगे, ताकि किसी जगह तुम्हें हम अटका लें कि अब उत्तर नहीं है। कृष्ण भी उसके साथ-साथ एक कदम आगे चलते चले जाते हैं कि हम तुझे उत्तर दिए चले जाएंगे। कभी तो वह क्षण आएगा कि तेरे प्रश्न चुक जाएंगे और उत्तर तेरे जीवन में क्रांति बन जाएगा।

कृष्ण को भलीभांति पता है, अर्जुन को प्रश्नों से प्रयोजन ज्यादा नहीं है, अन्यथा वे कहते कि यह तो तू पूछ चुका। कृष्ण जानते हैं कि अर्जुन का सवाल सवाल नहीं है, अर्जुन की बीमारी है। उसे जवाब नहीं चाहिए, उसे रूपांतरण चाहिए, उसे ट्रांसफार्मेशन चाहिए; उसका आमूल जीवन बदले, ऐसी घड़ी चाहिए। लेकिन उस स्थिति तक लाने के लिए भी उसे फुसलाना पड़ेगा, उसे राजी करना पड़ेगा; अर्जुन की ही भाषा में बोलना पड़ेगा।

सुना है मैंने कि एक गांव में पहली ही बार कुछ लोग एक घोड़े को खरीदकर ले आए थे। उस देश में घोड़ा नहीं होता था और उस गांव के लोगों ने घोड़ा देखा भी नहीं था। जो लोग ले आए थे परदेश से, वे घोड़े के शरीर से, उसकी दौड़ से, उसकी गति से प्रभावित होकर ले आए थे। लेकिन उन्हें घोड़े के संबंध में कुछ भी पता नहीं था। एक बात पक्की थी, उन्हें घोड़े की भाषा बिलकुल पता नहीं थी। बहुत मुश्किल में पड़ गए। घोड़े को उन्होंने चलते देखा था हवा की रफ्तार से। गांव में लाकर उन्होंने पाया कि चार आदमी आगे से खींचें और चार आदमी पीछे से धकाएं, तब कहीं वह मुश्किल से कुछ-कुछ चलता है। बड़ी मुश्किल में पड़ गए कि अगर घोड़े को चलाने के लिए आठ आदमियों की जरूरत पड़े, तो यह घोड़ा है किसलिए! बहुत उन्होंने कहा कि हमने देखा था तुझे हवा से बातें करते! घोड़ा खड़ा सुनता रहा, वैसे ही जैसे अर्जुन सुनता रहा होगा।

कृष्ण की भाषा और है। एंड देअर इज़ सच ए बिग गैप आफ लैंग्वेज, ऐसा बड़ा अंतराल है कि घोड़ा भी आदमी की भाषा समझ ले, कृष्ण की भाषा समझना अर्जुन को मुश्किल है। घोड़े और आदमी के बीच इतना अंतराल नहीं है। कुछ लोग तो कहते हैं, उतना ही अंतराल है, जितना गधे और घोड़े के बीच होता है। मगर उनकी बात सही न भी हो, फिर भी आदमी और घोड़े के बीच बहुत अंतराल नहीं है। कृष्ण और अर्जुन के बीच अंतराल ज्यादा है।

पर मुश्किल में तो पड़ ही गए, अंतराल कम हो तो भी। और घोड़ा रोज सूखने लगा और दुबला होने लगा, क्योंकि उन्होंने पूछा ही नहीं था कि उसे भोजन भी देना है! अब चलना रोज-रोज मुश्किल होता चला गया। चार की जगह आठ और आठ की जगह दस और दस की जगह बारह, रोज-रोज आदमी बढ़ाने पड़ते जब उस घोड़े को चलाना पड़ता। पूरा गांव दिक्कत में पड़ गया। लोगों ने कहा, तुम यह क्या ले आए हो? ऐसा वक्त आ जाएगा जल्दी कि पूरे गांव को इसे चलाना पड़ेगा! लेकिन फिर चलाने से फायदा क्या है? ठीक था; एक दिन तमाशा हो गया; लोगों ने चलाकर भी देख लिया, फिर क्या करेंगे?

गांव में एक अजनबी उस रात रुका था, उसने भी देखा यह खेल कि पूरा गांव धक्का देता है, घोड़े को चलाता है, घोड़ा चलता नहीं। उसने कहा कि पागलो, क्या तुम्हें घोड़े की भाषा बिलकुल भी पता नहीं? उन्होंने कहा, हम इसी मुश्किल में पड़े हैं। वह आदमी सिर्फ घोड़े के सामने घास का एक छोटा-सा पूला लेकर चलने लगा। और घोड़ा इतना कमजोर था, तो भी तेजी से उसने गति पकड़ ली। वह आदमी दौड़ने लगा, तो घोड़ा दौड़ने लगा। घास का एक छोटा-सा पूला हाथ में लेकर! घोड़े को घास का पूला समझ में आया।

कृष्ण जैसे लोग भी हजार तरह की कोशिश करते हैं अर्जुन जैसे व्यक्तियों के सामने, जो उनकी समझ में आ जाए, उसे रखने की। लेकिन अर्जुन होशियार घोड़ा है, जल्दी उलझाव में नहीं आता। वह कहता है, होगा। यह ठीक है। लेकिन अभी कुछ और सवाल बाकी हैं, अभी उनका जवाब चाहिए। वह असल में ध्यान नहीं देता कि कृष्ण उसके सामने क्या रख रहे हैं।

शायद वह अपने को बचाने के लिए ही यह कर रहा है। कहीं कृष्ण की बात सुनाई न पड़ जाए, इसलिए वह जल्दी सवाल पूछता है। वह इतने जल्दी सवाल पूछता है, जितने जल्दी कृष्ण जवाब भी नहीं दे पाते। इधर कृष्ण का जवाब समाप्त नहीं होता और अर्जुन के सवाल खड़े हो जाते हैं। यह बिलकुल असंभव है।

अगर मैं आपसे कुछ बोलूं, बोल भी न पाऊं और आपका सवाल खड़ा हो जाए, तो इसका मतलब सिर्फ एक हुआ कि जब मैं बोल रहा था, तब आप सवाल तैयार कर रहे थे।

और ऐसा भी नहीं लगता कि वे सवाल, कृष्ण जो बोलते हैं उससे पैदा होते हों। वे सवाल अर्जुन के अपने ही हैं; कृष्ण का बोलना इररेलेवेंट है, असंगत है। कृष्ण के बोलने को कहीं सुना ही नहीं जा रहा है।

लेकिन फिर भी कृष्ण जैसे व्यक्ति उत्तर देते हैं, इस आशा में कि शायद किसी क्षण में थका हुआ अर्जुन का मन नए प्रश्न न खोज पाए, नए सवाल न उठा पाए और शायद एक किरण भी प्रकाश की उसके भीतर पहुंच जाए। उत्तर का एक छोटा-सा स्वाद भी उसे आ जाए, तो वह फिर घोड़े की तरह घास के पीछे चल सकता है। इस आशा में पूरी गीता कही गई है। और कृष्ण जैसा उत्तर देने वाला आदमी बहुत मुश्किल से होता है; बहुत मुश्किल से होता है।

बुद्ध बहुत-से प्रश्नों के लिए इनकार कर देते थे। वे कहते थे, ये सवाल पूछो ही मत। मैं इनके जवाब दूंगा ही नहीं। क्योंकि वे कहते थे, ये सवाल तुम्हारे सवाल ही नहीं हैं; ये तुम्हारे प्राणों से कहीं पूछे ही नहीं जा रहे हैं। तुम वही पूछो, जो सच में तुम जानना चाहते हो। मत पूछो वह, जो तुम जानना नहीं चाहते हो।

अब एक आदमी बुद्ध के पास आता है, वह पूछता है कि मृत्यु क्या है? बुद्ध कहते हैं, तू मृत्यु को जानना चाहता है? वह आदमी कहता है, जानना इसलिए चाहता हूं, क्योंकि बचना चाहता हूं। और जानने का कोई प्रयोजन नहीं है। अगर यह मृत्यु कुछ है, तो मैं जान लूं, ताकि बच जाऊं। पर बुद्ध कहते हैं, जानना हो तो मृत्यु में प्रवेश करना पड़ेगा, उसके अतिरिक्त जानने का कोई उपाय नहीं है। तो तू छोड़; यह सवाल तू छोड़। तू कुछ और सवाल पूछ, जो तू जानना चाहता हो प्रवेश करके।

वह आदमी जरा मुश्किल में पड़ गया है। सोच-समझकर वह कहता है कि ठीक, तो कुछ ध्यान के संबंध में मुझे कह दें।

यह मजबूरी में पूछ रहा है। अब फंस ही गए हैं। अब बुद्ध कहते हैं, मृत्यु के बाबत बताऊंगा नहीं, क्योंकि तू मृत्यु में घुसने को राजी नहीं। छोड़। कुछ और पूछ ले। अब वह यह भी नहीं कह सकता, इतनी भी ईमानदारी नहीं है कि अब मैं नहीं पूछना चाहता, बात खतम हो गई; मैं नहीं पूछूंगा। यह भी नहीं है। इतनी आनेस्टी भी, इतना भी व्यक्तित्व का बल नहीं है कि कह दे कि नहीं।

अब बुद्ध कहते हैं, अब मिल ही गए, तो पूछ ही लो। तो वह पूछता है, ध्यान क्या है? बुद्ध कहते हैं, तू ध्यान किसलिए चाहता है? वह आदमी कहता है कि मैं आपसे पूछने आया हूं, कि आप मुझसे पूछे चले जाते हैं! मैंने मृत्यु पूछा, तो आप पूछने लगे कि किसलिए? ध्यान पूछता हूं, तो आप पूछते हैं, किसलिए? बुद्ध कहते हैं, जब तक मैं यह न जान लूं कि सच में तू जानना चाहता है, तब तक मैं उतर नहीं देता हूं।

शायद–क्योंकि बुद्ध की करुणा में कृष्ण की करुणा से रत्तीभर भी भेद तो नहीं है–लेकिन शायद कृष्ण और अर्जुन की बातचीत का अनुभव बुद्ध के लिए काफी महंगा पड़ा है। उस अनुभव के कारण शायद अब वे राजी नहीं हैं कि इतनी लंबी गीता चले; वही सवाल आदमी बार-बार पूछता रहे।

साक्रेटीज के पास अगर कोई पूछने जाता था, तो फिर दुबारा पूछने नहीं जाता था। क्यों? क्योंकि साक्रेटीज उत्तर तो देता ही नहीं था। आप पूछकर अगर फंस बैठे, तो आपसे इतने प्रश्न पूछता था कि दुबारा आप कभी उस रास्ते नहीं निकलते, जहां साक्रेटीज रहता है। साक्रेटीज को एथेंस के लोगों ने जहर दिया, उसमें सबसे बड़ा कारण यही था कि साक्रेटीज ने एथेंस के हर आदमी को अज्ञानी सिद्ध कर दिया था, प्रश्न पूछ-पूछकर।

अगर आप पूछते कि ईश्वर है? तो साक्रेटीज पहले पूछता, ईश्वर से आपका क्या अर्थ है? अब आप फंसे। आप कहेंगे, अर्थ ही मालूम होता, तो हम पूछते ही क्यों? साक्रेटीज कहता है, जिस शब्द का अर्थ ही नहीं मालूम, उसका तुम प्रश्न कैसे बनाओगे?

एथेंस के एक-एक आदमी को उसने उलझन में डाल दिया था। आखिर एथेंस गुस्से में आ गया। उस नगर ने कहा कि यह आदमी इस तरह का है कि जवाब तो देता नहीं, और उलटे हम सबको अज्ञानी सिद्ध कर दिया है।

छोटी-मोटी बातों पर अज्ञान सिद्ध हो जाता है। कोई पूछता नहीं, इसीलिए आपका ज्ञान चलता है। इसलिए छोटे बच्चे बहुत परेशान करने वाले मालूम पड़ते हैं। इसलिए नहीं कि वे आपसे कुछ भी अनर्गल पूछते हैं। असल में वे ऐसे सवाल पूछते हैं कि पूछते से ही आपके जवाब डगमगा जाते हैं। कोई पूछता नहीं है, इसलिए चलता है।

संत अगस्तीन कहता था कि कई सवाल ऐसे हैं कि जब तक तुम नहीं पूछते, तब तक मुझे जवाब मालूम होते हैं। तुमने पूछा कि जवाब गया! वह कहता था, मुझे अच्छी तरह पता है कि व्हाट इज़ टाइम–समय क्या है, मैं जानता हूं। बट दि मोमेंट यू आस्क मी; पूछा नहीं तुमने कि सब गड़बड़ हुआ!

आप भी जानते हैं कि समय क्या है। लेकिन आपको पता होना चाहिए, आइंस्टीन भी उत्तर नहीं दे सकता कि व्हाट इज़ टाइम? समय क्या है? और आप सब जानते हैं कि समय क्या है। हम सबको पता है। समय से ट्रेन पर पहुंचते हैं, समय से घर आते हैं, दफ्तर जाते हैं। कौन ऐसा आदमी होगा जिसको पता नहीं कि समय क्या है! लेकिन आइंस्टीन भी जवाब नहीं दे सकता कि समय क्या है। पूछ लो, तो मुश्किल खड़ी हो जाती है।

अज्ञान छिपा-छिपा चलता है, जब तक कोई पूछता नहीं। पूछना कोई शुरू कर दे, अज्ञान के अतिरिक्त हाथ में कुछ नहीं रह जाता।

सुकरात ने लोगों को पूछकर दिक्कत में डाल दिया। जवाब तो दिए नहीं। शायद सुकरात बुद्ध से भी ज्यादा अनुभवी हो चुका था। उसने सोचा कि इसके पहले कि तुम पूछो, बेहतर है कि हम ही पूछ लें!

लेकिन कृष्ण इस लिहाज से अदभुत हैं। शायद गैर-अनुभव के कारण ही, क्योंकि वे ज्यादा प्राचीन हैं! वे उत्तर दिए चले जाते हैं। वे अर्जुन को टोकते भी नहीं कि तू क्या पूछ रहा है? क्यों पूछ रहा है? और इसका जवाब मैं दे चुका हूं। नहीं, वे फिर से उत्तर देने को राजी हो जाते हैं। कृष्ण ने जो उत्तर दिया है, वह हम समझें।

अर्जुन का पहला प्रश्न है, ब्रह्म क्या है? कृष्ण ने कहा, जिसका कभी नाश न हो।

फिर तो साफ हो गई बात कि इस जगत में ब्रह्म कहीं भी नहीं है। यहां तो जो भी है, सभी का नाश है। आपने कोई ऐसी चीज देखी है, जिसका कभी नाश न हो? कभी कोई ऐसी चीज सुनी है, जिसका कभी नाश न हो? कभी कोई ऐसा अनुभव हुआ है, जिसका कभी नाश न हो?

यहां तो जो भी है, सभी नाशवान है। यहां तो होने की शर्त ही विनाश है। होने की एक ही शर्त है, न होने की तैयारी। जन्म होने के साथ मृत्यु के साथ समझौता करना पड़ता है। जन्म के साथ ही दस्तखत कर देने होते हैं मौत के सामने कि मरने को तैयार हूं।

यहां तो कुछ पाया कि खोने के अतिरिक्त और अब कुछ होने वाला नहीं है। यहां तो कोई मिला, तो बिछुड़ना होगा। यहां गले मिलने का इंतजाम, सिर्फ गले को अलग कर लेने के लिए है। यहां सभी कुछ नाशवान है। यहां जो बनता हुआ दिखाई पड़ रहा है, एक तरफ से देखो तो मालूम होता है बन रहा है, दूसरी तरफ से देखो तो मालूम होता है कि बिगड़ रहा है।

एक धर्मगुरु के एक छोटे लड़के ने उससे पूछा है एक दिन कि यह आदमी कैसे बना? और यह आदमी जब मिटता है, तो क्या हो जाता है? तो उस धर्मगुरु ने कहा, डस्ट अनटु डस्ट; मिट्टी में मिट्टी मिल जाती है। मिट्टी से ही आदमी बनता है, मिट्टी में ही आदमी गिर जाता है।

दूसरे ही दिन सुबह वह धर्मगुरु अपने तख्त पर बैठकर अपनी किताब पढ़ता है। उसका छोटा बेटा आया, तख्त के नीचे घुस गया, और उसने वहां से चिल्लाया कि पिताजी, जरा नीचे आइए। ऐसा लगता है कि या तो कोई बन रहा है, या तो कोई मिट रहा है! एक मिट्टी का ढेर लगा हुआ है। तख्त के नीचे धूल इकट्ठी हो गई है। बेटे ने कहा कि या तो कोई बन रहा है, या कोई मिट रहा है; जल्दी नीचे आइए!

धूल के ढेर को, अगर आदमी सिर्फ धूल है, तो दोनों तरह से देखा जा सकता है–या तो कोई बन रहा है, या कोई मिट रहा है। असल में जब भी कोई बन रहा है, तभी कोई मिट भी रहा है। और कहीं दूर नहीं, वहीं। जहां बनना चल रहा है, वहीं मिटना चल रहा है।

यहां तो सभी कुछ विनाश है। यहां ठहराव नहीं है। यहां तो सभी कुछ नदी की धार की तरह बह रहा है। छू भी नहीं पाते किनारा कि छूट जाता है। मिलन हो भी नहीं पाता कि विदा की घड़ी आ जाती है।

और कृष्ण कहते हैं, वह जिसका विनाश नहीं है, वह है ब्रह्म।

अर्जुन शायद ही समझ पाए। असल में अर्जुन तो मान ही यह रहा है कि मैं इन लोगों को अगर मारूं जो सामने खड़े हैं, तो विनाश के लिए मैं जिम्मेवार हो जाऊंगा। लेकिन कृष्ण यह कह रहे हैं कि यहां तो जो है, वह सभी विनाशवान है। और अगर तू अविनाश में ठहरना चाहता है कि तुझसे विनाश न हो, तो तुझे ब्रह्म में ठहरना पड़ेगा।

लेकिन वह ब्रह्म कहां है? वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि आंख जिसे देख सकती है, वह नष्ट होगा। वह कहीं सुनाई नहीं पड़ता; क्योंकि कान जिसे सुन सकते हैं, वह खो जाएगा। उसका कहीं स्पर्श नहीं होता; क्योंकि हाथ जिसे छू सकते हैं, वह नष्ट होगा ही। इंद्रियां जिसे जान सकती हैं, वह विनाश का क्षेत्र है।

असल में इंद्रियां जान ही उसे सकती हैं, जो बन रहा है या मिट रहा है। उसे नहीं, जो है, दैट व्हिच इज़; उसे नहीं, जो है। अगर उस है को जानना है, तो उसे जानने का उपाय इंद्रियां नहीं हैं। स्वयं के अंतस में उस जगह को खोज लेना है, जहां इंद्रियों की कोई गति नहीं होती है। लेकिन वह कहां है?

भीतर भी अगर हम देखने जाएं, तो भी तो वह नहीं मिलता। भीतर देखने जाएं, तो मन दिखाई पड़ता है, वह भी विनाशवान है।

सुबह मेरे पास कोई आता है और कहता है, अपरिसीम आनंद में हूं। और उसकी बात मैं सुनता हूं और उसकी आंखों में झांकता हूं और सोचता हूं, कितनी देर लगेगी कि यह आकर मुझे कहेगा, वह उदासी फिर आ गई! ज्यादा देर नहीं लगेगी। भीतर भी मन में जो बनता है, वह भी बिगड़ता रहता है। और हम मन के अतिरिक्त कुछ जानते नहीं।

कृष्ण कहते हैं--और बड़ी छोटी परिभाषा, इससे छोटी और क्या परिभाषा होगी--कि वह, जिसका नाश नहीं होता है, वह ब्रह्म है।

क्या है वह जिसका नाश नहीं होता है? कहां है? कौन है? दोत्तीन बातें समझ में खयाल में ले लेनी जरूरी हैं।

एक तो, जहां भी आप विनाश देखें, वहां एक बात गौर से देखना, सिर्फ रूप विनष्ट होता है, रूपायित नहीं। आकार विनष्ट होता है, लेकिन जो आकार के भीतर था, वह नहीं। दि कंटेनर तो नष्ट हो जाता है, बट दि कंटेंट, वह नष्ट नहीं होता। पानी को भाप बना दो, तो पानी तो विनष्ट हो गया; लेकिन क्या सच ही पानी विनष्ट हो गया? तो फिर भाप में कौन है? भाप को ठंडा कर लो, भाप विनष्ट हो गई; लेकिन क्या सच में ही विनष्ट हो गई? क्योंकि अब जो पानी है, उसमें कौन है? नहीं; विनाश सिर्फ रूप होता है, आकार होता है; रूपायित, रूप से जो घिरा है, वह नहीं।

लेकिन हमें रूप ही दिखाई पड़ता है, क्योंकि इंद्रियां रूप को ही देख सकती हैं। वह जो रूप में घिरा है, वह नहीं। जब आप जल को देखते हैं, तो आप उसको कभी नहीं देख पाते, जो जल के भीतर छिपा है। सिर्फ रूप! फिर गर्मी दे दी, रूप बदल गया। भाप बन गई। भाप को भी जब आप देखते हैं, तब फिर एक रूप, एक फार्म, एक आकार! फिर भी वह नहीं दिखाई पड़ता, जो भीतर छिपा है। वह जो भीतर छिपा है, वह तो विनष्ट नहीं होता।

विज्ञान कहता है, कोई भी चीज विनष्ट नहीं होती। यह बहुत मजे की बात है। विज्ञान की तीन सौ वर्षों की खोज कहती हैं कि कोई भी चीज विनष्ट नहीं होती। और कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, जो विनष्ट नहीं होता, वही ब्रह्म है। क्या विज्ञान को कहीं से कोई गंध मिलनी शुरू हो गई ब्रह्म की? क्या कहीं से कोई झलक विज्ञान को पकड़ में आनी शुरू हुई उसकी, जो विनष्ट नहीं होता?

झलक नहीं मिली, लेकिन अनुमान मिला है। नाट ए ग्लिम्प्स, बट जस्ट एन इनफरेंस। एक अनुमान विज्ञान के हाथ में आ गया है। उसको एक बात खयाल में आ गई है कि सिर्फ रूप ही बदलता है।

ध्यान रहे, विज्ञान को अभी उसका कोई पता नहीं चला जो नहीं बदलता है, लेकिन एक बात पता चल गई कि सिर्फ रूप ही बदलता है। लेकिन रूप के पीछे कुछ है जरूर, जो नहीं बदलता है। उसका कोई पता नहीं है। इसलिए विज्ञान की खोज निगेटिव है, नकारात्मक है। उसे एक बात पता चल गई कि जो बदलता है, वह रूप है।

लेकिन रूप के भीतर कुछ न बदलने वाला भी सदा मौजूद है, अन्यथा रूप भी बदलेगा कैसे? किस पर बदलेगा? बदलाहट के लिए भी एक न बदलने वाला आधार चाहिए। परिवर्तन के लिए भी एक शाश्वत तत्व चाहिए। और दो परिवर्तन के बीच में जोड़ने के लिए भी कोई अपरिवर्तित कड़ी चाहिए।

क्या आपने कभी खयाल किया कि जब पानी भाप बनता है, तो जरूर बीच में एक क्षण होता होगा, एक गैप, इंटरवल, जब पानी भी नहीं होता और भाप भी नहीं होती। लेकिन अभी विज्ञान को उस गैप का, उस अंतराल का कोई पता नहीं है। विज्ञान कहता है, पानी हम जानते हैं; गर्म करते हैं; फिर एक क्षण आता है कि भाप को हम जानते हैं।

लेकिन पानी और भाप के बीच में कोई एक क्षण जरूरी है; क्योंकि जब तक पानी पानी है, तो पानी है; और जब वह भाप हो गया, तो भाप हो गया। लेकिन कोई एक क्षण चाहिए, जब पानी के भीतर की जो वस्तु है, जो कंटेंट है, जो आत्मा है, वह पानी भी न हो। क्योंकि अगर वह पानी होगी, तो भाप न हो सकेगी। और भाप भी न हो, क्योंकि अगर वह भाप हो चुकी होगी, तो पानी न होगी। एक क्षण के लिए न्यूट्रल...

जैसे कोई आदमी गाड़ी के गेयर बदलता है, तो अगर पहले गेयर से दूसरे गेयर में गाड़ी डालता है, तो चाहे कितनी ही त्वरा से डाले, कितनी ही तेजी से डाले, चाहे आटोमैटिक ही क्यों न हो गेयर, आदमी को डालना भी न पड़े, पर बीच में एक न्यूट्रल, एक तटस्थ क्षण है, जब गेयर ऐसी जगह से गुजरता है, जहां वह पहले गेयर में नहीं होता और दूसरे में पहुंचा नहीं होता। यह जरूरी क्षण है, यह कड़ी है।

लेकिन इस कड़ी का विज्ञान को अनुमान भर होता है। और वही कड़ी ब्रह्म है। लेकिन इंद्रियों के द्वारा अनुमान भी हो जाए तो बहुत है।

कृष्ण कहते हैं, वह जो नहीं नाश को उपलब्ध होता है, वही ब्रह्म है।

कहां है वह ब्रह्म? अगर आप रूप को देखते रहेंगे, तो वह ब्रह्म कभी भी दिखाई नहीं पड़ेगा। लेकिन अरूप को कैसे देखें? कहां देखें?

पानी दिखता है, भाप दिखती है, बीच का वह अरूप तो दिखाई नहीं पड़ता। अगर उसे देखना हो, तो सबसे पहले व्यक्ति को स्वयं में ही उस अरूप को देखना पड़ता है।

जब आपका एक विचार जाता है और दूसरा आता है, तो दोनों विचारों के बीच में भी फिर वही कड़ी होती है, जब कोई विचार नहीं होता। विचार एक रूप है, दूसरा विचार दूसरा रूप है--थाट फार्म है--विचार की अपनी आकृतियां हैं।

यह जानकर आप हैरान होंगे कि विचार भी आकृतिहीन नहीं हैं। जब आप क्रोध में होते हैं, तब आपके चित्त की आकृति भिन्न होती है। जब आप प्रेम में होते हैं, तब आपके चित्त की आकृति भिन्न होती है।

कभी आपने खयाल किया, जब आप कंजूसी से भरे होते हैं, तो सिर्फ कंजूसी नहीं होती, भीतर भी कोई चीज सिकुड़ जाती है। जब आप किसी को प्रेम से कुछ देते हैं, तो सिर्फ देना बाहर ही नहीं घटता, भीतर भी कुछ फैल जाता है। आकार है। जब हम कहते हैं कंजूस, तो उस शब्द में भी सिकुड़ने का भाव है; कोई चीज सिकुड़ गई है। जब हम कहते हैं दानी, देने वाला, प्रेमी, बांटने वाला, तो कोई चीज बंटती है और फैल जाती है।

प्रत्येक विचार का आकार है। और आपके भीतर प्रतिपल आकार बदलते रहते हैं। आपके चेहरे पर भी आकार छप जाते हैं। जो आदमी निरंतर क्रोध करता है, वह जब नहीं भी क्रोध करता है, तब भी लगता है, क्रोध में है। वह निरंतर क्रोध की जो आकृति है, उसके चेहरे पर स्थायी हो जाती है और फिर चेहरा उसको छोड़ता नहीं। क्योंकि चेहरे को पता है कि कभी भी अभी थोड़ी देर में फिर जरूरत पड़ेगी। वह पकड़े रखता है, जस्ट टु बी इफिशिएंट, कुशल होने की दृष्टि से। अब ठीक है, जब बार-बार जरूरत पड़ती है, तो उसको हटाने की आवश्यकता भी क्या है! जब तक हटाएंगे, तब तक पुनः आवश्यकता आ जाएगी। तो रहने दो। तो फिक्स्ड इमेज बैठ जाती है चेहरे पर, सभी लोगों के। और कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि पीछा ही नहीं छोड़ता।

हजरत मूसा के संबंध में सुना है। हजरत मूसा दुनिया के उन थोड़े-से लोगों में एक हैं, कृष्ण या बुद्ध या महावीर जैसे। एक सम्राट ने अपने चित्रकार को कहा कि तू जा और हजरत मूसा का एक चित्र बना ला। हजरत मूसा जिंदा थे। वह चित्रकार गया और चित्र बना लाया।

सम्राट ने चित्र देखा और उसने कहा कि जो कुछ हजरत मूसा के संबंध में मैंने सुना है उसमें और इस चित्र में बहुत फर्क मालूम पड़ता है। यह चित्र देखकर मालूम पड़ता है कि किसी बहुत दुष्ट, हिंसक, क्रोधी आदमी का चित्र है। इसमें हजरत मूसा की खबर नहीं मिलती।

उस चित्रकार ने कहा कि आश्चर्य! आपने कभी हजरत मूसा को देखा? उस सम्राट ने कहा, मैंने देखा नहीं है, सुना है उनके बाबत; और उनसे मेरा लगाव भी बन गया। इसीलिए तो चित्र बनाने तुझे भेजा। तो उसने कहा कि मैं देखकर आ रहा हूं। महीनों बैठकर इस चित्र को मैंने बनाया है। इसमें रत्तीभर भूल नहीं है। और हजरत मूसा से पूछकर आया हूं कि चित्र ठीक बन गया जनाब! उन्होंने कहा कि बिलकुल ठीक है। तब आया हूं।

सम्राट ने कहा, लेकिन कहीं न कहीं कुछ न कुछ भूल है। और मालूम होता है कि हजरत मूसा या तो दयावश तुझसे कह दिए कि ठीक है, या उन्होंने अपनी शक्ल कभी आईने में न देखी होगी। और कोई कारण नहीं हो सकता। लेकिन सम्राट की यह जिद्द, जिसने देखा न हो मूसा को, हैरानी की थी। चित्रकार ने कहा, फिर चलिए।

और हजरत मूसा के पास चित्रकार और सम्राट पहुंचे। सम्राट भी थोड़ा हैरान हुआ चेहरे को देखकर। चित्रकार ही ठीक मालूम पड़ता है। बाजी हार गया मालूम हुआ उसे। फिर भी पूरी बाजी हार जाने के बाद सम्राट ने मूसा से कहा कि एक सवाल मैं पूछने आया हूं। एक बाजी हार गया इस चित्रकार के साथ। पूछना मुझे यही है कि जो कुछ मैंने आपके संबंध में सुना है, उसे सुनकर मैंने आपकी एक आकृति बनाई थी, लेकिन इस आकृति में वह बात नहीं है।

हजरत मूसा ने कहा, यह आकृति मेरी पुरानी है और पीछा नहीं छोड़ती। आज से बीस साल पहले मैं ऐसा ही हुआ करता था। जो कुछ इस चित्र में है, वही हुआ करता था। ऐसा ही क्रोधी, ऐसा ही दुष्ट, ऐसा ही हिंसा से भरा हुआ। अब सब बदल गया, लेकिन चेहरे पर पुराने चिह्न रह गए हैं।

चिह्न छूट जाते हैं। विचार भी आकृति रखता है, भाव भी आकृति रखता है। इन आकृतियों के बीच में अगर आप देख पाएं, तो अरूप का दर्शन होता है। दो विचार के बीच में खड़े हो जाएं, दो विचार के बीच में झांक लें, दो विचार के बीच में जो खाली जगह छूटे, स्पेस बने, उसमें डूब जाएं और आपको अरूप का दर्शन हो जाए। भीतर अगर हो जाए, तो फिर आप बाहर भी दो आकारों के बीच में कूद सकते हैं और निराकार को जान सकते हैं।

कृष्ण कहते हैं, वही है ब्रह्म, जिसका कभी नाश नहीं होता। रूप का नाश है, अरूप का नाश नहीं, अरूप है ब्रह्म। ऐसा सच्चिदानंद, विनाश जिसका नहीं होता, वही ब्रह्म है।

निश्चित ही, बार-बार कृष्ण जैसे लोग कहते हैं कि वह ब्रह्म सच्चिदानंद है, परमानंद है, अंतिम आनंद है। यह क्यों दोहराते हैं!

असल में जहां-जहां रूप है, वहां-वहां मृत्यु होगी। क्योंकि एक रूप दूसरे रूप में बदलेगा। और जहां-जहां रूप है, वहां विनाश होगा। विनाश होगा, तो पीड़ा होगी, बीमारी होगी, संताप होगा, चिंता होगी। हम एक रूप को पकड़ लेंगे, फिर दूसरा रूप आएगा। हम बचपन को पकड़ लेंगे, फिर जवानी आने लगेगी, तो बचपन का रूप नष्ट होगा। फिर बच्चे को पीड़ा होगी। वह तकलीफ में पड़ेगा।

पश्चिम के मनोवैज्ञानिक अनुभव कर रहे हैं कि वह जो एडॉलसेंस है, वह जो एक उम्र है दस साल से चौदह साल के बीच की, वह बड़ी पीड़ा की है। क्योंकि बच्चा छोड़ नहीं पाता अपने पुराने फार्म को, अपनी पुरानी आकृति को, और नई आकृति उसमें बनने लगती है। तो वह काम बच्चों जैसे भी करता है और अकड़ बड़ों जैसी भी दिखाता है। यह बड़े लोगों को भी, मां-बाप को भी समझ में नहीं आती है। दोनों बातें एक साथ करने लगता है। पुराना रूप भी उससे छोड़ा नहीं जाता, तो अपनी मां की साड़ी का पुछल्ला पकड़कर भी घूमना चाहता है; और मां अगर जरा डांट दे, तो वह पूरा सिर ऊंचा उठाकर खड़ा हो जाता है, तो बाप की ऊंचाई का हो जाता है। और मां के सामने घूरकर देख ले, तो मां भी घबड़ा जाती है। और ये दोनों उसमें होते हैं।

इसलिए एडॉलसेंस जो है, वह बड़ी पीड़ा का वक्त है। पुराना रूप छूटता नहीं, नया रूप असर्ट करता है, तोड़ता है। जैसे बीज टूटता हो, तो पीड़ा तो होगी। फिर एक आदमी बामुश्किल इसमें प्रवेश कर जाता है। काफी वक्त लगता है। किसी तरह प्रवेश कर जाता है। फिर जवानी के साथ ठहर जाता है। तो थोड़े ही दिनों में बुढ़ापा धक्के देने लगता है। तो बड़ी मुश्किल होती है; फिर बड़ी मुश्किल होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने पूछा है; एक दिन शराबघर से लौटता है, एक मित्र ने उससे कहा कि नसरुद्दीन, बुढ़ापे के लक्षण शुरू हो गए। तुम्हारे बाल सफेद पड़ने लगे। नसरुद्दीन ने कहा, फिक्र छोड़ो बालों की। बाल हो जाएं सफेद, दिल तो अभी भी काला है।

बाल जब सफेद हो जाते हैं, तब भी जवानी पीछा तो नहीं छोड़ती; वह असर्ट करती है। तब फिर रूप का संघर्ष शुरू हो जाता है। किसी तरह बामुश्किल जिंदगी के साथ ठहर नहीं पाते कि मौत दरवाजे पर दस्तक दे देती है कि चलो, वक्त हो गया। इधर अभी हम आ भी नहीं पाए थे, उधर जाने का वक्त हो गया। ठहर भी नहीं पाए थे कि तंबू उखाड़ो। अभी बल्लियां गाड़ ही रहे थे, अभी खूंटियां लगाई ही थीं, अभी तंबू पूरा फैल भी नहीं पाया था।

किसका तंबू कब पूरा फैल पाता है! खूंटियां गड़ी रह जाती हैं, उखड़ने का वक्त आ जाता है। इधर हम तैयारी कर रहे थे कि और खूंटियां कैसे गाड़ें, कि खबर आती है, उखाड़ो, वक्त जाने का हो गया। तंबू समेटो!

एक रूप बन नहीं पाता कि दूसरा रूप भीतर से आकर खबर देता है कि चलने की तैयारी है। इसलिए रूप के साथ कभी भी आनंद नहीं हो सकता। आकार के साथ कभी आनंद नहीं हो सकता। दुख ही होगा, संताप ही होगा, एंग्विश ही होगी, नर्क ही होगा।

इसलिए कृष्ण जैसे लोग बार-बार दोहराते हैं कि वह जो अरूप है, वह जो शाश्वत है, वह जो नहीं विनष्ट होता है, वह परम आनंद भी है।

और अपना स्वरूप अर्थात स्वभाव अध्यात्म है।

बड़ी कीमत का सूत्र कहा है। यह एक सूत्र भी गीता को गीता बना देने के लिए काफी है। बाकी सब फेंक दिया जाए, तो चलेगा। स्वभाव अध्यात्म है–काफी है।

लाओत्से ने अपनी जिंदगीभर इस सूत्र के अतिरिक्त किसी सूत्र की व्याख्या नहीं की–स्वभाव अध्यात्म है।

नहीं, लेकिन गीता पढ़ने वाले को भी इस सूत्र पर ज्यादा ध्यान नहीं जाता कि स्वभाव अध्यात्म है। क्या मतलब है?

स्वभाव अध्यात्म है का अर्थ है कि अपने भीतर उसकी तलाश कर लेनी है, जो सदा से है और मेरा बनाया हुआ नहीं है। स्वभाव अध्यात्म है, इसका अर्थ है, मुझे उसे खोज लेना है, जिसके द्वारा मेरा सब कुछ बना है और जो स्वयं अनबना है, अनक्रिएटेड है।

लेकिन हम सब तो इतने कृत्रिम हैं कि उस स्वभाव का पता लगाना बहुत मुश्किल होगा। हम तो कृत्रिम होने की एक इतनी बड़ी भीड़ हैं कि हम कौन हैं, हमें इसका ही पता नहीं है।

स्वभाव अध्यात्म है।

मैं कौन हूं, यह मुझे पता नहीं! ऐसा नहीं कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं। कौन हूं, बहुत कुछ मुझे पता है, लेकिन वह कोई भी स्वभाव नहीं है। वह सब सीखा हुआ है, कल्टिवेटेड है। जरा कुछ दो-चार जगह से खोज करें, तो शायद खयाल में आ जाए।

मैं एक भाषा बोल रहा हूं। अगर मैं इस भाषा बोलने वाले लोगों के घर में पैदा न होता, मैं दूसरी भाषा बोलता, तीसरी बोलता। जमीन पर कोई तीन सौ भाषाएं हैं। किसी भी घर में पैदा हो सकता था तीन सौ भाषाओं के, तो वही भाषा बोलता।

भाषा स्वभाव नहीं है, ट्रेनिंग है, सिखाई गई है। इसलिए इस भ्रम में कोई न रहे कि अगर आपको न सिखाया जाए, तो भी आप कोई तो भाषा बोलेंगे। नहीं, कोई भाषा न बोलेंगे। अगर आपको जंगल में छोड़ दिया जाए पैदा होते ही से और भेड़िए आपको पाल लें, तो आप कोई भी भाषा नहीं बोलेंगे।

और ऐसा नहीं कि यह मैं कल्पना से कह रहा हूं। ऐसी घटनाएं घटी हैं बहुत, जब भेड़िए बच्चों को उठाकर ले गए और उन्होंने उनको बड़ा कर लिया। वे बच्चे कोई भी भाषा नहीं बोल सकते। हां भेड़ियों की गुर्राहट कर सकते हैं; उतनी भाषा बोल सकते हैं। क्यों? क्योंकि भाषा सीखनी पड़ती है।

लेकिन भाषा के पीछे छिपा हुआ एक तत्व और है, वह है मौन। मौन सीखना नहीं पड़ता। इसलिए भाषा कृत्रिम है; मौन स्वभाव है।

यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं। इस तरह एक-एक चीज की पर्त भीतर है। एक चीज सीखी हुई है–कई चीजें सीखी हुई हैं ऊपर–भीतर कहीं खोजने पर वह जगह मिल जाएगी, जो स्वभाव है।

मौन स्वभाव है। इसलिए मौन साधना बन गया। क्योंकि वह स्वभाव में ले जाने का मार्ग है, हो सकता है। लेकिन अगर आप चुप बैठकर भीतर भी बोलते चले जाएं, जैसा कि हम करते हैं। और आमतौर से जब कोई नहीं होता, तब हम जितने जोर से बोलते हैं, उतना जब कोई होता है, तो नहीं बोलते। क्योंकि दूसरे का भी थोड़ा तो लिहाज रखना ही पड़ता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने कमरे में जोर से किसी से विवाद कर रहा है। बाहर से उसका एक मित्र निकल रहा है। उसने खिड़की से झांककर देखा। विवाद काफी रोचक है और तेजी पर आ गया है, और मारपीट होगी, ऐसे आसार हैं। मारपीट छोड़कर तो कोई नहीं जा सकता कहीं, हालांकि वह मित्र मस्जिद जा रहा था। तो उसने सोचा, जाने भी दो आज। आकर दरवाजा खटखटाया। अंदर जाकर देखा तो मुल्ला अकेला है! बड़ी निराशा हुई। जैसी कि सभी को होती है। अगर दो आदमी लड़ रहे हों और फिर लड़ाई न हो और दोनों अचानक अहिंसात्मक हो जाएं, तो देखा है, भीड़ जो खड़ी हो गई थी, वह कैसी उदास लौटती है! बेकार!

उसने कहा, क्या मामला है? अकेले! नसरुद्दीन ने कहा, बिलकुल अकेला। उसने कहा, तुम अभी विवाद कर रहे थे किसी से? उसने कहा, किसी से कर नहीं रहा था। आज कोई बकवासी आया ही नहीं, तो फिर चैन नहीं पड़ी। तो मैं खुद ही कर रहा था। उस आदमी ने कहा कि अकेले? अकेले कर रहे थे! समझ में आता है कि आदमी अकेले में कभी-कभी बातचीत करता है। लेकिन वह भी चुपचाप करता है, क्योंकि जब दूसरा है ही नहीं सुनने वाला, तो जोर से बोलने की जरूरत क्या है! भीतर ही करो, जैसा सब करते हैं!

नसरुद्दीन ने कहा कि उसमें बहुत मजा नहीं आता, क्योंकि अपने को पता ही नहीं चलता, क्या कह रहे हैं। सुनना भी जरूरी है। और इधर कुछ दिन से मैं जरा कम सुनने लगा हूं। उम्र है। तो जब तक जोर से न बोलूं, सुनाई नहीं पड़ता।

तो उस आदमी ने कहा, यह भी मान लो कि तुम बहरे हो गए हो और जोर से सुनने के लिए बोल रहे हो, लेकिन इसमें विवाद की कहां गुंजाइश है, क्योंकि दूसरा तो मौजूद ही नहीं है!

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे दोनों रोल अदा करने पड़ रहे हैं। इधर से भी बोल रहा हूं, उधर से भी बोल रहा हूं।

फिर भी उस आदमी ने कहा कि होगा, दोनों तरफ से बोलो, फिर भी इतनी तेजी की क्या जरूरत है? तुमको पता ही है कि तुम्हीं दोनों तरफ हो!

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं किसी बकवासी की बातें कभी नहीं सुन पाता। और जब उस तरफ से मैं बकवास करता हूं, तो इस तरफ से क्रोध आ जाता है। और जब इस तरफ से बकवास करता हूं, तो उस तरफ से क्रोध आ जाता है!

सभी लोग यही कर रहे हैं। अकेले में भी, वह जो मौन लेकर बैठा हुआ है, वह भीतर इतनी बकवास और इतने विवाद में पड़ा हुआ है, जिसका हिसाब नहीं।

मौन का अर्थ? मौन का अर्थ यह नहीं कि होंठ बंद हो गए। मौन का अर्थ है, भीतर भाषा बंद हो गई, भाषा गिर गई। जैसे कोई भाषा ही पता नहीं है। और अगर आदमी स्वस्थ हो, तो जब अकेला हो, उसे भाषा पता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि भाषा दूसरे के साथ कम्युनिकेट करने का साधन है, अकेले में भाषा के जानने की जरूरत नहीं है। अगर वह भाषा गिर जाए, तो जो मौन भीतर बनेगा, वह स्वभाव है, वह किसी ने सिखाया नहीं है।

मैं किसी भी भाषा वाले घर में पैदा हो जाऊं, हिंदी बोलूं कि मराठी कि गुजराती, कुछ भी बोलूं, लेकिन जिस दिन मैं मौन में जाऊंगा, उस दिन मेरा मौन न गुजराती होगा, न हिंदी होगा, न मराठी होगा। सिर्फ मौन होगा; वह स्वभाव है।

हम इतने लोग यहां बैठे हैं। अगर हम शब्दों में जीएं, तो हम सब अलग-अलग हैं। और अगर हम मौन में जीएं, तो हम सब एक हैं। अगर इतने बैठे हुए लोग यहां मौन हो जाएं क्षणभर को, तो यहां इतने लोग नहीं, एक ही व्यक्ति रह जाएगा। एक ही! बिकाज लैंग्वेज इज़ दि डिवीजन। भाषा तोड़ती है। मौन तो जोड़ देगा। हम एक ही हो जाएंगे।

और ऐसा ही नहीं कि हम व्यक्तियों से एक हो जाएंगे। भाषा के कारण हम मकान से एक नहीं हो सकते। भाषा के कारण हम वृक्ष से एक नहीं हो सकते। भाषा के कारण हम चांदत्तारों से एक नहीं हो सकते। लेकिन मौन में तो हम उनसे भी एक हो जाएंगे। आखिर मौन में क्या बाधा है कि मैं चांद से बोल लूं! मौन में क्या बाधा है कि चांद से हो जाए बातचीत--बातचीत मुझे कहनी पड़ रही है--कि चांद से हो जाए संवाद, मौन में! भाषा में तो नहीं हो सकता; मौन में हो सकता है।

इसलिए जो लोग गहरे मौन में गए, जैसे महावीर। इसलिए महावीर का जो सर्वाधिक प्रख्यात नाम बन गया, वह बन गया मुनि, महामुनि। मौन में गए। इसलिए आज भी महावीर का संन्यासी जो है, मुनि कहा जाता है, हालांकि मौन में बिलकुल नहीं है।

महा मौन में चले गए। और इसीलिए महावीर कह सके कि वनस्पति को भी चोट मत पहुंचाना। रास्ते पर चलते वक्त कीड़ी भी न दब जाए, इसका खयाल रखना। यह महावीर को पता कैसे चला कि कीड़ी की इतनी चिंता करनी चाहिए!

जो भी आदमी मौन में जाएगा, उसके संबंध चींटी से भी उसी तरह जुड़ जाते हैं, वृक्ष से भी उसी तरह जुड़ जाते हैं, पत्थर से भी उसी तरह जुड़ जाते हैं, जैसे आदमियों से जुड़ते हैं। अब उसके लिए जीवन सर्वव्यापी हो गया। अब सबमें एक का ही विस्तार हो गया। अब यह चींटी नहीं है, जो दब जाएगी, जीवन है। और यह वृक्ष नहीं है, जो कट जाएगा, जीवन है। अब जहां भी कुछ घटता है, वह जीवन पर घटता है। और मौन में होकर जिसने इस विराट जीवन को अनुभव किया, जब भी कहीं कुछ कटता है, तो मैं ही कटता हूं फिर, फिर कोई दूसरा नहीं कटता है।

कृष्ण कहते हैं, स्वभाव अध्यात्म है।

एक उदाहरण से मैंने कहा, भाषा न हो, तो मौन स्वभाव हो जाएगा। एकाध और खयाल ले लें, तो यह बात साफ, शायद--शायद--साफ हो जाए।

कभी आपने आंख बंद करके यह खयाल किया कि मेरे शरीर की आकृति को छोड़ दूं, तो मेरी आकृति क्या है? कभी आपने खयाल किया कि आंख बंद करके बैठ गए हों, और सोचा हो कि शरीर का खयाल छोड़ दूं कि शरीर की आकृति क्या है, मेरी आकृति क्या है? इस शरीर के भीतर जो मेरा होना है, उसकी आकृति, उसका आकार, उसका रूप क्या है?

नहीं, हम शरीर के ही रूप को अपना रूप समझते हैं। हालांकि शरीर रोज अपना रूप बदल रहा है, फिर भी हमें खयाल नहीं आता। अगर आपके सामने तस्वीर रख दी जाए आपकी ही, एक दिन के जीवन की, जब आप एक दिन के हुए थे उस दिन की, आप पहचान नहीं सकेंगे कि आपकी तस्वीर है। हालांकि उस दिन आपने माना होगा कि यह मेरा रूप है। आज जो आपकी तस्वीर है, आप बीस साल बाद नहीं पहचान पाएंगे कि यह मेरी तस्वीर है। यह मैं हूं! लेकिन आज आप कह रहे हैं, मैं हूं। बीस साल बाद दूसरी तस्वीर को कहेंगे कि मैं हूं। यह तस्वीरों की श्रृंखला, इसे आप कहते हैं, मैं हूं!

झेन फकीर कहते हैं, फाइंड आउट योर ओरिजिनल फेस, अपना असली चेहरा खोजो। वे कहते हैं, इस चेहरे को भूलो, जो तुमने आईने में देखा।

जिस चेहरे को देखने के लिए भी आईने की जरूरत पड़ती है, वह चेहरा अपना नहीं हो सकता। कम से कम अपना चेहरा तो बिना आईने के दिखाई पड़ जाना चाहिए। अपना! उसे भी देखने के लिए आईना चाहिए? वह भी उधार; वह भी वापस रिफ्लेक्टेड; आईना जो कहेगा!

और ध्यान रखें, कोई आईना सच नहीं कह सकता। कोई आईना सच नहीं कह सकता। आईना अपनी भाषा में कुछ कहेगा; आईने के ढंग से कहेगा। तो आपने आईने देखे होंगे, जिनमें आप लंबे हो गए हैं, मोटे हो गए हैं, दुबले हो गए हैं, चेहरा कुरूप हो गया है। वे आईने अपनी-अपनी भाषा में बोल रहे हैं। एक हमने कामन आईना बना रखा है, सबको धोखा देने के लिए। उसके सामने हम खड़े हो जाते हैं; समझ लेते हैं, यही मेरा चेहरा है; यही।

नहीं, भीतर कभी चुप और मौन होकर आंख बंद करके शरीर को कहें कि ठीक, तेरी यह आकृति है, मान गए। मेरी आकृति क्या है? जिसके ऊपर यह शरीर की सारी आकृतियां बदलती रहती हैं, उसकी आकृति क्या है?

अगर आप उसकी आकृति को खोजने उतरें, तो धीरे-धीरे सब आकृतियां खो जाएंगी और निराकार में आप खड़े हो जाएंगे। उस निराकार में स्वभाव है।

शरीर की आकृतियों में सब कृत्रिमता है। यह मां-बाप से दी गई आकृति है आपको। आपको शायद पता न हो, लेकिन जरूर अच्छा होगा जान लेना। अभी तो जमीन पर एक ही शक्ल के दो आदमी नहीं होते। ठीक जुड़वां बच्चों में भी थोड़ा-सा फर्क होता है। एक अंडे से पैदा हुए दो बच्चों में भी थोड़ा-सा फर्क होता है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि अब हम डुप्लीकेट कापी तैयार कर सकते हैं। अब हर आदमी की नकल तैयार की जा सकती है; क्योंकि फार्मूला खयाल में आ गया है। फार्मूला बहुत कठिन नहीं था; खयाल में नहीं था।

जिन अणुओं से बच्चे का निर्माण होता है मां के पेट में, ठीक उन अणुओं को दो हिस्सों में काटा जा सकता है, पहले ही अंडे में। और एक अंडे के दो अंडे बनाए जा सकते हैं अब। तब उन दोनों में से बिलकुल एक-सी आकृति के दो आदमी पैदा होंगे, बिलकुल एक-सी।

यह तो वैज्ञानिकों की जरूरत है फिलहाल अभी। क्योंकि वे कहते यह हैं कि हर एक आदमी को आने वाले पचास सालों में–कम से कम उन लोगों को, जिनकी लोगों को ज्यादा जरूरत होगी–उसकी एक कापी हम, डुप्लीकेट कापी, जैसे ही वह मां के पेट में पहुंचेगा पहले दिन, उसी क्षण निकालकर, आधे हिस्से को काटकर, अलग तैयार कर लेंगे मशीन में। उधर मां के पेट में जो बच्चा बड़ा होगा, ठीक ऐसा ही बच्चा मशीन में बड़ा होता जाएगा। इस बच्चे को बड़ा करके, फ्रीज करके रख दिया जाएगा। यह करीब-करीब मुर्दा ही रहेगा।

इसे इसलिए रख दिया जाएगा कि आने वाली दुनिया में दुर्घटनाएं रोज बढ़ती चली जाएंगी जैसे-जैसे विज्ञान विकसित होगा; और लोगों को रोज ही स्पेयर पार्ट्स की जरूरत पड़ती रहेगी, तो उसकी खोज नहीं करनी पड़ेगी। यह उनकी डिपाजिट जो कापी है, इसमें से कभी भी एक आदमी का हाथ टूट गया, तो उसका हाथ काटकर इसमें लगा दिया जाएगा। वह बिलकुल फिट हो जाएगा, क्योंकि वह इसका ही हाथ है। गर्दन भी कट गई, तो उसकी गर्दन इस पर बिठाई जा सकेगी। एक जैसे दस-बारह आदमी भी तैयार किए जा सकते हैं, कापी की जा सकती है, कोई हर्जा नहीं।

लेकिन फिर भी फर्क कायम रहेंगे। क्योंकि शरीर एक जैसे हो सकते हैं। वह जो भीतर है, वह बहुत यूनीक है, वह बहुत बेजोड़ है। इसलिए अगर दो कापी भी विज्ञान बना लेता है, तो शरीर बिलकुल एक जैसे होंगे, लेकिन व्यक्ति बिलकुल अलग-अलग होंगे।

वह कौन है भीतर, जो अलग है शरीर से? और दो शरीर भी एक जैसे हो जाएं, तो भी भीतर अलग होता है!

शरीर को भूलकर, इसका थोड़ा खयाल करें। इस खयाल को दो तरह से कर सकते हैं, और स्वभाव की थोड़ी-सी झलक मिल सकती है, वही अध्यात्म है। तो एक छोटा-सा प्रयोग आपको कहता हूं।

कभी जब चित्त बहुत प्रसन्न हो, कभी जब चित्त बहुत प्रसन्न हो, तो द्वार-दरवाजे बंद करके अपने कमरे में लेट जाएं नग्न होकर; आंख बंद कर लें। और एक मिनट तक अपने माथे पर हाथ रखकर दोनों आंखों के बीच में एक मिनट तक रगड़ते रहें। चित्त अगर प्रसन्न हो, तो माथे पर रगड़ते ही सारी प्रसन्नता माथे पर इकट्ठी हो जाएगी।

ध्यान रहे, जब आदमी उदास होता है, तो अक्सर माथे पर हाथ रखता है। माथे पर हाथ रखने से उदासी बिखरती है और प्रसन्नता इकट्ठी होती है। हालांकि प्रसन्नता में कोई नहीं रखता, उसका खयाल नहीं है।

जब आदमी उदास होता है, दुखी होता है, चिंतित होता है, तो माथे पर हाथ रखता है। उससे चिंता बिखर जाती है; उस जगह जो इकट्ठा है, वह बिखर जाता है। निगेटिव कुछ होगा, तो माथे पर हाथ रखने से बिखर जाता है। पाजिटिव कुछ होगा, तो माथे पर हाथ रखने से इकट्ठा हो जाता है।

इसलिए मैंने कहा, जब प्रसन्न क्षण हो मन का कोई, लेट जाएं, माथे पर एक क्षण रगड़ लें जोर से हाथ से, अपने ही हाथ से। वह जगह बीच में जो है, वह बहुत कीमती जगह है। शरीर में शायद सर्वाधिक कीमती जगह है। वहां अध्यात्म का सारा राज छिपा है। थर्ड आई कोई कहता है उसे, कोई शिवनेत्र; उसे कोई भी कुछ नाम देता हो, पर वहां राज छिपा है। उस पर हाथ रगड़ लें। उस पर हाथ रगड़ने के बाद जब आपको लगे कि प्रसन्नता सारे शरीर से दौड़ने लगी है उस तरफ, आंख बंद रखें और सोचें कि मेरा सिर कहां है! खयाल करें आप आंख बंद करके कि मेरा सिर कहां है!

आपको बराबर पता चल जाएगा कि सिर कहां है। सबको पता है, अपना सिर कहां है। फिर एक क्षण के लिए सोचें कि मेरा सिर जो है, वह छः इंच लंबा हो गया। आप कहेंगे, कैसे सोचेंगे!

यह बिलकुल सरल है, और एक दो दिन में आपको अनुभव में आ जाएगा कि माथा छः इंच लंबा हो गया। आंख बंद किए! फिर वापिस लौट आएं, नार्मल हो जाएं, अपनी खोपड़ी के अंदर वापिस आ जाएं। फिर छः इंच पीछे लौटें, फिर वापस लौटें। पांच-सात बार करें।

जब आपको यह पक्का हो जाए कि यह होने लगा, तब सोचें कि पूरा शरीर मेरा जो है, वह कमरे के बराबर बड़ा हो गया। सिर्फ सोचना, जस्ट ए थाट, एंड दि थिंग हैपेंस। क्योंकि जैसे ही यह तीसरे नेत्र के पास शक्ति आती है, आप जो भी सोचें, वही हो जाता है। इसलिए इस तरफ शक्ति लाकर कभी भी कुछ भूलकर गलत नहीं सोच लेना, वह भी हो जाता है।

इसलिए इस तीसरे नेत्र के संबंध में बहुत बातें लोगों को नहीं कही जाती हैं, क्योंकि इससे बहुत संबंधित द्वार हैं। यह करीब-करीब वैसी ही जगह है, जैसा पश्चिम का विज्ञान एटामिक एनर्जी के पास जाकर झंझट में पड़ गया है, वैसा ही पूरब का योग इस बिंदु के पास आकर झंझट में पड़ गया था। और पूरब के मनीषियों ने खोजा हजारों वर्षों तक, और फिर छिपाया इसको। क्योंकि आम आदमी के हाथ में पड़ा, तो खतरे शुरू हो गए थे।

अभी पश्चिम में वही हालत है। आइंस्टीन रोते-रोते मरा है कि किसी तरह एटामिक एनर्जी के सीक्रेट खो जाएं, तो अच्छा है; नहीं तो आदमी मर जाएगा।

पूरब भी एक दफा इस जगह आ गया था दूसरे बिंदु से, और उसने सीक्रेट खोज लिया था, और उससे बहुत उपद्रव संभव हो गए थे, और शुरू हो गए थे। तो फिर उसको भुला देना पड़ा। पर यह छोटा-सा सूत्र मैं कहता हूं, इससे कोई बहुत ज्यादा खतरे नहीं हो सकते हैं, क्योंकि और गहरे सूत्र हैं, जो खतरे ला सकते हैं।

सोचें एक क्षण को कि जब आपका सिर बाहर निकलने, भीतर आने में समर्थ हो जाए--और एक दो-चार दफे में हो जाता है--तो सोचें कि मेरा शरीर पूरे कमरे में फैल गया है, इतना बड़ा हो गया है। आप फौरन पाएंगे कि एक बैलून की तरह, एक गुब्बारे की तरह आप दीवालों को छू रहे हैं। तब आप पूछें कि मेरी आकृति क्या है? क्योंकि यह तो मेरी आकृति नहीं है।

शरीर की जो हमारी प्रतीति है, वह केवल आटोहिप्नोटिक है। बचपन से हम सोच रहे हैं, यह मेरी सीमा है, यह मेरा शरीर है; यह मेरी सीमा है, यह मेरा शरीर है। बस। यह सिर्फ सम्मोहित है। इसे छोड़ देना पड़े। यह कंडीशंड है, यह सीखी हुई बात है, इसका प्रशिक्षण हुआ है। यह है नहीं। इस प्रशिक्षण को तोड़ दें, जैसे भाषा को तोड़ा। यह भी एक भाषा है आकार की, इसको तोड़ दें, और निराकार में आप खड़े हो जाएंगे। और तब आप जानेंगे, कृष्ण का क्या अर्थ है, स्वभाव अध्यात्म है।

स्वभाव का अर्थ है, जो मैं हूं, बिना बनाया। बिना किसी की सहायता के, बिना आयोजन के, बिना चेष्टा के, बिना प्रयत्न के जो मैं हूं ही; वह जो मेरा सारभूत हिस्सा है–असृष्ट, अनिर्मित, अनायोजित–वही मैं हूं, उसको जान लेना ही अध्यात्म है। जो उसे जान ले, वही ब्रह्म को भी जान लेता है। इसलिए अध्यात्म ब्रह्म को जानने का विज्ञान है।

अपना स्वरूप अध्यात्म। भूतों के भावों को उत्पन्न करने वाला विसर्ग, त्याग, वह कर्म के नाम से कहा गया है। अर्जुन ने पूछा है, कर्म क्या है? कृष्ण कहते हैं, भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला विसर्ग, कर्म के नाम से कहा गया है। इस संबंध में दोत्तीन बातें खयाल में ले लेने जैसी हैं।

एक, जो लोग भी गीता पर टीकाएं किए हैं, उन सबने कर्म से अर्थ लिया है वैदिक कर्मकांड का। उन सबने अर्थ लिया है, शास्त्र-विहित यज्ञ, दान, होम आदि के निमित्त जो द्रव्य आदि का त्याग है, वह कर्म कहा गया है। लेकिन यह थोपा हुआ अर्थ है।

कृष्ण जैसे व्यक्ति सामयिक भाषाओं में नहीं बोलते हैं, शाश्वत भाषाओं में बोलते हैं। कृष्ण का क्या अर्थ होगा? भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला, जो त्याग है, वह कर्म कहा गया है।

यह बहुत कठिन सूत्र है। अगर इसकी पहली व्याख्या–जैसा कि आमतौर से की जाती है–की जाए, तो एकदम साधारण सूत्र है। लेकिन मैं जो इसमें देखता हूं, वह बहुत असाधारण है। तो उसे थोड़ा पकड़ने में दिक्कत पड़ेगी।

आदमी का जो स्वभाव है, वह उसका बीइंग है। और आदमी का जो स्वभाव नहीं है; वह उसका कर्म है, वह उसका डूइंग है।

और हमारे दो हिस्से हैं, एक हमारा स्वभाव, जो मैं हूं; और एक मेरे कर्म का जगत, जो मैं करता हूं। निश्चित ही, कृष्ण का यह दूसरा अर्थ है। क्योंकि जस्ट आफ्टर बीइंग की परिभाषा, कि स्वभाव अध्यात्म है, वह कर्म की परिभाषा करनी ही उनको चाहिए, कि फिर कर्म क्या है! क्योंकि हम सारे लोग डूइंग को ही समझते हैं, मैं हूं।

एक आदमी से पूछें, आप कौन हैं? वह कहता है कि मैं चित्रकार हूं। असल में चित्रकार होना, उसके होने की खबर नहीं है; इस बात की खबर है कि वह क्या करता है। चित्र बनाता है।

एक आदमी कहता है कि मैं दुकानदार हूं। दुकानदार कोई हो सकता है दुनिया में? दुकानदार कर्म है, होना नहीं है। वह आदमी यह कह रहा है कि मैं दुकानदारी करता हूं। उसको कहना यह चाहिए कि मैं दुकानदारी करता हूं। पर वह कहता है, मैं दुकानदार हूं।

हम कर्म के जोड़ को ही अपनी आत्मा बनाए हुए बैठे हैं। इसलिए हर आदमी अपने कर्म से ही अपना परिचय देता है–हर आदमी! किसी से भी पूछो, कौन हो? वह फौरन बताता है कि मेरा कर्म क्या है। पूछा ही नहीं आपसे कि आपका कर्म क्या है। लेकिन अगर नहीं पूछा कि कर्म क्या है, तो बड़ी मुश्किल है। उसका तो हमें पता ही नहीं कि मैं कौन हूं। कर्म का ही लेखा-जोखा है।

तो हर आदमी अपना खाता-बही लिए अपने साथ चलता है। वह कहता है, यह मैं हूं। कोई आदमी अपनी तिजोड़ी ढोता है, वह कहता है, यह मैं हूं। कोई आदमी अपनी पोथियां लेकर चलता है कि यह मैं हूं। कोई आदमी अपना त्याग लिए चलता है कि यह मैं हूं। देखो, मैंने बारह साल तपश्चर्या की; यह मैं हूं।

कर्म को ही हम कहते हैं कि यह मैं हूं। अगर कर्म छीन लिया जाए, तो भी आप होंगे या नहीं होंगे? अगर त्यागी से त्याग छीन लिया जाए, धनी से धन छीन लिया जाए, चित्रकार से उसकी चित्रकला छीन ली जाए, उसके हाथ काट दिए जाएं कि वह चित्र भी न बना सके, तो भी चित्रकार, जो कह रहा था कि मैं चित्रकार हूं, वह होगा कि नहीं?

वह होगा ही। हाथ काट डालो, तूलिका छीन लो; धन छीन लो, त्याग छीन लो, ज्ञान छीन लो; कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा होना तो होगा ही। मेरा होना मेरा करना नहीं है। मेरा होना नितांत अकर्म की अवस्था है, नान एक्शन की; जब मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, सिर्फ हूं।

स्वाभाविक है कि कृष्ण तत्काल कर्म की बात कहें। और अर्जुन ने भी पूछा है, कर्म क्या है? उसने भी नहीं पूछा, वैदिक कर्मकांड क्या है? पूछा कि कर्म क्या है? कृष्ण भी नहीं कहते कि वैदिक कर्म क्या है। वे कहते हैं, कर्म, भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला जो त्याग है।

बड़ा ही महत्वपूर्ण सूत्र है।

इस जगत में हमारे मन में, जब भी हम कुछ पाने की इच्छा से चलते हैं, जब भी हम भोगना चाहते हैं, तब हमें कुछ त्यागना पड़ता है। और ध्यान रहे, जब भी हम जगत में कुछ भोगना चाहते हैं, तो हमें स्वयं को त्यागना पड़ता है, दि वेरी मोमेंट। अगर मैं चाहता हूं कि मैं धनी हो जाऊं, तो हर धन की तिजोड़ी भरने के साथ-साथ मुझे अपनी आत्मा को क्षीण करते जाना पड़ेगा। अगर मैं चाहता हूं कि बड़े यश के सिंहासनों पर प्रतिष्ठित हो जाऊं, तो जैसे-जैसे मैं यश के सिंहासन की सीढ़ियां चढूंगा, वैसे-वैसे मेरा अस्तित्व, मेरा बीइंग, मेरी आत्मा नर्क की सीढ़ियां उतरने लगेगी।

इस जगत में कुछ भी भोग, त्याग है अपना। और व्यर्थ के लिए हम सार्थक को छोड़ते चले जाते हैं!

तो भोगादि की इच्छा से, वासना से, कुछ पाने की आकांक्षा से, जो भी त्याग किया जाता है, जो विसर्ग है...।

यह विसर्ग शब्द बहुत अदभुत है। अपने से बिछुड़ जाने का नाम विसर्ग है। डिसज्वाइंट फ्राम वनसेल्फ--स्वयं से टूट जाना विसर्ग है। स्वयं से चूक जाना, हट जाना विसर्ग है। स्वयं से चूक जाना ही त्याग है।

यह बड़े मजे की बात है, जिन्हें हम त्यागी कहते हैं, शायद वे त्यागी नहीं। हम सब, जिन्हें हम भोगी समझते हैं, बड़े त्यागी हैं, महात्यागी हैं। क्योंकि हम क्षुद्र के लिए विराट को छोड़कर बैठे हैं! हम जैसा त्यागी खोजना बहुत कठिन है। एक कौड़ी हमें मिलती हो, तो हम आत्मा को बेचने को तैयार हैं, कि सम्हालो यह आत्मा, कौड़ी हमें दो। हम न हुए तो चल जाएगा, कौड़ी न हुई तो कैसे चलेगा!

मुल्ला नसरुद्दीन को कुछ डाकुओं ने घेर लिया है एक अंधेरे रास्ते पर। और वे कहते हैं कि क्या इरादा है? धन देते हो अपना कि जान? नसरुद्दीन ने कहा, जान ले लो। धन तो मैंने बुढ़ापे के लिए बचाकर रखा है! और फिर जान की कीमत ही क्या है? मुफ्त मिली थी, मुफ्त एक दिन जाएगी। धन बड़ी मुश्किल से कमाया है!

हंसते हम जरूर हैं, लेकिन करते हम भी यही हैं। नसरुद्दीन इकट्ठा कर रहा है; हम जरा फुटकर-फुटकर करते हैं। वही आदमी अच्छा है; इकट्ठा कर रहा है। वही लाजिकल कनक्लूजन है हमारी जिंदगी का, वह जो नसरुद्दीन कह रहा है कि ठीक, ले लो जान। क्योंकि जान के लिए किया क्या हमने कभी कुछ। मुफ्त मिली, मुफ्त चली जाएगी। धन? धन के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ी है। और फिर, मोरओवर आई एम सेविंग इट फार दि ओल्ड एज--बुढ़ापे के लिए बचा रहा हूं। जान का क्या करेंगे बुढ़ापे में अगर धन ही न हुआ? एक बार बिना जान के चल जाए, बिना धन के नहीं चल सकता है।

मगर यह आदमी जो है, यह हमारी ही निष्पत्ति है, हमारी ही बुद्धि। यही हम सब कर रहे हैं। हम जरा हिम्मतवर कम हैं, तो धीरे-धीरे बेचते हैं, काट-काटकर बेचते हैं। यह आदमी हिम्मतवर है। और मूढ़ हिम्मतवर ज्यादा होते हैं। हम सब बहुत अपने को बुद्धिमान समझे हैं, धीरे-धीरे काट-काटकर बेचते रहते हैं।

इसे कृष्ण कहते हैं कि स्वयं से छूट जाना, स्वयं का त्याग, कर्म है। यह बड़ी अदभुत बात है। यह सूत्र बहुत कीमती है। अपने से छूट जाना, अपने को छोड़ जाना, अपने होने को, स्वभाव को, स्वरूप को छोड़कर भागना ऐसी किसी चीज के प्रति, जो न कभी मिल सकती है, और मिल भी जाए तो उसके मिलने से कुछ नहीं मिलता है। लेकिन हर आदमी अपने को छोड़कर भागता है।

कर्म की अगर यह व्याख्या खयाल में आ जाए, तो जहां-जहां हम कर्म में रत हैं, वहां-वहां हम अपने को छोड़कर भागे हैं। क्या इसका यह अर्थ है कि हम कर्म छोड़कर भाग जाएं?

नहीं, कृष्ण तो कहते हैं, कर्म छोड़कर कोई भागेगा भी तो कहां भागेगा! क्योंकि भागना भी कर्म है, और छोड़ना भी कर्म है। एक ही उपाय है कि कर्म चलता रहे, तो भी प्रतिष्ठा कर्म में न हो; प्रतिष्ठा बीइंग में, अस्तित्व में, आत्मा में हो। प्रतिष्ठा! मैं कितना ही तेजी से दौड़ूं, मेरे भीतर तो कोई बिंदु ऐसा ही होना चाहिए जो बिलकुल अदौड़ा है, दौड़ा ही नहीं है। मैं कितना ही भोजन करूं, मेरे भीतर तो कोई होना चाहिए, जिसने भोजन कभी किया ही नहीं।

वह है। सिर्फ उसका स्मरण नहीं है। मैं बाएं जाऊं कि दाएं, मैं ऊपर जाऊं कि नीचे, मेरे भीतर तो कोई होना चाहिए जो सदा थिर है और कहीं आया नहीं, गया नहीं। इस प्रतिष्ठा का नाम अध्यात्म; और इस प्रतिष्ठा से चूकने का नाम कर्म है।

यहां कर्म की एक आखिरी बात और। इसका अर्थ यह हुआ कि कर्म भी तभी स्वयं का त्याग बनता है, जब उसमें कर्ता-भाव हो; मैंने किया, ऐसा भाव हो। ज्ञानी भी करता है, लेकिन कर्ता का भाव नहीं होता, इसलिए उसके कर्म को कृष्ण कहते हैं, अकर्म जैसा कर्म है उसका। अकर्म ही है! वह करते हुए भी नहीं करता है।

और हम ऐसे लोग हैं कि हम न भी करते हों, तो भी करते रहते हैं! हममें सब ऐसे लोग हैं। हममें से सबको राष्ट्रपति के पद पर बैठने का उपद्रव नहीं झेलना पड़ेगा। ऐसे अभागे हममें बहुत कम हैं, जिनको ऐसी दुर्घटना घटे कि राष्ट्रपति हो जाएं। लेकिन हम सब बैठते रहते हैं; वह हम नहीं छोड़ते मौका। कुर्सी पर बैठे हैं, बहुत जल्दी राष्ट्रपति का सिंहासन हो जाता है। मन ही मन में न मालूम कहां-कहां चढ़ते-बैठते रहते हैं! न मालूम क्या-क्या करते रहते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी थी, तो उस पर मुकदमा चला। और मजिस्ट्रेट ने पूछा, नसरुद्दीन, क्या तुम कुछ भी अपने पक्ष, अपने बचाव में कह सकते हो? तो नसरुद्दीन ने कहा, पहली बात तो यह कि अगर अपना बचाव ही कर सकते, तो हत्या क्यों करते? अगर अपना बचाव ही कर सकते, तो हत्या क्यों करते? और फिर दूसरी बात यह कि इस स्त्री के साथ हम तीस साल रहे, क्या यह भी काफी नहीं है कि हमने इसके पहले इसकी हत्या कभी नहीं की! और नसरुद्दीन ने कहा, अब सच्ची आखिरी बात आपको बता दूं कि तीस साल तक हत्या के संबंध में सोचते रहने की बजाय मैंने सोचा, कर ही देना उचित है। तीस साल! नसरुद्दीन ने कहा, सोचिए, तीस साल! और मेरा वकील मुझ से कहता है कि अब तुझे तीस साल की सजा होगी कम से कम। इस कमबख्त ने अगर पहले ही बता दिया होता, तो हम पहले दिन इसकी हत्या कर देते, तो आज छूट गए होते! तीस साल! आज हमें दुख इस बात का नहीं है, नसरुद्दीन ने कहा कि क्यों हत्या की! आज दुख इस बात का है कि तीस साल काहे पिछड़े! किसलिए? आज छूट गए होते। आज मुक्त, बाहर होते। इस कमबख्त से पहले भी पूछा था, तब इसने कहा था, फांसी लग जाएगी नसरुद्दीन! और अब कहता है, तीस साल की सजा होगी!

कर रहे हैं हम सब। कितनी हत्याएं आपने की हैं, हिसाब है? कितने साल से, कितने लोगों की हत्या कर रहे हैं? बिना किए, किए चले जाते हैं। क्योंकि करें, तब तो एक ही करने में मुश्किल पड़ेगी। इसमें बड़ी सुविधा रहती है; ज्यादा करने की सुविधा रहती है।

हम बिना किए करते रहते हैं। कुछ लोग हैं, जो करते भी हैं और नहीं करते हैं। पर तब उनका कर्म विकर्म, अकर्म हो जाता है, विशेष कर्म हो जाता है या कर्म-शून्य हो जाता है; वे कर्ता नहीं रह जाते।

आज इतना ही। कल हम दूसरे सूत्र पर आगे बढ़ेंगे।

सुबह के लिए एक-दो सूचनाएं दे देनी हैं। सुबह केवल वे ही लोग आएंगे, जो सुनने के लिए नहीं, कुछ करने के लिए उत्सुक हों। वे ही लोग आएंगे सुबह, जो ध्यान में उतरना चाहते हों। अन्यथा न आएं। कोई दर्शक न आए।

और जो लोग आ जाएं, वे फिर पूरे साहस से उस प्रयोग में उतरें। क्योंकि सांझ हम जो बात करेंगे, वह बात ही रह जाएगी, अगर सुबह हमने उसका प्रयोग न किया। और आदमी इतना बेईमान है कि डर तो यह है कि सांझ जिसे कहा है, उसे वह सुबह तक कभी का भूल चुका होगा। लेकिन फिर भी एक कोशिश...।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
मृत्यु-क्षण में हार्दिक प्रभु-स्मरण—अध्याय—8 (प्रवचन—दूसरा)

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।।4।।
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।5।।
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।6।।
उत्पत्ति-विनाश धर्म वाले सब पदार्थ अधिभूत हैं और हिरण्यमय पुरुष अधिदेव हैं और हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, इस शरीर में मैं ही अधियज्ञ हूं।

और जो पुरुष अंतकाल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

कारण कि हे कुंतीपुत्र अर्जुन, यह मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, उस-उस को ही प्राप्त होता है।

परंतु सदा उस ही भाव को चिंतन करता हुआ, क्योंकि सदा जिस भाव का चिंतन करता है, अंतकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है।

जिसका न प्रारंभ है और न जिसका अंत, उसे कृष्ण ने ब्रह्म कहा है। जो न कभी जन्मता है और न कभी मरता है, वह ब्रह्म है। लेकिन जो भी हमारे चारों ओर मौजूद दिखाई पड़ता है, वह जन्मता भी है और मरता भी है। उत्पत्ति भी होती है उसकी और विनाश भी। कृष्ण कहते हैं, यही पदार्थ है, यही अधिभूत है।

पदार्थ की और परमात्मा की यह परिभाषा समझ लेने जैसी है। पदार्थ हम उसे कहते रहे हैं सदा से, जो वास्तविक मालूम पड़ता है, रियल मालूम पड़ता है, जिसे हम ठोंक-बजाकर देख और पहचान सकते हैं। जो हमारी इंद्रियों की पकड़ में आता है–सुना जा सकता है, देखा जा सकता है, छुआ जा सकता है। जो वास्तविक है, यथार्थ है, उसे हम पदार्थ कहते रहे हैं।

और इसीलिए पदार्थवादी दर्शन है कि परमात्मा नहीं है, क्योंकि वह पदार्थ की तरह यथार्थ नहीं है। न हम उसे देख सकते, न छू सकते। जो न छुआ जाता, न देखा जाता, न इंद्रियों की पकड़ में आता, वह नहीं है। क्योंकि उसके होने का प्रमाण क्या है? पदार्थ का तो प्रमाण है, वह प्रत्यक्ष है और इंद्रियां उसका साक्षात्कार करती हैं। परमात्मा का कोई भी प्रमाण नहीं है। इसलिए पदार्थवादी सदा से कहता रहा है कि पदार्थ ही है, परमात्मा नहीं है।

लेकिन कृष्ण जो परिभाषा करते हैं, वह पूर्वीय मनीषा की गहनतम खोजों में से एक है। वह यह है कि हम परमात्मा उसे कहते हैं, जो सदा है एकरस, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं है। और पदार्थ हम उसे कहते हैं, जो एक क्षण को भी वैसा नहीं है जैसा क्षणभर पहले था। परिवर्तन ही जिसका स्वभाव है, उसे हम पदार्थ कहते हैं; और नित्य होना ही जिसकी स्थिति है, उसे हम ब्रह्म कहते हैं।

चारों ओर जो हमें दिखाई पड़ता है, वह परिवर्तन ही है, क्योंकि परिवर्तन ही हमें दिखाई पड़ सकता है। इसे थोड़ा समझना होगा।

जो चीज बदलती है वह हमें दिखाई पड़ती है, यह आपने खयाल शायद न किया हो। कभी आपने देखा हो, एक कुत्ता आपके घर के सामने बैठा हुआ है। ठीक उसके सामने एक पत्थर पड़ा हुआ है, लेकिन उस कुत्ते को कोई फिक्र नहीं है। एक पतले धागे में उस पत्थर को बांधकर आप बैठे रहें; कुत्ता आराम से बैठा है। उस पत्थर का उसे कोई भी पता नहीं है। आप धागे से पत्थर को थोड़ा खींचें। और कुत्ते को फौरन एहसास होगा कि पत्थर है। भौंकेगा; तैयार हो जाएगा। क्या हुआ?

जो चीज बिलकुल थिर थी, उसने आकर्षित नहीं किया। वह थी या न थी, बराबर था। लेकिन जैसे ही गति आई, कि आकर्षण शुरू हुआ।

हम भी उन चीजों को भूल जाते हैं, जो बिलकुल थिर हैं। और उन्हीं चीजों को याद रख पाते हैं, जिनमें गति है और परिवर्तन है। परिवर्तन दिखाई पड़ता है, क्योंकि इंद्रियां, जो बदलता है, उसकी बदलाहट के कारण बेचैन हो जाती हैं। इसे थोड़ा समझें, तो यह भीतर प्रवेश करने में सहयोगी होगा।

जो चीज बदलती है, वह मन को बेचैन करती है, क्योंकि मन को रि-एडजस्टमेंट करना होता है। फिर से अपने को बदलती हुई स्थिति के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है। जो चीज नहीं बदलती, हम उसे भूल जा सकते हैं, क्योंकि उसके साथ कोई नई स्थिति पैदा नहीं होगी, जिसके लिए हमें उसकी याद रखनी पड़े। जब साधारण स्थिर चीजों के साथ ऐसा हो जाता है, तो जो शाश्वत है, नित्य है, जो सदा से ही रहा है–जब हम नहीं थे, तब भी था; और जब हम नहीं होंगे, तब भी होगा; हम जागते हैं, तब भी वह वैसा है; हम सोते हैं, तब भी वह वैसा है–उसको अगर हम बिलकुल ही भूल जाते हों, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

मछली को सागर के पानी का पता नहीं चलता। चल भी नहीं सकता, जब तक मछली को पानी के बाहर न निकाल दिया जाए। क्योंकि जब मछली नहीं जन्मी थी, तब भी सागर था। वह उसी में जन्मी, उसी में बड़ी हुई, उसी में जीयी। उसे पता भी नहीं हो सकता कि सागर भी है। सागर का होना इतना थिर है उसके लिए कि अपने होने में और सागर के होने में कोई फर्क और फासला भी नहीं है कि उसे उसका पता चले।

हां, एक बार मछली को सागर से बाहर निकाल लें, तो जो पहली चीज मछली को पता चलेगी, वह सागर है। फिर दूसरी चीजें तो पीछे पता चलेंगी। पहला पता चलेगा सागर का।

मछली को सागर से निकाला जा सकता है, लेकिन मनुष्य को परमात्मा के बाहर नहीं निकाला जा सकता है। इसलिए हमें उसका पता भी नहीं चल सकता है। हम उसे स्वीकार–स्वीकार करने का भी सवाल नहीं है, हम उसकी प्रत्यभिज्ञा को, उसके रिकग्नीशन को भी उपलब्ध नहीं होते हैं।

पदार्थ का पता चलता है; वह प्रतिपल भागा जा रहा है, बदलता जा रहा है। बदलते हुए पदार्थ के साथ हमें बदलना पड़ता है। हमें बदलना पड़ता है, इसलिए हमें उसका स्मरण रखना पड़ता है। इसलिए इंद्रियां केवल बदलते हुए पदार्थ को ही पकड़ती हैं। इंद्रियों का काम ही यही है। बदलते हुए संसार के हमें योग्य बनाए रखना, इंद्रियों का काम है। यही उनकी कुशलता है।

हम एक आदमी को बहरा कहते हैं, क्यों? क्योंकि बाहर जो ध्वनियों में अंतर हो रहा है, वह उसकी पकड़ में नहीं आता। लेकिन अगर पूर्ण सन्नाटा हो, तो बहरे और कान वाले आदमी में कोई फर्क होगा? अगर पूर्ण सन्नाटा हो और आप अचानक बहरे हो जाएं, तो क्या आपको पता चलेगा कि आप बहरे हो गए हैं? आपको कभी पता नहीं चलेगा। क्योंकि आपको अपने कान का ही पता तब चलेगा, जब बाहर दुनिया बदलती हो और आप उन्हें न पकड़ पाते हों।

अगर कोरे आकाश को मेरी आंखें देखती हों, जहां कोई भी परिवर्तन न हो, तो मैं कब अंधा हो गया, मुझे पता नहीं चल सकेगा। बदलती हुई चीजों की वजह से पता चलता है। आंख का काम है कि वह बदलती हुई चीजों की खबर देती रहे। ये सारे उपकरण इंद्रियों के बदलाहट की खबर देने के लिए हैं।

और जिंदगी पूरे समय बदलती है। पदार्थ पूरे समय बदलता है। और आपको प्रतिपल होश रखना पड़ेगा, बदलाहट तेजी से हो रही है। लेकिन परमात्मा तो कभी बदलता नहीं। कृष्ण कहते हैं, वह नित्य है, निराकार है, शून्य जैसा है, शून्य का सागर है। उसमें तो कोई बदलाहट होती नहीं है। इसलिए हमें उसका कोई भी पता नहीं चलता है।

तो कृष्ण ने पहले तो ब्रह्म की परिभाषा में कहा कि वह जो विनाश को कभी उपलब्ध नहीं होता।

विनाश को वही उपलब्ध नहीं हो सकता, जिसका होना न होने जैसा हो। इसे थोड़ा खयाल ले लेंगे। जिसका होना न होने जैसा हो, वही केवल विनाश को उपलब्ध नहीं हो सकता। जिसका होना जितना ठोस होगा, उतनी जल्दी विनाश को उपलब्ध हो जाएगा।

कल कोई मुझसे पूछता था कि क्या आप मुझे प्रेम करते हैं? और यदि मुझे प्रेम करते हैं, तो क्या आपका प्रेम सदा बना रहेगा मेरे प्रति? तो मैंने उस व्यक्ति को कहा कि अगर मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तो वह सदा बना रहना बहुत मुश्किल होगा। और जितना ज्यादा करूंगा, उतनी जल्दी खो जाएगा। अगर तुम चाहते हो कि मेरा प्रेम बना ही रहे सदा तुम्हारे प्रति, तो तुम्हें मेरे ऐसे प्रेम को स्वीकार करना पड़ेगा, जिसका पता भी नहीं चलता है।

जिस चीज का भी पता चलेगा, वह ठोस हो गई, पदार्थ हो गई। प्रेम भी पदार्थ हो जाता है, जब उसका पता चलता है। फिर वह विनाश के जगत में प्रवेश कर जाता है। जिस प्रेम का पता ही नहीं चलता, वह कभी विनष्ट नहीं होता। क्योंकि उसके विनाश का कोई उपाय नहीं है। आकार चाहिए, तो कोई चीज विनष्ट की जा सकती है। निराकार को विनष्ट करने का कोई उपाय नहीं है।

परमात्मा का होना, न होने जैसा है। एक्झिस्टेंस, एज इफ नान एक्झिस्टेंट, जैसे न हो। छूने जाते हैं, तो छूने में नहीं आता। देखने जाते हैं, तो दिखाई नहीं पड़ता। खोजते हैं, खोज में नहीं आता। मुट्ठी बांधते हैं, कहीं कोई पकड़ नहीं बैठती। और है! और वही है। और बाकी सब होना, न होने में डूबता चला जाता है।

लेकिन जिसे सदा होना है, उसे ऐसा होना पड़ेगा कि वह पकड़ में न आए। क्योंकि जो भी पकड़ में आता है, वह पदार्थ हो जाता है। जिस चीज को भी हम कह सकते हैं, है; हमारे कहते ही वह विनष्ट होनी शुरू हो जाती है। इसलिए कुछ अदभुत आस्तिक जमीन पर हुए हैं, उनकी मैं आपसे बात कहूं, जैसे बुद्ध।

बुद्ध से कोई पूछे कि ईश्वर है, तो वे चुप रह जाते हैं। बुद्ध के इस चुप रह जाने के कारण एक भ्रांति पैदा हुई। लोगों ने समझा, बुद्ध नास्तिक हैं और ईश्वर को नहीं मानते हैं। लेकिन बुद्ध केवल इसीलिए चुप रह जाते हैं कि जिस ईश्वर को हम कहेंगे है, उसे फिर नहीं भी होना पड़ेगा। इसलिए उसके संबंध में है कहना भी ठीक नहीं है। है कहते से ही पदार्थ प्रवेश करता है।

इस जगत में जो सच्चे आस्तिक हुए हैं, उन्होंने ईश्वर के होने के लिए कोई प्रमाण, कोई आर्ग्यूमेंट नहीं दिया है। और जिन्होंने प्रमाण दिए हैं और आर्ग्यूमेंट दिए हैं, उन्हें ईश्वर का कोई भी पता नहीं है। जो कहते हैं कि ईश्वर है, क्योंकि उसने दुनिया को बनाया...। ध्यान रखें, बनाई हुई चीज भी नष्ट हो जाती है, बनाने वाले भी नष्ट हो जाते हैं।

नहीं; परमात्मा को न तो बनाया हुआ कहो और न बनाने वाला कहो, क्योंकि ये दोनों ही बातें विनाश के जगत में प्रवेश कर जाती हैं। वह है, जैसे कि न हो। उसकी जो उपस्थिति है, उसकी जो मौजूदगी है, उसकी मौजूदगी का जो स्वभाव है, वह जस्ट लाइक एब्सेंस, जैसे गैर-मौजूद हो।

हम अपने कमरे से फर्नीचर को बाहर निकालकर फेंक सकते हैं। क्योंकि फर्नीचर है, मौजूद है, उसे बाहर किया जा सकता है। लेकिन कमरे से हवा को निकालना हो, तो बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि हवा फर्नीचर की तरह ठोस नहीं है। फिर भी हवा को निकाला जा सकता है; फिर भी निकाला जा सकता है। हाथ से धक्का मारें, तो स्पर्श हो जाता है। धुआं उड़ाएं, तो हवा की रेखाएं बोध में आने लगती हैं। सांस खींचें, तो हवा भीतर ली जा सकती है। तो फिर एक पंप लगाकर सक की जा सकती है, बाहर निकालकर फेंकी जा सकती है। नहीं तो है, लेकिन फिर भी काफी है; बाहर निकाली जा सकती है।

लेकिन एक और चीज भी है कमरे के भीतर, वह है आकाश। आकाश को बाहर बिलकुल नहीं निकाला जा सकता। पदार्थ है, उसे बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है। हवा है, वह पदार्थ और आकाश के बीच में डोलता हुआ अस्तित्व है, उसे भी निकाला जा सकता है। लेकिन आकाश है कमरे के भीतर, स्पेस है, उसे नहीं निकाला जा सकता। क्यों? क्योंकि वह न होने के जैसा है। उसे निकालिएगा कैसे! निकालने के लिए कुछ तो होना चाहिए, जिसे हम धक्का दे सकें। आकाश को हम धक्का नहीं दे सकते।

इसलिए इस जगत में सभी चीजें बनती हैं और मिटती हैं। लेकिन आकाश? आकाश अनबना, अनमिटा मौजूद रहता है। इसलिए जिन लोगों ने परमात्मा के लिए निकटतम प्रतीक खोजा है, उन लोगों ने कहा है कि वह आकाश जैसा है–शून्य, न होने जैसा, रिक्त, खाली। ऐसा हो, तो ही विनाश के बाहर हो सकता है। ऐसा न हो, तो विनाश के भीतर आ जाता है।

विनष्ट होने का कारण क्या है पदार्थ का? पदार्थ क्यों विनष्ट होता है?

पदार्थ इसलिए विनष्ट होता है कि पदार्थ डिविजिबल है, उसका विभाजन किया जा सकता है। हम एक पत्थर के दो टुकड़े कर सकते हैं। जो चीज भी विभाजित हो सकती है, उसके कितने ही टुकड़े किए जा सकते हैं, वह नष्ट हो जाएगी। जो चीज विभाजित होती है, उसका अर्थ है कि वह बहुत चीजों से मिलकर बनी है; संयोग है, कंपाउंड है।

परमात्मा संयोग नहीं है; अस्तित्व संयोग नहीं है। अस्तित्व इकट्ठा है, एक है; उसमें कोई खंड नहीं हैं। इसलिए ब्रह्म को अखंड कहा है। उसके टुकड़े नहीं हो सकते। जिस चीज के टुकड़े नहीं हो सकते, उसका विनाश नहीं हो सकता, क्योंकि विनाश की प्रक्रिया में खंडित होना जरूरी हिस्सा है।

किस चीज का खंड नहीं हो सकता? जिसकी कोई सीमा-रेखा न हो, उसका खंड नहीं हो सकता। जिसकी सीमा-रेखा हो, उसका खंड हो सकता है। वह कितनी ही छोटी हो, कितनी ही बड़ी हो, जिसकी सीमा है, उसके हम दो हिस्से कर सकते हैं। लेकिन जिसकी कोई सीमा नहीं है, उसके हम दो हिस्से नहीं कर सकते।

अस्तित्व असीम है और पदार्थ सदा सीमित है। इसलिए पदार्थ खंडन को उपलब्ध हो सकता है। खंडन से विनाश हो जाता है।

फिर जिस चीज को हम बना सकते हैं, वह मिटेगी। सिर्फ एक चीज है, जिसे हम नहीं बना सकते हैं, और वह परमात्मा है। बाकी सब चीजें हम बना सकते हैं। ऐसी कौन-सी चीज है, जो हम नहीं बना सकते? सब बना सकते हैं। अस्तित्व भर नहीं बना सकते हैं। जिसे हम बना सकते हैं, वह मिट जाएगा। और हम बना सकते हैं, ऐसा नहीं, प्रकृति भी जिसे बना सकती है, वह मिट जाएगा। जो भी कंस्ट्रक्ट हो सकता है, वह डिस्ट्रक्ट हो सकता है। जिसको हम बना ही नहीं सकते, वही केवल विनाश को उपलब्ध नहीं हो सकता है।

हमारा अनबनाया क्या है? अगर उसे हम खोज लें, तो वही ब्रह्म है। और जो भी बन सकता है, और बनाया जा सकता है, और बनाया जा रहा है–चाहे आदमी बनाए, चाहे प्रकृति बनाए–वह सब पदार्थ है।

तो कृष्ण कहते हैं, उत्पत्ति और विनाश धर्म वाले सब पदार्थ अधिभूत हैं, वे भौतिक हैं, फिजिकल हैं। और पुरुष अधिदैव है।

यह पुरुष कौन है? इस पदार्थ के बीच में जो जीता है और पदार्थ के प्रति होश से भर जाता है, उसे कृष्ण पुरुष कहते हैं।

पदार्थ को स्वयं का कोई बोध नहीं है। पत्थर पड़ा है आपके द्वार पर, तो पत्थर को कोई पता नहीं कि वह है। और पत्थर को यह भी पता नहीं कि आप भी हैं। ये दोनों बोध आपको हैं। पत्थर है, यह भी आपका बोध है; और आप हैं, पत्थर से भिन्न, यह भी आपका बोध है।

पुरुष शब्द का अर्थ होता है, नगर के बीच में रहने वाला, पुर के बीच में रहने वाला। यह पदार्थ का जो पुर है, पदार्थ का जो यह महानगर है, इसके बीच में जो रहता है। वह अपने प्रति भी होश से भरा हुआ होता है, इस नगर के प्रति भी होश से भरा हुआ होता है।

इस हिरण्यमय को कृष्ण कहते हैं, यह पुरुष अधिदैव है। यही चैतन्य है, यही परम चैतन्य है, यही परम दिव्यता है।

चेतना का लक्षण है, होश, अवेयरनेस। इसलिए सारे धर्मों ने शराब का, बेहोशी का विरोध किया है, सिर्फ एक कारण से; कोई और कारण नहीं है। सिर्फ एक कारण, कि जितने आप बेहोश होते हैं, उतने आप पदार्थ हो जाते हैं, पुरुष नहीं रह जाते। और सारे धर्मों ने ध्यान का समर्थन किया है, सिर्फ एक कारण से, कि जितने आप ध्यानस्थ होते हैं, उतने पदार्थ कम हो जाते हैं और पुरुष ज्यादा हो जाते हैं।

जिस दिन कोई व्यक्ति पूर्ण ध्यान को उपलब्ध होता है, सिर्फ शुद्ध चेतना रह जाता है, उस दिन वह परम पुरुष हो जाता है, पुरुषोत्तम हो जाता है।

और जिस दिन कोई व्यक्ति पूर्ण मूर्च्छा को उपलब्ध हो जाता है, कि उसके हाथ-पैर काट डालो, तो भी उसे पता नहीं चलता। उसकी छाती में छुरा भोंक दें, तो भी उसे पता नहीं चलता। उसे यह भी पता नहीं है कि वह है। इस परम मूर्च्छा में वह करीब-करीब पदार्थ हो जाता है, जड़ हो जाता है।

इन दोनों के बीच में कहीं हम डोलते रहते हैं। पदार्थ और परमात्मा के होने के बीच में हमारा डोलना चलता रहता है। हम चौबीस घंटे में कई बार पदार्थ के करीब पहुंच जाते हैं और कई बार हम परमात्मा के निकट पहुंच जाते हैं।

लेकिन एक सूत्र खयाल रहे, तो आप पता रख सकते हैं कि आपकी चेतना का थर्मामीटर कब पदार्थ से परमात्मा की तरफ डोलता रहता है। जब आप होश से भरे होते हैं किसी भी क्षण में, तब आप परमात्मा के मंदिर के बहुत निकट होते हैं। और जब आप बेहोश होते हैं किसी भी क्षण में, तब आप पदार्थ के बहुत निकट होते हैं।

कब आप बेहोश होते हैं? कब आप होश में होते हैं?

कभी आपने खयाल किया कि जब आप क्रोध से भरते हैं, तो होश खो जाता है। इसलिए अक्सर क्रोध के बाद आदमी कहता है कि समझ नहीं पड़ता, यह मैंने कैसे किया! यह मुझसे कैसे हो सका! यह तो मैं कभी नहीं कर सकता हूं।

वह ठीक कहता है। अब उसका थर्मामीटर होश के करीब है, इसलिए वह कह रहा है कि यह मैं कभी नहीं कर सकता हूं। उसने यह किया भी नहीं। अगर इतना होश होता, तो वह करता भी नहीं। लेकिन जब उसने किया, तो बेहोशी के करीब था। क्रोध शरीर में जहर छोड़ देता है। मार्फिया की तरह, सब भीतर चेतना को कुंद कर देता है। फिर आप कुछ भी कर गुजरते हैं। उस कर गुजरने में बेहोशी है।

इसलिए जब कोई आदमी किसी की हत्या करता है, तो पुरुष की हैसियत से कोई कभी किसी की हत्या नहीं करता, पदार्थ की हैसियत से ही हत्या करता है। और वस्तुतः समस्त धर्मों ने अगर हत्या का विरोध किया है, तो इसलिए नहीं कि दूसरा मर जाएगा; क्योंकि धर्म भलीभांति जानते हैं कि दूसरा कभी नहीं मरता है। फिर भी विरोध किया है, और विरोध का कारण यह है कि हत्या करते वक्त हत्या करने वाला मर जाता है और पदार्थ हो जाता है। उसके भीतर सारा होश खो जाता है।

बुराई में और कोई बुराई नहीं है। और भलाई में और कोई भलाई नहीं है। बुराई में एक ही बुराई है कि हम पदार्थवत हो जाते हैं। और भलाई में एक ही भलाई है कि हम पुरुषवत हो जाते हैं। यह जो भीतर चैतन्य है, यह जो चेतना की ज्योति है, इसको जितना बढ़ा लें, उतना अधिदैव के निकट होने लगते हैं। इसे जितना घटा लें, धुआं-धुआं हो जाए, अंधेरा छा जाए, उतना अधिभूत के निकट हो जाते हैं। शायद, जिसे हम पदार्थ कहते हैं, वह सोया हुआ अधिदैव है। और जिसे हम अधिदैव कहते हैं, वह जागा हुआ पदार्थ है।

लेकिन अर्जुन ने जो पूछा है, कृष्ण एक-एक की व्याख्या दे रहे हैं।

हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, इस शरीर में मैं ही अधियज्ञ हूं। यह बहुत मजे की बात कृष्ण कहते हैं, हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन!

अर्जुन को कृष्ण देहधारियों में श्रेष्ठ क्यों कहते होंगे? कोई कारण सीधा समझ में नहीं आता। कोई कारण सीधा समझ में नहीं आता। और कृष्ण अकारण कहेंगे, यह तो बिलकुल समझ में नहीं आता। या कृष्ण इसलिए कहेंगे कि वह सम्राट परिवार का है, सम्राट होने की पूरी संभावना है उसकी पुनः, इसलिए कहेंगे, यह भी समझ में नहीं आता। क्योंकि कृष्ण के लिए सम्राट और सड़क के भिखारी में क्या फर्क होगा!

और देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! क्या देहें भी श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ होती हैं? क्या कृष्ण इसलिए कहेंगे कि वह एक कुलीन वंश से आता है? क्या उसकी देह में मांस-मज्जा न होकर सोने और हीरे और जवाहरात जड़े हैं? और जड़े भी हों, तो भी हड्डी से उनका कोई ज्यादा मूल्य नहीं है। क्यों कहते होंगे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन?

गीता पर हजारों वक्तव्य दिए गए हैं, लेकिन मेरे खयाल में कोई वक्तव्य नहीं है, जो ठीक से कह पाता हो कि अर्जुन को कृष्ण ने बार-बार कहा, देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! यह क्यों कहा है? उन सबकी मान्यता यही रही है कि क्षत्रिय कुल का है, बड़े कुलीन वंश का है, राज-परिवार का है, योद्धा है, फिर कृष्ण का मित्र है, इसलिए कहते होंगे। पुण्यात्मा है, नहीं तो कैसे इतने बड़े कुल में पैदा होगा, इसलिए कहते होंगे।

नहीं; बिलकुल नहीं। एक ही क्षण में कोई व्यक्ति देहधारियों में श्रेष्ठ हो जाता है, जिस दिन उसकी देह, वह जो जीवन का परम सत्य है, उसे सुनने के निकट होती है। वह जो जीवन का परम सत्य है, वह जो जीवन का गुह्य रहस्य है, जिस दिन किसी व्यक्ति की देह, किसी व्यक्ति का शरीर उस परम रहस्य को सुनने के, देखने के, स्पर्श करने के, जानने के निकट होता है, उसी क्षण...।

कृष्ण यह कह रहे हैं अर्जुन को। और निश्चित ही इस अर्थ में वह देहधारियों में श्रेष्ठ है, क्योंकि कृष्ण के इतने निकट होना, और कृष्ण की वाणी के इतने निकट होना, और कृष्ण के गुह्य संदेश के इतने निकट होना, जस्ट बाइ दि कार्नर, जहां कोई चाहे तो छलांग लगा ले और कृष्ण हो जाए। सूर्य के इतने निकट होना कि जहां से स्वयं भी प्रकाश बन जाना आसान हो। बस, इस एक घड़ी में ही कोई व्यक्ति देहधारियों में श्रेष्ठ हो जाता है।

कभी कोई अर्जुन कृष्ण के करीब, कभी कोई आनंद बुद्ध के करीब, कभी कोई ल्यूक क्राइस्ट के करीब, कभी कोई च्वांगत्से लाओत्से के करीब देहधारियों में अचानक श्रेष्ठ हो जाता है। अपनी देह के कारण नहीं, उस दूसरे की मौजूदगी के कारण, जिसकी मौजूदगी पारस की तरह लोहे को सोने में बदल सकती है।

अर्जुन को यह याद दिलाने के लिए कि अर्जुन, यह क्षण मोमेनटस है, यह घड़ी अलौकिक है। ऐसी घड़ी बाद में पुनरुक्त होगी, नहीं कहा जा सकता है।

इतिहास दोहरता है सिर्फ सड़ी-गली चीजों के लिए। चंगेज दुबारा आ जाता है, हिटलर बार-बार लौट आते हैं। हत्याएं और युद्ध फिर-फिर हो जाते हैं। लेकिन गीता दुबारा कही जानी और दुबारा सुनी जानी मुश्किल है। जो सड़ा-गला है, वह रोज घूम-फिरकर लौट जाता है। लेकिन जो श्रेष्ठ है, उसकी पुनरुक्ति शायद ही कभी होती है।

कृष्ण सिर्फ अर्जुन को बहुत परोक्ष रूप से याद दिलाते हैं कि अर्जुन यह क्षण बहुत कीमती है। इस समय तू सिर्फ अर्जुन नहीं है, देहधारियों में श्रेष्ठ हो गया है। इस समय तू उन वचनों को सुन रहा है, जो तेरे जीवन के लिए क्रांति बन सकते हैं। एक शब्द भी तेरे लिए छलांग हो सकता है। और तत्काल उसके पीछे ही कहते हैं इसीलिए कि हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, इस शरीर में मैं अधियज्ञ हूं।

और यह जो शरीर है, यह जो देह है, इस देह में तीन बातें हो गईं। एक, इसमें पदार्थ है, जो परिवर्तित होता है, विनाश को उपलब्ध होता है। जिसे हम देह समझते हैं, वह देह वही है, जिसे कृष्ण पदार्थ कह रहे हैं, अधिभूत कह रहे हैं। इसे थोड़ा समझें।

जिसे हम कहते हैं देह, उसे कृष्ण अधिभूत कहते हैं। यह एक पर्त है हमारी देह की, दि फर्स्ट सर्किल, पहला वृत्त। इसके भीतर चलें तो चैतन्य है, चेतना है। वह भी हमारी बड़ी धीमी-धीमी है, मूर्च्छित-मूर्च्छित है। उसे कृष्ण अधिदैव कहते हैं। और अगर इसके भी भीतर चलें, तो सेंटर है, केंद्र है। वही केंद्र कृष्ण कहते हैं, मैं हूं, अधियज्ञ हूं।

बाहर है मूर्च्छित देह, पदार्थ। उसके भीतर है अर्ध-मूर्च्छित अर्ध-जाग्रत चेतना; धुआं-धुआं, अंधेरा-अंधेरा, कुछ साफ नहीं, धुंध-धुंध। उसके भीतर है जलती हुई प्रज्वलित अग्नि, पूर्ण चेतना। इसलिए कृष्ण ने उसे कहा, अधियज्ञ। वही हूं मैं यज्ञ, पूर्ण जलती हुई ज्योति, अखंड, जहां धुआं भी नहीं, फ्लेम विदाउट स्मोक।

अगर धुआं है ज्योति के आस-पास, तो वह नंबर दो की बात है--अधिदैव। अगर धुआं ही धुआं है, ज्योति ही नहीं है, तो वह पहली बात है--अधिभूत। और अगर धुआं बिलकुल नहीं है, सिर्फ फ्लेम है, सिर्फ ज्योति है, जिससे धुआं पैदा ही नहीं होता...। और जिस ज्योति में धुआं पैदा होता है, वह यज्ञ की ज्योति नहीं। जिस ज्योति में धुआं पैदा नहीं होता, वही यज्ञ की ज्योति है।

इसलिए बाहर के यज्ञों से कुछ भी न होगा। वहां तो धुआं रहेगा ही। और जो आग हमने जलाई है, वह बुझेगी ही। उस आग को खोजना पड़ेगा, जो हमने जलाई ही नहीं, जो सदा से जल ही रही है। और जो आग हमने जलाई है, उसमें ईंधन का किया है उपयोग। जहां होगा ईंधन, जहां होगा पदार्थ, वहां धुआं होगा ही। और जहां होगा ईंधन, वहां आग चुक ही जाएगी। हमें उस आग को खोजना पड़ेगा, जहां कोई ईंधन नहीं है। बिना ईंधन के अगर कोई आग मिल जाए, तो फिर नहीं बुझेगी। बुझने का कोई कारण न रहा।

ध्यान रहे, आग नहीं बुझती, ईंधन बुझता है। ईंधन बुझ जाता है, आग विलुप्त हो जाती है। ईंधनरहित अगर कोई आग हो, तो उसमें धुआं पैदा नहीं होगा। क्योंकि धुआं भी आग से पैदा नहीं होता, गीले ईंधन से पैदा होता है। सूखा ईंधन हो, तो कम पैदा होता है। ज्यादा सूखा हो, और कम होता है। ज्यादा गीला हो, और ज्यादा होता है।

ईंधन से धुआं पैदा होता है, आग से नहीं। अगर बिना ईंधन के कोई आग संभव है, तो कृष्ण कहते हैं, वही आग मैं हूं--दैट फायर--वही अधियज्ञ मैं हूं। इस देह में मैं ही अधियज्ञ हूं।

कृष्ण ने तीन पर्तों के अस्तित्व को पूरा कहा। एक पर्त है पदार्थ की। व्यक्ति की देह में भी ऐसा ही है, पदार्थ की एक पर्त। फिर चेतना का एक धुआं-धुआं, अर्ध-जाग्रत, अर्ध-सोया हुआ विस्तार। और फिर केंद्र पर वह ज्योति, जो अनिर्मित, ईंधनरहित, धुएं से मुक्त, शाश्वत और नित्य है। कृष्ण कहते हैं, वही मैं हूं।

यह व्यक्ति के तल पर; और इसे ही विराट के तल पर भी समझ लें। व्यक्ति जो है, वह विराट का ही बहुत छोटा प्रतिरूप है। इस विराट ब्रह्म की इस विराट ब्रह्मांड को भी देह समझें। तो पहली पर्त पदार्थ की; दूसरी पर्त चैतन्य की, अर्ध-चैतन्य की; और तीसरी पर्त ज्योतिर्मय ब्रह्म की। व्यक्ति के तल पर या विराट के तल पर, ये तीन सर्किल, ये तीन वृत्त, ठीक से याद रख लें। पहला पदार्थ का, दूसरा अर्ध-चेतना का, और तीसरा शुद्ध अग्नि का, शुद्ध प्रकाश का, मात्र प्रकाश का, शुद्ध चैतन्य का।

वस्तुतः वह जो शुद्ध चैतन्य है भीतर वह और बाहर वह जो शुद्ध पदार्थ है वह, ये दोनों जहां ओवरलैप करते हैं, जहां एक-दूसरे की सीमा पर छा जाते हैं, वहीं हमारी अर्ध-चेतना पैदा होती है।

जब कोई व्यक्ति पूर्ण रूप से भीतर सरक जाता है, तो अर्ध-चेतना विलुप्त हो जाती है। और बीच में वह अंतराल पैदा हो जाता है, जहां देखा जा सकता है कि मैं अलग, देह अलग; ब्रह्म अलग, पदार्थ अलग। बीच से जैसे ही अर्ध-चेतना गिर जाती है...।

यह अर्ध-चेतना दो तरह से गिर सकती है। या तो आप बिलकुल बेहोश हो जाएं पदार्थ में जाकर, तो ब्रह्म बिलकुल भूल जाता है; बेहोशी पूरी हो जाती है। या आप पूर्ण होश में आ जाएं, ब्रह्म के भीतर आकर, उस पूर्ण होश में भी यह बीच की चेतना विलुप्त हो जाती है।

मनुष्य को दो ही तरह के आनंद संभव हैं। एक आनंद--जो कि भ्रम ही है, आनंद नहीं--वह आनंद है पूर्ण मूर्च्छा का। इसलिए नींद में सुख मिलता है। बड़ी हैरानी की बात है! जिन्हें जागने में सुख का पता नहीं चलता, वे कहते हैं जागकर सुबह कि नींद में सुख मिला! जिनको जागकर भी सुख नहीं मिलता है, उन्हें नींद में कैसे मिलता होगा?

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात सोया है। और एक चोरों का गिरोह उसके घर में घुस गया। वे बड़ी खोजबीन कर रहे हैं। आखिर मुल्ला से न रहा गया, उसने कहा कि भाइयो, अगर कुछ मिल जाए, तो मुझे भी खबर कर देना! उन चोरों ने कहा, कुछ मिल जाए, खबर कर देना! मतलब? मुल्ला ने कहा, दिनभर वर्षों से खोज-खोजकर हमें कुछ न मिला इस मकान में, तो रात के अंधेरे में तुम्हें कैसे क्या मिलेगा? कुछ मिल जाए तो खबर कर जाना।

जिन्हें दिन के जागरण में कोई सुख नहीं मिला, वे रात के बाद सुबह उठकर कहते हैं, बड़ा सुख मिला! जरूर कहीं कोई भूल हो रही है। सिर्फ दिनभर में जो दुख वे पैदा करते थे, वे भर पैदा नहीं कर पाए; और कुछ मामला नहीं है। वे जो दिनभर में दुख पैदा कर लेते थे, नींद की कृपा से, बेहोशी के कारण, वे दुख पैदा नहीं कर पाए; एक।

दूसरा, नींद में दुख भी पैदा हुए हों, तो वे उन्हें पता नहीं चल पाए। तीसरा, कल के जागने और आज के जागने के बीच में वह जो आठ-दस घंटे का अंधेरा गुजर गया, उससे शृंखला टूट गई। सुबह उठकर वे कहते हैं, बड़ा सुखद मालूम हो रहा है!

नींद में हमें सुख मिलता है। शराब पी लेते हैं, तो सुख मिलता है। कामवासना में उतर जाते हैं, तो सुख मिलता है। वह सब बेहोशी है। फिल्म देखने तीन घंटे एक आदमी बैठ जाता है, तो अपने को भूल जाता है। वह बेहोशी है। फिल्म में उलझ जाता है इतना कि अपनी याद रखने की सुविधा नहीं रहती।

जहां-जहां हमें बेहोशी मिलती है, वहां-वहां थोड़ी देर को हमें लगता है, सुख मिल रहा है। वह सब नींद का ही सुख है। इस सुख को धोखा कहना चाहिए। सुख नहीं है, आत्मवंचना है।

एक और आनंद है। वह व्यक्ति, जो अपने को भूलता ही नहीं; इतना स्मरण करता है, इतना स्मरण करता है कि अंततः स्मरण उसके भीतर एक थिर बिंदु हो जाता है। वह नींद में भी जानता है कि मैं हूं। यह तीसरी, जो कृष्ण ने कहा, अधियज्ञ।

चेतना की साधना यज्ञ की साधना है। और चैतन्य को उस जगह पर पहुंचा देना है, जहां एक क्षण को भी भीतर की चेतना न छूटती हो; एक क्षण को भी गैप, अंतराल न आता हो, रिक्तता न आती हो; अखंड धारा बहती हो चैतन्य की, वहां आनंद है। वहां जो आनंद है, वह नींद जैसा आनंद नहीं, बेहोशी जैसा आनंद नहीं। बेहोशी में केवल दुख भूल जाते हैं; वहां दुख मिट जाते हैं।

दुख भूलकर जो आनंद पैदा होता है, उसे हम सुख कहते हैं। दुख मिटकर जो आनंद पैदा होता है, वही आनंद है।

व्यक्ति की पदार्थ से अर्ध-चैतन्य, अर्ध-चैतन्य से पूर्ण चैतन्य की तरफ जो यात्रा है, वही अध्यात्म है। कृष्ण ने कहा, स्वभाव अध्यात्म है। वही है स्वभाव हमारा, जो केंद्र पर जल रहा है सदा। वह जीवन की जो किरण वहां है, वही।

और जो पुरुष अंतकाल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। और जो पुरुष अंतकाल में मुझे ही याद करता हुआ।

यह मुझे से मतलब है, उसी निर्धूम ज्योति को याद करता हुआ।

ध्यान रहे, मरते वक्त उसे याद करना बहुत ही कठिन है। जिन्होंने जीवनभर शरीर को ही स्वयं समझा हो, वे मरते वक्त कैसे उसे याद कर सकेंगे! जिन्होंने जीवनभर शरीर को ही स्मरण किया हो, वे मरते वक्त उस अशरीर को कैसे स्मरण कर सकेंगे? और किसी वक्त कर भी लें, मरते वक्त तो बहुत ही मुश्किल होगा, क्योंकि जो छूट रहा है, सब छूट रहा है।

हालत ऐसी है कि जो आदमी, जिसके घर में तिजोड़ी बंद है, ताले पड़े हैं, पहरेदार लगे हैं, तिजोड़ी की चाभी अपने हाथ में है, सारा इंतजाम है; जो आदमी तब भी तिजोड़ी को नहीं भूल पाता, जब कि तिजोड़ी के छिनने का कोई भी डर नहीं है। जब डाका पड़ गया हो, और उसके ही सामने उसकी तिजोड़ी तोड़ी जा रही हो, और उसके सामने ही डाकू उसकी तिजोड़ी को घसीटकर बाहर ले जा रहे हों, सब सुरक्षा की व्यवस्था टूट गई हो, क्या आप सोच सकते हैं, उस समय वह तिजोड़ी को भूलने में समर्थ हो सकेगा? जब सारी सुरक्षा है, तब नहीं भूल पाता; तो जब सारी सुरक्षा टूट जाएगी, तब तो सिवाय तिजोड़ी के और कुछ भी याद आने वाला नहीं है।

आखिरी क्षण में तो हमारा शुद्धतम जो चेहरा है, वही प्रकट होता है, सम्हालने की भी फुर्सत नहीं मिलती। ऐसे रोज तो हम सम्हाले रहते हैं। मरते वक्त तो हमारा असली चेहरा प्रकट हो जाता है, और हमारे असली भाव प्रकट हो जाते हैं, और हमारी असली स्मृति जाहिर हो जाती है। मरते वक्त आदमी को पहचाना जा सकता है कि असल में यह आदमी क्या था।

मुल्ला नसरुद्दीन को मैंने कहा कि...पत्नी की हत्या उसने की; मुकदमा चला और उसे सूली की सजा मिली। जिस दिन उसे सूली की सजा मिली, उसे खबर देने जेलर आया और उसने कहा कि मुल्ला, आने वाले सोमवार को सुबह तुम्हारी सूली हो जाने वाली है। मुल्ला ने कहा, सोमवार को! क्या यह नहीं हो सकता कि आने वाले शनिवार को सूली दी जाए? जेलर ने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है तुम्हें! तुम्हें क्या फर्क पड़ता है कि सोमवार लगी सूली कि शनिवार लगी! मुल्ला ने कहा, असल में इस बुरे मुहूर्त से मैं सप्ताह का प्रारंभ नहीं करना चाहता हूं। सोमवार!

वह अपनी दुकान की दुनिया में जी रहा है, जहां मुहूर्त चलते हैं। अब फांसी लग रही है, लेकिन वह सोच रहा है कि सोमवार को मुहूर्त करना कि नहीं!

फिर फांसी हुई, तो जिस देश में वह रहता था, वहां नियम था कि बीच चौराहे पर नगर के फांसी लगती थी। हजारों लोग देखने आते थे। और फांसी जिसको दी जाती थी, उस आदमी से कहा जाता था कि उसे कुछ बोलना हो मरने के पहले, तो वह जनता के सामने बोल सकता था।

ठीक फांसी के पहले नसरुद्दीन से कुछ लोग मिलने आए। और जेलर बहुत हैरान हुआ कि नसरुद्दीन और उनके बीच बड़ा मोलत्तोल हुआ। कुछ जेलर की समझ में भी न पड़े कि यह बात क्या हो रही है! लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि मैं आखिरी वक्तव्य के संबंध में कुछ तैयारी कर रहा हूं, इसलिए आप बीच में बाधा न दें। बड़ी देर तक चला। कुछ वे कहते, कुछ यह कहता। फिर हां, न। आखिर कुछ समझौता हुआ और उन लोगों ने कोई चीज नसरुद्दीन को दी और उसने जल्दी से खीसे में रख ली। जेलर ने भी मरते हुए आदमी को बाधा देनी ठीक न समझी। सोचा कि अभी फांसी हो जाएगी; पीछे देख लेंगे कि जेब में क्या है।

जब फांसी लगाने का वक्त आया और नसरुद्दीन चढ़ा तख्ते पर, तो जेलर ने कहा, तुम्हें कुछ कहना हो तो कह दो। तो उसने कहा, हां, मुझे कुछ कहना है। और उसने कहा कि भाइयो, याद रखना, जूता छाप साबुन ही दुनिया में सबसे अच्छा साबुन है।

लोग भी चकित हुए। फिर उसको फांसी लग गई। उसने कांट्रैक्ट किया था सौ रुपए में। वे जो लोग आए थे, जूता छाप साबुन बनाने वाले लोग थे। वह यही कर रहा था। वे कहते थे, बीस ले लो; पच्चीस ले लो। बामुश्किल सौ पर तय हुआ था मामला। मरता हुआ आदमी! वे सौ रुपए जेब में पड़े मिले। लेकिन वह आखिरी क्षण भी धंधा कर गया! उस वक्त भी वह पचास पर राजी न हुआ; अस्सी पर राजी न हुआ। उसने कहा, सौ से कम में तो मैं मानूंगा ही नहीं!

जिंदगीभर की आदत आखिरी क्षण तक भी पीछा करती है। असल में जब वह तय कर रहा था कि सौ ही लूंगा, तब फांसी वगैरह कुछ भी नहीं थी उसके चित्त में; सब खो गया था। धंधा ही शेष था। अंत क्षण आपके जीवनभर का निचोड़ है।

कृष्ण के इस वक्तव्य से बड़ी भ्रांतियां पैदा हुईं। पहली भ्रांति तो यह हुई जिसने भारत के धार्मिक चित्त को भयंकर हानि पहुंचाई। इस वक्तव्य से लोगों ने यह समझा कि ठीक है, तो आखिरी वक्त में याद कर लेंगे। इस वक्तव्य से समझा लोगों ने–और जो पुरुष अंतकाल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें जरा भी संशय नहीं है–लोगों ने कहा, बिलकुल ठीक है। पूरी जिंदगी याद करने की कोई जरूरत न रही। अंत समय याद कर लेंगे। अगर अपने से न भी बना, क्योंकि अंत समय बोलते ही न बने, तो पास में बैठा हुआ पंडित कान में सुना देगा। घर के लोग हरिनाम का जाप करने लगेंगे, गीता सुनाई जाएगी।

कृष्ण ने यह नहीं कहा है कि अंत समय जो मेरा नाम सुन लेगा; यह नहीं कहा है। अंत समय जिसको नाम सुना दिया जाएगा, यह नहीं कहा है। जो मेरा नाम लेगा! और अंत समय कौन लेगा नाम? वही ले सकता है, जिसने जीवनभर उस नाम की संपदा को सम्हाला हो, अन्यथा नहीं ले सकता है। जीवनभर जो उस नाम में ऐसा रच-पच गया हो कि मौत भी उस नाम में बाधा न डाल पाए।

आप भी नाम लेते हैं। मैं कई लोगों को नाम लेते देखता हूं। वे बैठे हैं, माला फेरते हैं, नाम लेते हैं, और छोटी-छोटी चीजें बाधा डालती रहती हैं। बहुत छोटी चीजें बाधा डालती हैं। कौन घर में गया, बाधा पड़ जाती है। कौन किससे क्या बोला, बाधा पड़ जाती है। कोई भगवान का भजन और नाम ले रहा हो, जरा उसके पास थोड़ी दूर खड़े होकर किसी के कान में खुसफुस करके कुछ कहें। वह नाम-वाम छोड़कर आप क्या कह रहे हैं, इसे सुनने को उत्सुक हो जाता है। छोटी-छोटी चीजें बाधा डालती हैं।

मौत इस जीवन की बड़ी से बड़ी घटना है। उससे बड़ी कोई घटना नहीं है। उस घटना के क्षण में आप स्मरण न कर सकेंगे। और अगर घबड़ाकर स्मरण किया, डरकर स्मरण किया, तो ध्यान रखना, वह स्मरण परमात्मा का नहीं, भय का होगा।

मेरे एक मित्र हैं। बहुत ज्ञानी हैं। वे सदा कहते थे कि ईश्वर के स्मरण से क्या होगा? सच्चरित्रता चाहिए, सदाचार चाहिए। ईश्वर के स्मरण से क्या होगा! अच्छा आचरण चाहिए। मैंने उनसे कहा कि जो ईश्वर का स्मरण भी नहीं कर सकता, वह सदाचारी हो सकेगा, इसकी जरा असंभावना है। और जो सदाचारी हो सकता है, वह ईश्वर के स्मरण से बच सकेगा, इसकी भी बहुत मुश्किल संभावना है; यह भी नहीं हो सकता। आप कहीं किसी धोखे में हैं। उन्होंने कहा, नहीं, मुझे कोई ईश्वर-स्मरण का सवाल नहीं है। मैं तो जो ठीक है, वह करने की कोशिश करता हूं। न रिश्वत लेता हूं, न चोरी करता हूं, न मांसाहार करता हूं। ठीक नियम से रात को सोता हूं, नियम से उठता हूं। कोई दुराचरण मेरे जीवन में नहीं है। मैंने उनसे कहा, यह सब तो ठीक है, लेकिन इस सबसे सिर्फ आपका अहंकार भर अकड़ा जा रहा है, और कुछ भी नहीं हो रहा है।

कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सदाचरण भी सिर्फ अहंकार की ही परिपूर्ति करता है। और ईश्वर-स्मरण के बिना सदाचार अहंकार की ही परिपूर्ति करता है। क्योंकि फिर समर्पण का तो कोई स्थान नहीं रह जाता; अकड़ की ही जगह रह जाती है कि मैं चरित्रवान हूं, मैं नियम से रहता हूं, सत्य का पालन करता हूं, अहिंसा का पालन करता हूं, इतने व्रत लिए हुए हैं, इतना त्याग किया हुआ है। अहंकार तो मजबूत होता जाता है। लेकिन ऐसे कोई चरण नहीं मिलते, जहां इस अहंकार को रख दें।

मैंने उनसे कहा कि ठीक है। जैसा आपको ठीक लगता है, किए चले जाएं। एक ही बात याद रखें कि जिस ठीक से अहंकार मजबूत होता है, वह ठीक हो नहीं सकता।

फिर अचानक एक दिन मुझे खबर मिली कि उन्हें हृदय का दौरा हो गया, हार्ट-अटैक हो गया। मैं गया। करीब-करीब अर्ध-मूर्च्छा में पड़े थे, लेकिन जोर-जोर से कहते थे, राम-राम, राम-राम। मैंने उन्हें हिलाया कि यह क्या कर रहे हो! मरते समय गलती कर रहे हो! सदाचार काफी है; यह क्या कर रहे हो?

उन्होंने आंखें खोलीं। मुझे देखा तो कुछ होश आया। कहने लगे कि यह भी मैं भय के कारण ले रहा हूं कि पता नहीं। पता नहीं, तो हर्जा क्या है ले लेने में! ले लो। मौत सामने खड़ी है, पता नहीं, कहीं ऐसा न हो कि आखिरी क्षण में सिर्फ राम-नाम नहीं लिया, इसीलिए चूक जाएं। तो ले रहे हैं।

अब यह बिलकुल व्यवसायी की बुद्धि है; धार्मिक की बुद्धि नहीं है। और भयभीत आदमी का लक्षण है यह। स्मरण भय से नहीं होता है, स्मरण तो परम आनंद की स्फुरणा है।

तो मृत्यु के क्षण में जो आनंद से स्मरण कर सके, तो ही स्मरण है, अन्यथा स्मरण नहीं है।

भयभीत, डर रहे हैं, और कंप रहे हैं कि बचाओ, हे भगवान! अगर तुम हो, तो बचाओ। इससे कुछ अर्थ न होगा। जहां भय है, वहां प्रभु का स्मरण नहीं। जहां मृत्यु से बचने की आकांक्षा है, वहां प्रभु का कोई स्वाद नहीं।

तो कृष्ण कहते हैं, अंत समय में जो मेरे स्मरण को उपलब्ध रहता है, वह मुझे ही उपलब्ध हो जाता है। इसमें कोई भी संशय नहीं।

निश्चय ही कोई संशय नहीं, क्योंकि उस क्षण में जिसने अंतर-ज्योति का स्मरण रखा, उसे तो साफ ही दिखाई पड़ता है कि मृत्यु हो नहीं रही है। सिर्फ शरीर छूटता है, जैसे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र गिर जाएं, पुराना मकान कोई बदल ले, नए मकान में चला जाए। जो इतने चैतन्य से भरा हुआ भीतर की ज्योति को स्मरण रखता है, वह तो जानता है, यह मौत इस ज्योति को जरा-सा, हल्का-सा झोंका भी नहीं दे रही है। कुछ कंपित भी नहीं होने वाला है। वह परम आनंद में प्रतिष्ठित अपने भीतर डूब जाता है।

मौत का भय ही उसे लगता है, जिसका शरीर से तादात्म्य हो। जो मानता है, मैं शरीर हूं, वही घबड़ाता है कि छूटा–छूटा–किनारा छूटा–अब मिटे। लेकिन जो मानता है, हम किनारा हैं ही नहीं, सागर हैं, उसे किनारा छूटने से क्या भय लगेगा! वह तो सागर की खबर सुनकर प्रफुल्लित हो उठेगा। उसके पैर तो नाचने लगेंगे। उसके हृदय में तो घूंघर बंध जाएंगे। वह तो दौड़ उठेगा। वह तो कहेगा, आ गया वह क्षण! वह तो पीछे लौटकर भी नहीं देखेगा कि किनारे का क्या हुआ।

ऐसा व्यक्ति लेकिन तभी इस स्मरण को उपलब्ध हो सकता है, जब जीवनभर उसकी साधना सतत श्वास-श्वास में पिरो दी गई हो। जब हृदय की धड़कन-धड़कन इसी स्मरण के माला के मनके में बदल गई हो। जब ऐसा हुआ हो कि श्वास-श्वास उसी का स्मरण करती हो, धड़कन भी उसी के स्मरण से धड़कती हो, उठना-बैठना-चलना भी उसी के स्मरण से होता हो, तभी मृत्यु उसके स्मरण से हो सकती है।

इसलिए इस सूत्र का जो बहुत ही गलत अर्थ हुआ है, घातक, उससे बचना जरूरी है। यद्यपि अर्जुन से भी यही डर कृष्ण को रहा होगा, इसीलिए दूसरे सूत्र में तत्काल उन्होंने कहा, कारण कि हे कुंतीपुत्र अर्जुन, यह मनुष्य अंतकाल में जिस भाव को भी स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, उस भाव को ही प्राप्त होता है। परंतु सदा उस भाव को ही चिंतन करता हुआ!

अर्जुन की आंख में शायद तत्काल कृष्ण को दिखाई पड़ा होगा कि वह शिथिल हुआ। अर्जुन ने सोचा होगा, तब तो ठीक है। आखिरी समय स्मरण ही करना है न, कर लेंगे। फिर शेष जीवन को क्यों नष्ट करना इन बातों में! शेष जीवन फिर जैसा जीना है, जी लें। तो सूत्र तो हाथ लग गया; मंत्र हाथ लग गया। अंत समय स्मरण कर लेंगे!

लेकिन अंत समय पता है, कब है? यही क्षण भी अंत समय हो सकता है। कोई भी क्षण अंत समय हो सकता है। इसलिए जिसने सोचा, अंत समय कर लेंगे, वह चूक जाएगा। क्योंकि अंत समय तो कोई भी क्षण हो सकता है; यह क्षण भी हो सकता है कि मैं दूसरा शब्द बोल ही न पाऊं, यह शब्द ही अंतिम हो।

जिन लोगों ने अखंड नाम-जप की धारणा विकसित की, उसका कारण यही था। उसका कारण यह नहीं था कि आप कितने लाख परमात्मा का नाम लेते हैं। लाख वगैरह का हिसाब फिर दुकानदारी है। एक से भी काम हो सकता है; करोड़ से भी न हो।

यह धर्म का जगत कोई हिसाब-खाते का जगत नहीं है। यहां गणित नहीं चलता है कि कितना। कितना हृदयपूर्वक! कितनी संख्या नहीं। कितने लाख, तो लोग अखंड कर रहे हैं कि चौबीस घंटे का अखंड जप कर रहे हैं!

अखंड जप का केवल एक ही अर्थ और प्रयोजन है, क्योंकि अंत क्षण कौन-सा होगा, पता नहीं। कोई भी क्षण खाली न जाए जो स्मरण से रिक्त हो, क्योंकि कोई भी क्षण अंत क्षण हो सकता है। इसलिए कोई भी क्षण भीतर खाली न जाए। तो जो भी क्षण अंत क्षण होगा, वह स्मरणपूर्वक होगा।

लेकिन कृष्ण को लगा होगा कि खतरा है। इसलिए उन्होंने तत्काल फर्क बता दिए। दूसरे सूत्र में उन्होंने कहा, अंत समय जो भाव होता है, व्यक्ति उसी भाव को उपलब्ध हो जाता है। यह बड़ी वैज्ञानिक व्यवस्था है। इसे थोड़ा समझ लें।

रात आप सोते हैं। क्या कभी आपने खयाल किया कि आपका रात का अंतिम विचार सुबह का पहला विचार होता है! न किया हो, तो करें। रात का जो अंतिम विचार है, बिलकुल आखिरी, जब नींद उतरती होती है, तब जो आपके चित्त के द्वार पर खड़ा होता है विचार, उसे ठीक से खयाल कर लें, क्या है। सुबह, जब नींद के द्वार फिर खुलेंगे, तो दरवाजे पर वही आपको सबसे पहले खड़ा हुआ मिलेगा। वह रातभर खड़ा रहा है।

अंतिम विचार रात का, सुबह का पहला विचार होता है। अंतिम विचार मृत्यु का, अगले जन्म का पहला विचार बन जाता है। बीच का वक्त सिर्फ एक गहरी नींद का वक्त है; एक सर्जिकल; जब कि प्रकृति आपसे एक शरीर को छुड़ाती है और दूसरे शरीर को देती है; एक बड़े आपरेशन का। उस वक्त आप बिलकुल बेहोश रखे जाते हैं।

अगर आपने कभी क्लोरोफार्म लिया है–न लिया हो तो कभी लेकर देखें–तो क्लोरोफार्म में डूबते वक्त जो आखिरी विचार होगा, वही क्लोरोफार्म से बाहर निकलते वक्त पहला विचार होगा। अगर आप कभी बेहोश हुए हैं, तो बेहोशी का अंतिम विचार, होश आने पर पहला विचार होता है।

मृत्यु एक गहरी बेहोशी है; एक रूपांतरण; एक पर्दे का अंत; एक नाटक का समाप्त होना और दूसरे का शुरू होना है। ठीक, लेकिन दूसरा नाटक वहीं से शुरू होता है, जहां पहला समाप्त हुआ था।

तो अंतिम भाव ही आपका निर्णायक हो जाता है। और अंतिम भाव हम इतने रद्दी करते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं है, कि हम अपने रद्दी होने की आगे की व्यवस्था कर लेते हैं। आदमी मरता है भयभीत, चिंतातुर, तनाव से घिरा हुआ, दुखी, घबड़ाया हुआ। सब लुटा जा रहा है! ऐसी बेचैनी में, नारकीय चित्त में मरता है। वह अपने नर्क का इंतजाम कर लिया। वह फिर उसी सिलसिले को शुरू कर देता है।

आखिरी भाव बहुत कीमत का है, लेकिन आखिरी भाव को सम्हालना हो, तो पूरा जीवन सम्हाल लें। क्योंकि वह भाव जो है, सारे जीवन का निचोड़ है। वह ट्रामैटिक है, वह बहुत डिसीसिव है, उससे निर्णय होता है। और वह निर्णय बहुत महंगा है। क्योंकि वह एक पूरे जन्म को तय कर जाता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, लेकिन सदा उस भाव को ही चिंतन करता हुआ, क्योंकि सदा जिस भाव का चिंतन करता है, अंतकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है। वह भी कृष्ण कहते हैं, प्रायः। पक्का वह भी नहीं है।

ध्यान रहे, जिंदगीभर कुछ और, अंत समय स्मरण, उसकी तो फिक्र ही छोड़ें; जीवनभर स्मरण, तो भी कृष्ण कहते हैं--बहुत गार्डेड स्टेटमेंट है--कि जिसने जीवनभर उस चिंतन को किया है, अंत समय में प्रायः, आफन, वह उसी स्मरण को करता हुआ विदा होता है। क्यों? क्योंकि जीवनभर जो स्मरण किया है, वह अगर सतह पर रहा हो, सुपरफीशियल रहा हो, सिर्फ यांत्रिक रहा हो, कि एक आदमी कुछ भी कर रहा है और राम-राम, राम-राम भीतर करता जा रहा है...।

स्मृति के पास ऐसी व्यवस्था है कि आप साइकिल चलाते रहें और राम-राम करते रहें; कार चलाते रहें और राम-राम करते रहें। स्मृति का एक खंड अलग कर सकते हैं आप, जो आपके भीतर राम-राम करता ही रहे। वह आटोनामस हो जाता है।

अगर आप निरंतर दोत्तीन महीने राम-राम, राम-राम, राम-राम भीतर कहते रहें, तो स्मृति का एक टुकड़ा आटोनामस हो जाता है। वह फिर राम-राम, राम-राम, राम-राम कहता रहता है, आप अपना काम करते रहें। उससे कोई लेना-देना नहीं है, वह अपना जारी रखता है। वह जैसे आपने एक तोता पाल लिया। वह अपना राम-राम कहता रहता है, आप अपना कुछ भी करते रहें। ऐसा आपने भीतर स्मृति का एक टुकड़ा स्वायत्त बना लिया; अब वह अपना राम-राम, राम-राम कहता रहता है। वह मैकेनिकल डिवाइस है। और आपके काम में कोई बाधा नहीं पड़ती। आप अपना जो भी करना हो, करते रहें। चोरी करनी हो, चोरी करें। वह कहता रहेगा, राम-राम, राम-राम, राम-राम। चोरी में भी बाधा नहीं पड़ेगी। बल्कि और मजे से करेंगे कि देखो, राम-नाम भी चल रहा है; अब तो कोई डर ही नहीं है।

इसलिए राम-नाम को लेने वाले कुशलता से चोर हो सकते हैं। उनकी कुशलता और महंगी हो जाती है, क्योंकि वे कहते हैं, हम तो राम-नाम ले रहे हैं! कोई डर नहीं है।

इस तरह का स्मरण करने वाला अगर कोई होगा, तो वह सिर्फ यंत्रवत स्मरण कर रहा है। यंत्रवत और हार्दिक स्मरण का फर्क क्या है?

कभी किसी के प्रेम में गिरे हैं आप! तब आपको यंत्रवत स्मरण नहीं करना होता, याद बरबस आ जाती है--बरबस। नहीं करना चाहते, तो भी आ जाती है। कोई भी बहाना खोज लेती है और आ जाती है। अगर कभी किसी के प्रेम में गिरे हैं, फूल खिलता हुआ दिखता है, फूल भूल जाता है, उसकी याद आ जाती है। चांद निकलता है आकाश में, चांद भूल जाता है, उसकी याद आ जाती है। कोई गीत गाता है, वह गीत गाने वाला भूल जाता है, गीत की कड़ी भूल जाती है, उसकी याद आ जाती है। कोई भी बहाना काम करने लगता है।

प्रेम में अगर गिरे हैं! यह शब्द बड़ा अच्छा है, टु फाल इन लव! एक और भी प्रेम है, जिसमें चढ़ना होता है; टु राइज इन लव। वह ईश्वर का प्रेम है। यह बड़ा अच्छा है कि हम कहते हैं कि फलां आदमी प्रेम में गिर गया। है ही गिरना वहां।

कुछ लोग कभी-कभी प्रेम में चढ़ते भी हैं। कोई मीरा कभी प्रेम में चढ़ जाती है। कोई चैतन्य कभी प्रेम में चढ़ जाता है। इस प्रेम के चढ़ने में भी वैसा ही स्मरण होने लगता है, जैसा स्मरण प्रेम के गिरने में होता है। जब प्रेम के गिरने तक में हो सकता है, तो प्रेम के चढ़ने में तो होगा ही।

यह स्मरण हार्दिक है। यहां फूल खिलता है, तो परमात्मा खिल जाता है। यहां चांद उगता है, तो परमात्मा उग जाता है। यहां सागर में लहर आती है, तो परमात्मा की खबर ले आती है। हवा का झोंका आता है, तो उसी का हो जाता है। यहां आदमी की आंखें दिखाई पड़ती हैं, तो वही झांकने लगता है। यहां किसी चेहरे में सौंदर्य प्रकट होता है, तो वह उसी का होता है। यहां कोई गीत गाता है, तो कड़ी उसकी हो जाती है।

जब स्मरण हार्दिक हो, तो फिर प्रायः लगाने की जरूरत न रहेगी। इसलिए पहले सूत्र में जब कृष्ण ने कहा है, इसमें कोई संशय नहीं है, तो यह एक हार्दिक स्मरण की बात है। लेकिन अर्जुन की आंखों में जरूर उन्हें दिखाई पड़ा होगा कि वह कुछ गलत समझ रहा है, तो उन्होंने कहा कि चिंतन करता हुआ अंतकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण करता होता है–प्रायः। क्योंकि वह जो आटोनामस, स्वायत्त मन का टुकड़ा है, वह छोटे-मोटे काम में–साइकिल चलाते, कार चलाते, दुकानदारी चलाते–राम-राम करता रहता है। मौत जैसी बड़ी दुर्घटना में मुश्किल पड़ेगा।

और एक कठिनाई है। साइकिल पर बैठकर आप अभ्यास कर सकते हैं, रिहर्सल इज़ पासिबल। रोज साइकिल पर बैठें, राम-राम करें, राम-राम करें और बैठते जाएं। कभी भूल जाएंगे, कभी याद रहेगा। धीरे-धीरे अभ्यास मजबूत हो जाएगा। तो फिर साइकिल भी चलेगी, राम-राम भी चलेगा। दो साइकिलें चलेंगी, एक पैडल आप मारते रहेंगे, एक पैडल आपकी स्मृति मारती रहेगी भीतर; दो चक्र चलते रहेंगे।

लेकिन यू कैन नाट रिहर्सल डेथ; यह दिक्कत है। मौत का कोई रिहर्सल आप नहीं कर सकते। इसलिए अभ्यास नहीं कर सकते। यह बड़ी खराबी है। पहली ही दफे नाटक में सीधे खड़ा हो जाना पड़ता है। यह भी पता नहीं होता कि कौन-सा डायलाग बोलना है। कौन हैं, यह भी पता नहीं होता है, कि राम हैं, कि लक्ष्मण हैं, कि सीता हैं, कि रावण हैं। बस, अचानक पर्दा उठता है और खड़े हैं मंच पर! और पहली ही दफे बोलना पड़ता है। उसका कोई पता ही नहीं होता।

मौत आपको अभ्यास का अवसर नहीं देती है। नहीं तो हम ऐसे कुशल लोग हैं कि मौत को भी चकमा दे जाएं। हम ऐसा पक्का मजबूत रिकार्ड रख लें अपने राम-राम का, अभ्यास ऐसा कर लें मजबूती से कि मौत को भी चकमा दे दें।

मौत की चूंकि पुनरुक्ति नहीं है; अचानक आती है, आकस्मिक है, उसकी पहले से कोई तैयारी नहीं हो सकती, इसलिए आपकी तैयारी वाला काम काम नहीं आएगा। वह तैयारी की व्यवस्था मौत तोड़ ही देगी। जिसे अभ्यास से पाया था, जिस स्मरण को, मौत के वह काम नहीं पड़ेगा। जिसे हृदय से पाया हो, तो बात अलग है। हृदय से पाना अभ्यास से पाना नहीं है।

इसलिए अक्सर लोग कहते हैं कि प्रेम पहली ही नजर में हो जाता है। वे ठीक ही कहते हैं। और अगर पहली नजर में न हो, तो दूसरी नजर में तो सिर्फ अभ्यास से होता है।

अभ्यास वाला प्रेम भी है। इसलिए जो कौमें कुशल हैं, जैसे हमारी कौम है, चालाकी में बहुत कुशल है। जितनी पुरानी कौम होती है, चालाकियों में उतनी ही कुशल हो जाती है, क्योंकि उसके अनुभव गहरे होते हैं। इसलिए हम प्रेम नहीं करने देते, विवाह सीधा करवा देते हैं। फिर कहते हैं, अब प्रेम करो। वह अभ्यास वाला प्रेम है। रोज-रोज देखते; साथ रहते; उपद्रव; लड़ते-झगड़ते, क्षमा मांगते; क्रोध करते; अभ्यास होता चला जाता है। आखिर में पहुंच ही जाते हैं प्रेम पर। धक्का-धुक्की खाते, भीड़-भड़क्का करते, आखिर पहुंच ही जाते हैं! फिर किसी तरह सब सेटल चीजें हो ही जाती हैं।

मगर वह सेटलमेंट वैसा ही है, जैसा कि पैसेंजर गाड़ी के थर्ड क्लास के डिब्बे में होता है हर स्टेशन पर। हर स्टेशन पर ऐसा लगता है कि अब क्या होगा! इतनी भीड़, अब कहां बैठेगी? इतना सामान लिए कहां अंदर चले आ रहे हो? लेकिन पांच मिनट गाड़ी चली, एडजस्टेड! सब सामान रख गया, सब लोग बैठ गए। बड़े मजे का है। और ये ही फिर अगले स्टेशन पर चिल्ल-पों मचाना शुरू कर देंगे। और हर स्टेशन पर यही होता रहा है। इसलिए हिंदी में जो शब्द है रेलगाड़ी के कंपार्टमेंट के लिए डब्बा, वह बिलकुल ठीक है। डब्बा! कुछ भी हिला-डुलाकर बिठाल दो, बैठ जाता है।

मृत्यु के साथ यह नहीं चलेगा; अभ्यास नहीं चलेगा। लेकिन परमात्मा से अगर कोई हार्दिक प्रेम हो जाए, अनभ्यास का प्रेम हो जाए; पुनरुक्ति से आया हुआ नहीं, हृदय की स्फुरणा से आया हुआ। मगर यह कैसे होगा? तो शायद कृष्ण को प्रायः न लगाना पड़े। तो फिर कहा जा सके, निस्संदेह रूप से। निःसंशय होकर कहा जा सके कि हां, ठीक; हो ही जाएगा।

अभ्यास तो समझ में आता है; हम भी कर सकते हैं। यह हार्दिक समझ में नहीं आता, कैसे होगा! हृदय नाम की चीज वैसे ही न के बराबर है हमारे पास। हम हृदय से कुछ किए ही नहीं हैं, तो परमात्मा को कैसे पुकार पाएंगे! और अगर हार्दिक करना हो परमात्मा से लगाव, तो काफी बड़ा हृदय चाहिए पड़े। छोटे हृदय में, संकुचित हृदय में, उसको बुलाया भी नहीं जा सकता। और हमारे हृदय ऐसे संकुचित हैं कि आदमी भी एक-दूसरे के भीतर प्रवेश नहीं कर पाते, तो परमात्मा का प्रवेश तो बहुत दूर है।

हमारे हृदय में सिर्फ वस्तुएं ही प्रवेश कर पाती हैं, व्यक्ति भी प्रवेश नहीं कर पाते। वस्तुएं! कोई हीरे के प्रेम में मरा जा रहा है! कोई धन के प्रेम में मरा जा रहा है! कोई सोने के प्रेम में मरा जा रहा है। कोई कुर्सी और पद के प्रेम में मरा जा रहा है। बस, वस्तुएं प्रवेश कर पाती हैं; व्यक्ति तक प्रवेश नहीं कर पाते।

तो जिसे परमात्मा की तरफ हार्दिकता को ले जाना हो, एक तो उसे सबसे पहले वस्तुओं के प्रेम के प्रति सजग होना पड़े। फिर व्यक्तियों के प्रेम को बढ़ाना पड़े। और जब वस्तुओं का प्रेम गिर जाए और व्यक्तियों का प्रेम गहरा हो जाए, तब व्यक्तियों के प्रेम को भी गिरा देना पड़े और निर्व्यक्ति के प्रेम में उठना पड़े।

तो ध्यान रखना, जितना बड़ा आपका प्रेम-पात्र होगा, उतना ही बड़ा आपका हृदय हो जाएगा। छोटे-मोटे के प्रेम में पड़ना ही मत। प्रेम में ही पड़ना हो, तो क्षुद्र के क्या पड़ना! तो जरा खोजना कोई विराट, कोई विस्तार, कोई जहां सीमाएं दूर कहीं समाप्त होती हों; न होती हों, तो बहुत ही अच्छा। किसी ऐसे प्रेम में उतरना।

इसलिए अक्सर यह होता है, अक्सर यह होता है कि जिनके प्रेम विराट होते हैं, वे अक्सर परमात्मा के बहुत निकट हृदय की धड़कन को अनुभव करने लगते हैं।

अब एक चित्रकार है, वह सौंदर्य को प्रेम करता है। सौंदर्य का प्रेम जरा असीम है। वह जल्दी ही हार्दिक स्मरण को पा सकता है। एक राजनीतिज्ञ उतनी आसानी से नहीं पा सकता। उसका प्रेम बहुत सीमित और बहुत क्षुद्र है।

मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा है उसके दो बेटों के संबंध में कि क्या हालत है बेटों की? तो नसरुद्दीन ने कहा, पहला तो राजनीतिज्ञ हो गया, और दूसरे के भी आसार अच्छे नहीं हैं! एक राजनीतिज्ञ हो गया है और दूसरे के भी आसार अच्छे नहीं हैं!

क्षुद्र, कुर्सी, वह भी छोटी, जिससे हम ही बंध सकें अकेले, इतनी छोटी! दूसरे को भी जगह उसमें नहीं रखनी पड़ती; दूसरा कहीं सरककर उसमें प्रवेश न कर जाए। तो फिर आदमी क्षुद्र होता चला जाता है।

जहां भी क्षुद्र का प्रेम हो, वहां सजग होना। और जहां भी विराट को मौका मिले, मौका देना। जहां भी लगे कि कोई विस्तार है, जिसको हम प्रेम कर सकते हैं...। सुबह सूरज निकला है, तो सिर्फ इतना कहकर अपने रास्ते पर मत चले जाना कि हां, ठीक है; सुंदर है। यह कहना बहुत अपमानजनक है। असल में जिसे सुबह के सौंदर्य का पता चलता है, शायद ही ऐसा कहता हो। यह बहुत क्षुद्र है वक्तव्य। जिसे सुबह के सौंदर्य का पता चलता है, वह दो क्षण सूरज के निकट बैठ जाता है। वह अपने हृदय को खोल लेता है। वह इन किरणों को अपने में समा जाने देता है, और अपने हृदय के आंतरिक भाव को सूरज तक पहुंच जाने देता है। इसमें कहीं बातचीत नहीं होती।

जब आकाश सुंदर मालूम पड़े, तो नीचे लेट जाना थोड़ी देर को। छाती तक उस आकाश को उतर आने देना। कि वह आलिंगन कर ले, और सब तरफ से घेर ले। भूल जाना अपनी क्षुद्रता को थोड़े क्षणों में, उस विराट फैलाव को प्रेम कर लेना।

लेकिन हम बड़े संकरे प्रेम करते हैं। उन संकरे प्रेमों में हम संकरे होते चले जाते हैं। लेकिन यह मैं कह रहा हूं, यह अभ्यास की बात नहीं है, यह अवसर को खोजने की बात है। अवसर रोज हैं। अगर नजर हो, तो अवसर रोज हैं। उन अवसरों का प्रयोग करते रहना है। तो धीरे-धीरे उस परम ज्योति का स्मरण, उस परम विराट का स्मरण आसान हो जाता है। और उसकी तरफ हृदय की लगन लग जाए, तो फिर याद करना नहीं होता, वह याद बना रहता है। उसे भूलना ही मुश्किल हो जाता है।

पूछा है किसी ने फकीर बायजीद से कि बायजीद, तुम्हें हम कभी ईश्वर का स्मरण करते नहीं देखते! तुम कभी नमाज पढ़ने नहीं आते मस्जिद में? बायजीद ने कहा, हम उसे भूल ही नहीं पाते; याद कैसे करें! हम उसे भूल ही नहीं पाते हैं; याद कैसे करें? नमाज पढ़ने आएं क्या? नमाज चौबीस घंटे ही चल रही है। उठते हैं, तो वह है। सोते हैं, तो वह है। जागते हैं, तो वह है। खाते हैं, तो वह है। हम पागल हो गए हैं उसकी याद में। उसे हम भूल ही नहीं पाते हैं।

याद करना अभ्यास से होता है, हृदय से भूलना मुश्किल हो जाता है। कृष्ण कहते हैं, ऐसा हो सके, तो निस्संदेह, निःसंशय जो मेरा स्मरण करते हैं, वे मेरे ही स्वरूप को उपलब्ध हो जाते हैं।

आखिरी बात।

ये सारी बातें हम सुन लेते हैं। और शायद लगता होगा कि कृष्ण ने ठीक ही कहा। या मैंने जो कहा, ठीक ही है। लेकिन इतना सोचने से कुछ भी हल नहीं है। इतना सोचना खतरनाक भी हो सकता है। इस सोचने से भ्रम भी पैदा होता है कि हम समझ गए, और समझे जरा भी नहीं।

तो जिनको भी ऐसा लगता हो कि ठीक है, वे कल सुबह आ जाएं कुछ करने को, किसी अवसर को खोजने को।

एक बात खयाल रख लें, अकेली समझ काफी नहीं है। क्योंकि अकेली समझ को टिकने के लिए कोई जड़ें नहीं होती हैं हमारे पास। समझ आती है और बादल की तरह सरक जाती है। उस बादल को गड़ाना पड़ेगा जमीन में, जड़ें देनी पड़ेंगी, ताकि वह वृक्ष बन जाए। उसके लिए कुछ करना पड़ेगा। और वह करना हार्दिक है, अभ्यास नहीं है। तो सुबह जो हम ध्यान कर रहे हैं, वह एक हार्दिक अवसर की मौजूदगी भर है। आपके लिए अभ्यास महत्वपूर्ण नहीं है।

यहां हम, हमारे संन्यासी हैं, इनमें से अनेक के हृदय में वह हृदय की भावना जगी है। वे यहां गाएंगे, नाचेंगे। शायद देखते-देखते उनकी धुन आपको भी पकड़ जाए। शायद खड़े-खड़े आपके पैर में भी कंपन आ जाए। शायद उनकी मौज इनफेक्शियस हो जाए, छूत की बीमारी हो जाए, आपको भी छू ले। और परमात्मा करे कि छू ले, तो आप भी नाच उठें और उस लहर में बह जाएं।

तो सुबह सिर्फ एक अवसर है, जस्ट एन ऑपरचुनिटी। आ जाएं। शायद उस अवसर में कुछ बहाव मिल जाए, और कुछ हो जाए।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
स्मरण की कला—अध्याय—8 (प्रवचन—तीसरा)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामिवैष्यस्यसंशयम्।।7।।
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।8।।
कविं पुराणमनुशासितारम् अणोरणीयां समनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।9।।
इसलिए हे अर्जुन, तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निःसंदेह मेरे को ही प्राप्त होगा।

और हे पार्थ, परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त अन्य तरफ न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ पुरुष परम दिव्य पुरुष को अर्थात परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।

इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियंता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले, अचिंत्यस्वरूप, सूर्य के सदृश प्रकाशरूप, अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानंदघन परमात्मा को स्मरण करता है...।

प्रभु का स्मरण या तो थोड़ी देर को हो सकता है। लेकिन थोड़ी देर को किया हुआ स्मरण प्राणों की गहराई तक प्रवेश नहीं कर पाता है। सतह ही छूती है उससे, अंतस्तल अछूता रह जाता है। श्वास की भांति सतत स्मरण चाहिए। श्वास जैसे बीच में बंद हो जाए, तो जीवन से संबंध छूट जाता है, ऐसे ही स्मरण का धागा भी क्षणभर को भी छूट जाए, तो परमात्मा से संबंध टूट जाता है। स्मरण श्वास है परमात्मा की तरफ व्यक्ति के जीवन से बहती हुई। शरीर से जुड़े रहना हो, तो श्वास चाहिए; प्रभु से जुड़ा रहना हो, तो स्मरण चाहिए।

लेकिन हम चौबीस घंटे यदि प्रभु का स्मरण करें, तो और शेष सब काम कब कर पाएंगे? यदि चौबीस घंटे प्रभु का स्मरण ही करना हो, तो कब करेंगे भोजन, कब सोएंगे, कब जागेंगे; कब दुकान, कब बाजार, कब युद्ध–यह सब कब होगा? इसलिए एक समझौता आदमी ने खोजा, और वह यह कि और सब काम भी हम करें, घड़ी आधी घड़ी को प्रभु का स्मरण कर लें।

यह ऐसे ही हुआ, जैसे कोई सोचे कि शेष समय दूसरे काम करें, घड़ी आधी घड़ी को श्वास ले लें! यह नहीं हो सकता। यह असंभव है।

कृष्ण अर्जुन को इसलिए कहते हैं, इसलिए हे अर्जुन, तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। यह स्मरण तेरे युद्ध में बाधा नहीं बनेगा। और तू अगर सोचता हो कि प्रभु को स्मरण करना है, तो जंगल में भाग जाना पड़ेगा, तो गलत सोचता है। तू युद्ध भी कर और स्मरण भी कर।

इसका अर्थ हुआ, जो व्यक्ति जो कर रहा है, उसे करता रहे, और स्मरण भी करे। लेकिन कठिनाई मालूम पड़ती है। क्योंकि जब भी हम स्मरण करेंगे, तब दूसरे काम के करने में बाधा पड़ेगी।

चित्त की व्यवस्था ऐसी है कि चित्त की नोक पर एक चीज से ज्यादा एक साथ नहीं हो सकती। जब आप एक बात को स्मरण करते हैं, तब दूसरी बात से चित्त हट जाता है। दूसरी बात पर लगाते हैं, तो पहली बात से हट जाता है। चित्त का स्वभाव एकाग्र होना है।

तो युद्ध करते हुए प्रभु को कैसे स्मरण किया जा सकता है? अगर युद्ध करते समय भी कोई राम-राम की धुन लगाए रहे, तो या तो उसका मन राम-राम में उलझेगा, और तब युद्ध से छूट जाएगा; और या युद्ध में उलझेगा, तो राम-राम को भूल जाएगा। और कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तू दोनों साथ ही साथ कर। तो निश्चित ही यह स्मरण किसी और तरह का होगा--उसे हम समझ लें--जिससे युद्ध में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

परमात्मा का स्मरण या तो उसके नाम के दोहराने से जुड़ जाता है, जो कि सच्चा स्मरण नहीं है। सच्चे स्मरण में नाम की भी जरूरत नहीं रह जाती। असल में नाम तो बहाना है स्मरण को रखने का। जैसे कोई आदमी बाजार जाता है और कोई चीज लाने की तैयारी करके जाता है, और भूल न जाए, तो अपने कपड़े में एक गांठ लगा लेता है। भूल न जाए, इस डर से कपड़े में गांठ लगा लेता है। भूल न जाए इस डर से, जिसे भूलने का डर है, उसे गांठ लगानी पड़ती है। लेकिन जो भूल सकता है, वह बाजार जाकर यह भी भूल सकता है कि गांठ किसलिए लगाई थी।

मैंने सुना है कि रूजवेल्ट जब बोलते थे, तो अक्सर भूल जाते थे और काफी लंबा बोल जाते थे। बीस मिनट बोलना हो, तो साठ मिनट बोल जाते, अस्सी मिनट बोल जाते। बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती थी। और जब वे प्रेसिडेंट हुए, तो उनके मित्रों ने कहा, अब ऐसी भूल-चूक नहीं चलेगी। तो पहले ही दिन बोलने खड़े हुए, तो उन्होंने घड़ी हाथ से निकालकर टेबल पर रख ली और कहा कि मैं घड़ी सामने रखे लेता हूं, ताकि मुझे पता रहे कि मैं ज्यादा तो नहीं बोल गया। लेकिन शर्त एक ही है कि मुझे यह याद रह जाए कि मैंने कब बोलना शुरू किया था। घड़ी तो बता देगी कि अब दस बज गए, लेकिन यह भी याद रखना जरूरी है कि बोलना शुरू कब किया था! जो भूल सकता है, वह कुछ भी भूल सकता है।

अगर प्रभु को बिना नाम के स्मरण नहीं रखा जा सकता, तो नाम के साथ भी भूला जा सकता है। और यही हुआ है। नाम लोग दोहराते रहते हैं और प्रभु को बिलकुल स्मरण नहीं कर पाते। गांठ ही हाथ में रह जाती है; किसलिए लगाई थी, वह भूल जाता है। गांठ सहयोगी हो सकती है। लेकिन सहयोगी हो सकती है, अगर भीतर याद मौजूद हो। नाम भी सहयोगी हो सकता है। लेकिन सिर्फ सहयोगी है। नाम ही स्मरण नहीं है, सिर्फ गांठ है।

कृष्ण जिस स्मरण को कह रहे हैं, वह और है। एक तो मैं भीतर याद रखूं, परमात्मा है, परमात्मा है। और एक मैं अनुभव करूं, ज्योति है चारों ओर। दिखाई पड़ता है जो, सुनाई पड़ता है जो, सामने जो खड़ा है दुश्मन की तरह प्रत्यंचा पर तीर को चढ़ाकर, छाती को बेध देने को, वह भी प्रभु है। यह जो चारों तरफ विस्तार है, यह उसका ही विस्तार है, इसका बोध, इसकी अवेयरनेस अगर बनी रहे, तो फिर आप कुछ भी काम कर सकते हैं, स्मरण बाधा नहीं बनेगा, क्योंकि कोई भी काम स्मरण के लिए ही गांठ सिद्ध होगा।

ध्यान रखिए, एक तो नाम की गांठ लगानी पड़ती है, वह दूसरे कामों में बाधा बनेगी। लेकिन हम दूसरे समस्त कामों को ही परमात्मा को समर्पित हिस्सा समझ लेते हैं।

तो कृष्ण कहते हैं, तू युद्ध कर और स्मरण कर। युद्ध करता हुआ स्मरण कर।

इसका एक ही अर्थ है, युद्ध जो कर रहा है वह, दुश्मन जो खड़ा है वह, जो भी हो रहा है चारों ओर; कोई भी जीते, और कोई भी हारे, और कोई भी परिणाम हो; इस सबके बीच परमात्मा ही सक्रिय है। यह बोध अगर हो, तो आप दुकान पर बैठकर, दुकान का काम करते वक्त, ग्राहक से बात करते वक्त, प्रभु का स्मरण रख सकते हैं।

क्या कठिनाई है कि ग्राहक में प्रभु को न देखा जा सके? कौन-सी कठिनाई है कि जब आप कोई सामान हाथ में उठाते हों, तो उसमें प्रभु को अनुभव न किया जा सके? स्नान करते हों, तो जल की धार सिर पर पड़ती हो, वह परमात्मा की धार न बन जाए, इसमें बाधा क्या है? भोजन जब करते हों, तब वह प्रभु का ही प्रसाद हो, प्रभु ही हो, इसमें अड़चन क्या है?

अगर कोई व्यक्ति अपने जीवन की समस्त धारा के कण-कण में प्रभु को स्मरण कर पाए, तो ही स्मरण अलग काम नहीं बनता। समस्त कामों के बीच, इसे ऐसे पिरो दिया जाता है, जैसे कि माला के मनकों के बीच धागा पिरोया हो। दिखाई भी नहीं पड़ता, और सब मनकों को वही सम्हाले, भीतर पिरोया होता है।

स्मरण का अर्थ है, धागे की तरह जीवन के सारे कामों के भीतर प्रवेश कर जाए और जीवन की एक माला बन जाए, और उस माला को हम प्रभु के चरणों में रखने में समर्थ हो जाएं। वह स्मरण आपके प्रत्येक काम को ही ध्यान बना दे।

कबीर कपड़ा बुनते हैं, तो भी वे गा रहे हैं, झीनी झीनी बीनी री चदरिया! वे कपड़ा बेचने जा रहे हैं, तो भी वे ऐसे भागे जा रहे हैं कि जैसे राम बाजार में कपड़ा खरीदने को आया होगा। ग्राहक सामने है, तो वे उसे चादर ऐसी फैलाकर बताते हैं। और बड़े मजे की बात है कि कबीर जब किसी ग्राहक को चादर बेचते थे, तो उससे कहते थे, राम! बहुत सम्हालकर रखना। बहुत याददाश्त के साथ इसे बुना है। इसके रोएं-रोएं में तुम्हें ही बुना है।

ग्राहक तो कभी चौंक भी जाता था कि यह किस पागल से हम चादर खरीदने आ गए! वह मुझे राम कह रहा है!

कबीर जब ज्ञानी हो गए, परम ज्ञानी हो गए, तो शिष्यों ने कहा कि अब यह कपड़े बुनने का काम बंद कर दो, यह शोभा नहीं देता। महाज्ञानी को यह शोभा नहीं देता कि वह कपड़े बुने और बाजार में बेचे, और एक बुनकर का काम करे!

कबीर ने कहा, अगर ज्ञानी को कोई काम शोभा नहीं देता, तो फिर यह परमात्मा को इतना बड़ा काम विराट विश्व का कैसे शोभा देता होगा? और अगर परमात्मा इतने विराट के काम में लीन है और छोड़कर नहीं भाग जाता, तो मैं तो छोटे-मोटे काम में लगा हूं कपड़ा बुनने के, इसे छोड़कर भाग जाने की मैं कोई जरूरत नहीं मानता हूं।

ज्ञानी छोड़कर भागे क्यों? ज्ञानी जहां है, वहीं क्यों न राम को पिरो दे? ज्ञानी जहां है, जो कर रहा है, उसी को ही क्यों न प्रभु का स्मरण बना ले? काश, ज्ञानी कम भागे होते, तो जीवन ज्यादा सुंदर होता। ज्ञानियों के भागने से जीवन अज्ञानियों के हाथ में पड़ गया है।

लेकिन कहा नहीं जा सकता। कभी किसी ज्ञानी को भागने का कर्म ही ऐसा पकड़ लेता है कि वही उसके लिए प्रभु का स्मरण बन जाता है। वह दूसरी बात है।

लेकिन अर्जुन से कृष्ण कहते हैं, तू युद्ध कर। अर्जुन की तकलीफ, अर्जुन की चिंता यही है कि वह कहता है कि यह युद्ध और धर्म दो अलग चीजें हैं। अगर मुझे युद्ध करना है, तो मैं अधार्मिक हो जाऊंगा। और अगर मुझे धार्मिक होना है, तो मुझे युद्ध छोड़कर भाग जाना चाहिए। यह अर्जुन की ही चिंता नहीं, हम सभी की चिंता है।

आज ही कोई मित्र मेरे पास थे। वे कहते थे, आप कहते हैं संन्यास। यदि मुझे संन्यास लेना है, तो मुझे घर छोड़कर जाना ही पड़ेगा। और अगर मुझे घर में रहना है, तो संन्यास मुझे नहीं लेना चाहिए।

क्यों? घर और संन्यास में ऐसा क्या विरोध है? अगर युद्ध और परमात्मा के स्मरण में विरोध नहीं, तो घर और संन्यास में क्या विरोध हो सकता है? उनसे मैंने कहा कि संन्यास भी लो और घर में भी रहो। उन्होंने कहा, आप कैसी उलटी बातें कहते हैं!

अर्जुन के मन में भी ऐसा ही हुआ होगा कि कैसी उलटी बातें कहते हैं! अगर संन्यास लेना है, घर छोड़ दो। यह समझ में आता है। घर में रहना है, संन्यास की बात छोड़ दो। यह भी समझ में आता है। यह गणित बहुत साफ है।

लेकिन साफ गणित अक्सर ही जिंदगी के गणित नहीं होते। जिंदगी बहुत बेबूझ है। और जिंदगी के मामले में जो बहुत सफाई करने की कोशिश करता है, उसके हाथ में मुर्दा चीजें हाथ लगती हैं, जिंदगी हाथ नहीं लगती। काटते ही चीजें मर जाती हैं, बांटते ही चीजें मर जाती हैं। अगर संश्लिष्ट, सिंथेटिक जीवन को समझना हो, तो जीवन बड़ा बेबूझ है। वहां युद्ध करते हुए अगर कोई ध्यान कर सके, तो ही जीवन की गहन धारा में प्रवेश करता है।

जीवन में चुनाव नहीं है। ध्यान के साथ युद्ध हो सकता है। स्मरण के साथ युद्ध हो सकता है। और सच तो यह है, जब स्मरण के साथ युद्ध होता है, तो युद्ध युद्ध नहीं रह जाता है। वही कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं। तू स्मरण कर और युद्ध कर, क्योंकि स्मरण के साथ ही युद्ध युद्ध नहीं रह जाता। और अगर तू युद्ध से भी भाग गया और स्मरण की कला न जानी, तो तेरा संन्यास भी संन्यास नहीं हो सकेगा।

अगर स्मरण की कला ज्ञात हो, तो कसाई का काम करने वाला भी मंदिर के पुजारी से बहुत पहले प्रभु के मंदिर में प्रवेश कर जा सकता है। और अगर स्मरण की कला ज्ञात न हो, तो जीवनभर मंदिर के पूजागृह में बैठकर भी, सिर पटकने पर भी कोई परिणाम नहीं होता है।

सवाल है स्मरण की कला का, दि आर्ट आफ रिमेंबरिंग। उसे हम कैसे याद करें? और उसकी याद करते-करते ही हम बदल जाते हैं। सच तो यह है, एक बार भी कोई हृदयपूर्वक प्रभु का स्मरण करे, तो फिर वही आदमी नहीं रह जाता, जिसने स्मरण किया था। यह हो नहीं सकता। अगर स्मरण किया गया है, तो स्मरण इतनी बड़ी घटना है कि उस व्यक्ति का आमूल जीवन बदल जाता है। हां, स्मरण नहीं किया गया है, तब बात और है।

युद्ध करते हुए प्रभु का स्मरण कर। इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निस्संदेह मेरे को ही प्राप्त होगा।

और तू भय मत कर। और तू डर मत। युद्ध से भाग मत। मन-बुद्धि से युक्त होकर मेरा स्मरण कर, तो तू निश्चय ही मुझे प्राप्त होगा। मन-बुद्धि से युक्त हुआ, इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए।

निरंतर ऐसा होता है। हृदय कुछ कहता है, बुद्धि कुछ कहती है, और दोनों में कभी योग नहीं हो पाता। दोनों में कभी योग नहीं हो पाता। बुद्धि कहती है, यह ठीक है; हृदय कहता है, कुछ और ठीक है। और निरंतर भीतर एक कलह, एक कांफ्लिक्ट निरंतर चलती रहती है।

हृदय कहता है, डूब जाओ भजन में। बुद्धि कहती है, पागल हुए हो? हृदय कहता है, कब तक रुके रहोगे पदार्थों के साथ; खोजो प्रभु को! बुद्धि कहती है, अभी समय बहुत है; अभी समय कहां हुआ; अभी तो जीवन बहुत पड़ा है। पहले थोड़ा संसार का तो और अनुभव ले लो। और परमात्मा को तो फिर कभी भी पाया जा सकता है। वह प्रतीक्षा करता ही रहेगा। वह कोई चुक जाने वाला नहीं है। और इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में हो जाएगा। लेकिन यह संसार का तो भोग ठीक से कर ही लो।

बुद्धि और हृदय के बीच दरार है। और कोई व्यक्ति अगर इस दरार के साथ स्मरण करेगा, तो वह स्मरण पूरा नहीं हो पाएगा।

कुछ लोग बुद्धि से ही स्मरण करते हैं। जो लोग बुद्धि से स्मरण करते हैं, उनका स्मरण एक तरह का इनवेस्टमेंट होता है। वे सोचते हैं कि अगर प्रभु को स्मरण न किया, तो कहीं नर्क न जाना पड़े। वे सोचते हैं कि अगर प्रभु को स्मरण किया, तो स्वर्ग मिल जाएगा। वे सोचते हैं कि प्रभु को स्मरण किया, तो जीवन में सफलता मिलेगी; दुख कम आएगा, सुख ज्यादा होगा। वे सोचते हैं, अगर कुछ भी न हुआ, तो भी स्मरण करने में हर्ज क्या है! अगर कहीं कोई ईश्वर है और स्मरण न किया, तो नुकसान हो सकता है। अगर नहीं है, और स्मरण कर भी लिया, तो हर्ज क्या है! कोई नुकसान तो नहीं है। ऐसा जो लोग सोचते हैं हिसाब-किताब की भाषा में, इनके हृदय में, इनके मन की गहराइयों में कहीं भी प्रभु के लिए कोई प्यास नहीं है। यह बौद्धिक व्यापार है।

लेकिन हम सभी को प्रभु के संबंध में इसी तरह का बौद्धिक व्यापार सिखाया जाता है। बचपन से कहा जाता है, प्रभु का स्मरण करो, तो परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाओगे। हमने हिसाब की बातें सिखानी शुरू कर दीं।

हमें पता नहीं है कि हम आदमी को किस भांति अधार्मिक बनाते हैं। अगर यह बच्चा, जिससे हमने कहा कि प्रभु का स्मरण करो, परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाओगे, अगर उत्तीर्ण हो गया, तो समझेगा कि स्मरण करने में लाभ है। तो भी यह आदमी अधार्मिक हो गया, क्योंकि लाभ के लिए जो स्मरण करता है, वह धार्मिक नहीं है।

लाभ के लिए स्मरण करने में धर्म क्या है? लाभ ही लक्ष्य है; स्मरण तो केवल साधन है। तो हमने प्रभु से भी थोड़ी नौकरी-चाकरी ले ली! बस, इतनी ही उस पर कृपा की। थोड़ी सेवा उससे भी ले ली। या ज्यादा कहें तो ऐसा कि थोड़ी खुशामद की कि तेरा नाम लेने से तू प्रसन्न होता है, तो चलो ठीक है। तेरा नाम लेने से तू प्रसन्न हो ले, और हमें जो पाना है, वह देकर हमें प्रसन्न कर दे। तो एक समझौता है, एक सौदा है।

अगर उस बच्चे को सफलता मिल गई, तो भी वह अधार्मिक हो जाएगा। क्योंकि लाभ-केंद्रित हो जाएगा, प्राफिट-ओरिएंटेड हो जाएगा। और अगर असफल हो गया, तो वह सदा के लिए समझ लेगा कि प्रभु वगैरह कुछ भी नहीं है, उसके नाम लेने से कुछ भी नहीं होता।

मुल्ला नसरुद्दीन के मकान में आग लगी है। और वह अपने मकान के बाहर एक वृक्ष के नीचे आराम से टिका हुआ बैठा है। आधी रात का सन्नाटा है। रास्ते पर कोई नहीं है। पड़ोसी सब सोए हुए हैं। एक अजनबी आदमी राह भटक गया है। उसने गांव में आग लगी देखी, तो भागा हुआ सड़क से आया। दरवाजे के भीतर घुसा। मुल्ला को बैठे देखा दरख्त के नीचे। उसने कहा, क्या कर रहे हो? पागल हो गए हो? मकान में आग लगी है! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं। और देखना है आज कि परमात्मा है या नहीं। मैं प्रार्थना कर रहा हूं कि वर्षा हो जाए, और देखना है आज कि परमात्मा है या नहीं!

हर आदमी इसी तरह देख रहा है। छोटे-मोटे दांव लगाकर कहता है कि अच्छा, इसको करके दिखा दो!

दिदरो पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक हुआ। वह अक्सर सभाओं में खड़े होकर अपनी जेब से घड़ी निकाल लेता था और कहता था, इस वक्त घड़ी में नौ बजे हैं। अगर कहीं कोई परमात्मा हो, आठ बजाकर बता दे, तो मैं मान लूं! घड़ी में नौ बजकर एक मिनट बज जाता, नौ बजकर दो मिनट बज जाते। तो फिर वह कहता, देख लो। मिल गया काफी प्रमाण कि परमात्मा नहीं है।

यदि कोई असफल होता है, तो प्रमाण मिल जाता है कि परमात्मा नहीं है। और अगर सफल होता है, तो प्रमाण मिल जाता है कि परमात्मा को भी खुशामद से फुसलाया जा सकता है; वह भी स्तुति से प्रसन्न होता है। और लाभ अगर चाहिए हो, तो उसका भी उपयोग किया जा सकता है।

प्रेम उपयोग करना नहीं जानता। प्रार्थना भी उपयोग के लिए नहीं हो सकती। और जहां उपयोग है, वहां कोई संबंध नहीं है, वहां कोई हार्दिक संबंध नहीं है।

तो बुद्धि तो या तो नास्तिक बना देती है या नास्तिक से भी बदतर आस्तिक बना देती है। नास्तिक भी ठीक है फिर भी; कहता है, नहीं है। आस्तिक से बेहतर है। आस्तिक, तथाकथित आस्तिक, तो परमात्मा का इस बुरी तरह अपमान किए चला जाता है, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि लाभ! बीमारी है, तो ठीक हो जाए; और नौकरी नहीं मिलती है, तो नौकरी मिल जाए--तो परमात्मा है, इसका प्रमाण मिलता है। नहीं तो सब प्रमाण खो जाते हैं।

नहीं, बुद्धि काफी नहीं है। लेकिन हमारा सारा शिक्षण बुद्धि का है। और बुद्धि के नीचे छिपा हुआ जो गहन मन है, जो भाव जगत है, वह जो अंतस्तल है हृदय का, वह बिलकुल अछूता रह जाता है। कभी-कभी उस अछूते हृदय से भी आवाज आती है। लेकिन बुद्धि उसे दबाती रहती है।

आज ही एक मित्र मेरे सामने ही खड़े थे। कई बार मैंने अनुभव किया कि उनके भीतर तरंग आती है कि वे डूब जाएं कीर्तन में, लेकिन फिर आंख खोलकर अपने को सम्हालकर रोक लेते हैं।

यह कौन रोक रहा है भीतर? यह बुद्धि रोक रही है; वह कहती है कि आप सुशिक्षित हैं, सज्जन हैं। ऐसा नाचकर ग्रामीण जैसा काम कैसे करेंगे? विश्वविद्यालय से उपाधि-प्राप्त हैं। कोई देख लेगा, क्या सोचेगा? पागल हो गए हैं? हृदय में झनक आती है। घूंघर बजते हैं भीतर कहीं। उनके पैर कंपते हैं। फिर वे आंख खोलकर अपने को सम्हालकर खड़े हो जाते हैं! प्रतिपल आप अनुभव करेंगे, हृदय अंकुर भेजना चाहता है, लेकिन बुद्धि उसे तत्काल दबा देती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मन-बुद्धि से युक्त हुआ।

मन भी कहे हां और बुद्धि भी कहे हां, तो ही दोनों के बीच तालमेल निर्मित हो जाता है। दोनों के बीच सेतु बन जाता है। और उस सेतु के बंधे हुए क्षण में ही व्यक्ति पूरा का पूरा प्रभु को स्मरण कर पाता है।

कैसे यह होगा? अगर बुद्धि की ही सुनते रहे, तो यह कभी न होगा। क्योंकि बुद्धि बहुत ऊपरी बात है।

अगर कोई सागर अपनी लहरों की ही मानता चला जाए, तो उसके अंतरगर्भ में छिपे हुए मोतियों के ढेर का उसे कभी भी पता न चल सकेगा। क्योंकि लहरों को मोतियों की कोई भी खबर नहीं है। और लहरों से अगर पूछेगा कि क्या भीतर मोती हैं? तो लहरें कहेंगी, पागल हो। भीतर कुछ भी नहीं है। क्योंकि लहरें! लहरें सदा ऊपर हैं। उन्हें भीतर का कुछ भी पता नहीं है। लहरें कहेंगी, मोती! नासमझ हो। कभी-कभी सूखे पत्ते बहते हुए जरूर आ जाते हैं। कचरा-कबाड़ जरूर कभी-कभी लहरों पर आ जाता है। उन्हीं को लहरों ने जाना है; मोतियों की गहराइयों का उन्हें कुछ भी पता नहीं। अगर सागर लहरों की माने, तो अपनी ही संपदा से वंचित हो जाता है।

हम भी अपनी बुद्धि की लहरों की--बुद्धि बहुत ऊपरी सतह है। बुद्धि हमारी वह सतह है मन की, जिससे हम जगत के साथ संबंध स्थापित करते हैं। बुद्धि ठीक वैसी है, जैसे किसी राजमहल के द्वार पर कोई पहरेदार बैठा हो। वह पहरेदार बाहर के जगत और राजमहल के बीच में है।

लेकिन अगर हम, घर का मालिक भी, सम्राट भी पहरेदार से ही पूछने लगे कि इस महल के भीतर कुछ है? तो पहरेदार कहेगा, वहां क्या रखा है! जो कुछ है, यहां मेरे इस स्टूल पर बैठे रहने में है। यहीं; सारा जगत यहीं है। और मेरे पास आए बिना कभी कोई भीतर नहीं गया। इसलिए भीतर अगर कभी कुछ जाएगा भी, तो मेरे पास से गुजरकर ही जाएगा। अब तक तो मैंने कोई खजाना भीतर जाते नहीं देखा। कोई खजाना-वजाना भीतर नहीं है।

बुद्धि सिर्फ पहरा है, बाहर के जगत से हमारा संबंध है सुरक्षा का, सिक्योरिटी मेजर है। लेकिन जब हम उसी से पूछने लगते हैं अंतरतम की बातें, तो हमारी नासमझी है। हम जिससे पूछ रहे हैं, उसे पता ही नहीं है। लेकिन जिसे कुछ भी पता नहीं है, वह भी जवाब तो देने में कुशल होता ही है।

अक्सर तो ऐसा होता है, जिन्हें कुछ भी पता नहीं होता, वे जवाब देने के लिए बड़े आतुर होते हैं। कभी-कभी जिन्हें पता होता है, वे जवाब देने से रुक भी जाते हैं; लेकिन जिनको पता नहीं होता, वे बहुत जल्दी जवाब दे देते हैं। शायद इसीलिए कि कहीं झिझकें, तो पता न चल जाए कि पता नहीं है। जल्दी जवाब दे देते हैं।

बुद्धि बड़े जल्दी जवाब दे देती है। अगर आप बुद्धि से ही पूछते चले गए, तो परमात्मा की कोई सन्निधि, कोई सुगंध, कोई संगीत, कभी नहीं मिल सकेगा। जरा बुद्धि को हटाएं और भीतर के हृदय से पूछें। हां, बुद्धि का उपयोग करें। हृदय की आवाज हो; बुद्धि का उपयोग हो। हृदय से पूछें कि क्या करना है; और फिर बुद्धि से पूछें कि कैसे करना है। तब, तब बुद्धि और हृदय में एक सुसंगति बन जाती है।

इसे ठीक से समझ लें।

हृदय से पूछें लक्ष्य, बुद्धि से पूछें साधन। हृदय से पूछें अंतिम सिद्धि, बुद्धि से पूछें पहुंचने का मार्ग। हमेशा हृदय से पूछें कि क्या चाहिए और बुद्धि से पूछें कि यह चाहिए, अब इसे पाने के लिए क्या करना है। बुद्धि मैथडॉलाजी दे सकती है, विधि दे सकती है, मार्ग दे सकती है। लेकिन बुद्धि कभी लक्ष्य नहीं देती। और हम सब बुद्धि से लक्ष्य पूछकर भटक जाते हैं।

इसे ऐसा समझें तो बहुत आसान हो जाएगा। बुद्धि का जो चरम विकास है, वह विज्ञान में हुआ है। हृदय का जो चरम विकास है, वह धर्म में हुआ है।

अगर विज्ञान से पूछें कि हम किसलिए जीते हैं, तो विज्ञान कहेगा, हमें पता नहीं। अगर विज्ञान से पूछें कि हम किस तरह जीएं कि ज्यादा जी सकें, स्वस्थ जी सकें, तो विज्ञान रास्ता बता देगा। अगर विज्ञान से आपने पूछा कि जीवन का लक्ष्य क्या है, तो विज्ञान कहेगा, हमें कुछ पता नहीं है।

आइंस्टीन मरते वक्त पीड़ित था कि मैंने भी अणुबम के बनने में सहायता दी है। लेकिन मुझे यह पता ही नहीं था कि तुम क्या उपयोग करोगे। हम तो केवल इतना ही बता सकते थे कि अणुबम कैसे बन सकता है। तुम क्या करोगे, यह हमने सोचा भी नहीं था!

विज्ञान बता नहीं सकता कि क्या करो। धर्म ही बता सकता है कि क्या करो। विज्ञान बता सकता है कि कैसे करो, दि हाउ, कैसे! लेकिन किसलिए, फार व्हाट! विज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। बुद्धि के पास भी कोई उत्तर नहीं है।

हृदय से पूछें, क्या पाना है। और फिर बुद्धि को आज्ञा दे दें कि यह पाना है। खोजो मार्ग, खोजो विधि, खोजो व्यवस्था। और तब बुद्धि और हृदय संयुक्त हो जाते हैं। बुद्धि और हृदय का संयोग जहां है, वहीं योग फलित होता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निस्संदेह तू मुझे उपलब्ध होता है।

मेरे में अर्पण किए हुए! मजे की बात है। हृदय सदा ही अर्पण करना चाहता है। और बुद्धि सदा अर्पण करवाना चाहती है। बुद्धि कहती है, करो समर्पण। बुद्धि सदा दूसरे से समर्पण करवाना चाहती है। बुद्धि समर्पण करना जानती ही नहीं। बुद्धि अहंकार है। और हृदय! हृदय आक्रमण करना जानता ही नहीं। हृदय समर्पण है; हृदय अपूर्व विनम्रता है।

अगर कोई बुद्धि से ही खोजता रहा, तो परमात्मा के संबंध में सिर्फ तर्क कर-करके समाप्त हो जाएगा। उसे कोई भी उत्तर मिलने वाला नहीं है। अगर परमात्मा स्वयं भी सामने खड़ा हो और बुद्धि से अगर आपने पूछा कि तुम कौन हो? तो परमात्मा चुप रह जाएगा। इसलिए नहीं कि आपका प्रश्न गलत था; सिर्फ इसलिए कि बुद्धि से पूछा गया था। बुद्धि से पूछे गए इस तरह के प्रश्नों के उत्तर देने का कोई भी अर्थ नहीं है।

हृदय से पूछो, तो परमात्मा को उत्तर देना भी नहीं पड़ता, वह हृदय के ऊपर सब भांति छा जाता है, जैसे कोई बादल किसी पहाड़ को घेरकर छा ले, जैसे किसी फूल के आस-पास सब तरफ से सूरज की किरणें उसे घेर लें और छा लें। हृदय से पूछें, तो परमात्मा मौजूद भी न हो सामने, तो भी चारों तरफ से वह हृदय को घेर लेता है और हृदय की कली खिल जाती है, जैसे सुबह फूल खिल जाता है और सब तरफ से सूरज की रोशनी उसे घेर लेती है। लेकिन हृदय का सूत्र है, अर्पण।

तो कृष्ण कहते हैं, मेरे को अर्पण हुआ, मन-बुद्धि से युक्त, निस्संदेह--फिर कोई संदेह नहीं--मुझको ही उपलब्ध हो जाता है।

समर्पण ही उपलब्धि है, समर्पण ही पहुंच जाना है। जिसने रोका समर्पण से अपने को, वह वंचित रह जाएगा। जिसने छोड़ा अपने को, साहस किया, वह पहुंच जाता है।

हम सब बहुत डरे-डरे होते हैं। हम कभी भी अपने को छोड़ते नहीं। हमें जीवन में ऐसा एक भी स्मरण नहीं आता, जब हम अपने को कभी छोड़ते हैं। जिसे हम प्रेम कहते हैं, उसमें भी अपने को छोड़ते नहीं। कुछ न कुछ सदा ही पीछे बचा लिया जाता है। वही बचा हुआ, कभी भी प्रेम के अनुभव तक भी हमें नहीं पहुंचने देता।

अगर मैं किसी को प्रेम भी करता हूं, तो अपने को रोककर, बहुत-सा हिस्सा पीछे छोड़ देता हूं, जरा-सा हिस्सा बाहर भेजता हूं फीलर्स की तरह, कि जरा देख तो लें कि कहां तक मामला है। जब सुरक्षित हो जाएंगे पूरे, तब थोड़ा और हृदय का हिस्सा देंगे। अगर जरा ही डर लगा, तो जैसे कछुआ सिकुड़ जाता है अपने भीतर, हम भी सिकुड़ जाएंगे।

प्रेम में भी हम अपने को बचा लेते हैं। और प्रार्थना में तो हम और भी बचा लेते हैं। क्योंकि प्रेम करने में तो सामने कोई दिखाई पड़ता है, प्रार्थना में तो वह भी नहीं दिखाई पड़ता है। तो प्रेम में कभी-कभी थोड़ी सचाई की झलक भी आ जाती है, प्रार्थना तो बिलकुल ही झूठी हो जाती है। घुटने टेकते हैं। हाथ जोड़ते हैं। नमाज पढ़ते हैं। सिर झुकाते हैं। और सब करीब-करीब एक्सरसाइज होकर रह जाता है, व्यायाम होकर रह जाता है।

क्यों ऐसा होता है? क्योंकि हमें पता ही नहीं कि हम हृदयपूर्वक कैसे करें। अर्पण का भाव ही हमें पता नहीं है। अर्पण के भाव को भी सीखना पड़ता है।

कुछ न करें, रोज सुबह जब उठें, तो कुछ भी न करें, खाली जमीन पर लेट जाएं चारों हाथ-पैर फैलाकर। छाती को लगा लें जमीन से। अगर नग्न लेट सकें, तो और भी प्रीतिकर है। जैसे कि पृथ्वी मां है और उसकी छाती पर पूरे लेट गए चारों हाथ-पैर छोड़कर। सिर रख दें जमीन में और थोड़ी देर को अनुभव करें कि अपने को सब का सब पृथ्वी में समा दिया, छोड़ दिया। मिट्टी है दोनों तरफ, इसलिए बहुत जल्दी संबंध बन जाता है; देर नहीं लगती। यह शरीर भी उसी पृथ्वी का टुकड़ा है। बहुत जल्दी इस शरीर के कणों में और पृथ्वी के कणों में तालमेल शुरू हो जाता है, संगीत प्रतिध्वनित होने लगता है। और थोड़ी ही देर में आप अनुभव करेंगे कि आप पृथ्वी हो गए। और इतने आह्लाद का अनुभव होगा, ऐसी अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव होगा, जैसा कभी भी नहीं हुआ।

कभी सूरज की किरणों में ही लेट जाएं नग्न और सूरज की किरणों को छू लेने दें पूरे शरीर को। आंख बंद कर लें और किरणों में अपने को समर्पित कर दें। क्योंकि सूरज की किरण के बिना इस शरीर के भीतर जीवन नहीं है। इसलिए शरीर के भीतर जो भी ऊर्जा है, जीवन है, वह सूरज की किरण से जुड़ा है।

जैसे ही समर्पण का भाव होगा कि हो गए एक, ले चल सूरज मुझे अपनी किरणों पर दूर की यात्रा पर; मैं राजी हूं, मैं छोड़ता हूं अपने को। जहां तू मार्ग दिखाएगा, वहीं चल पडूंगा! थोड़ी ही देर में पाएंगे कि किरणें अब सिर्फ चमड़ी को नहीं छूतीं, कहीं भीतर हृदय को गुदगुदाना उन्होंने शुरू कर दिया है। कहीं कोई हृदय की पंखुड़ी पर भी उनकी चोट पड़ने लगी, और कहीं कोई प्राणों का पक्षी भी पंख खोलकर उड़ जाने को आतुर हो गया है।

कहीं भी सीखें, किसी तरह भी सीखें। कहीं भी सीखें, किसी तरह भी सीखें। पत्नी को भी प्रेम देते हों, तो पूरा दे दें। मां की गोद में सिर रखते हों, तो पूरा रख दें। मित्र का हाथ भी लेते हों, तो फिर पूरा ही हाथ हाथ में ले लें। किसी को गले भेंटते हों, तो सिर्फ हड्डियां ही न छुएं; छोड़ दें अपने को। एक क्षण को ले जाने दें। तो धीरे-धीरे अर्पण का भाव खयाल में आएगा।

और उस अर्पण के भाव को ही जब सर्व विराट परमात्मा के प्रति कोई लगा देता है, क्योंकि बाकी सब अनुभव में कोई न कोई मौजूद है। परमात्मा गैर-मौजूदगी है। इसलिए मौजूदगी से अनुभव लें और जब अनुभव गहरा हो जाए, तो फिर गैर-मौजूदगी की तरफ, अनुपस्थित की तरफ, जो नहीं दिखाई पड़ता, उसकी तरफ समर्पण कर दें।

वह समर्पण इसीलिए कठिन है। कोई मौजूद हो, तो समर्पण आसान मालूम पड़ता है। कोई मौजूद ही नहीं, तो समर्पण किसके प्रति? लोग पूछते हैं, किसके प्रति समर्पण?

लेकिन आदमी की चालाकी का कोई अंत नहीं है। एक बहुत अजीब अनुभव मुझे हुआ। वह यह हुआ कि अगर किसी को बताओ कि इसके प्रति समर्पण करो, तो वह कहता है, इसके प्रति समर्पण? इसमें तो इतनी खामियां हैं! और कहो कि इसके प्रति समर्पण करो, तो अहंकार को चोट लगती है कि मैं और इसके प्रति समर्पण करूं? यह भी तो मेरे जैसा आदमी है; हड्डी-मांस का बना है। भूख इसे लगती है, तो क्रोध भी जरूर लगता ही होगा। नींद इसे आती है, तो कामवासना भी सताती ही होगी। कहीं न कहीं छिपाए होगा सब। और मैं इसके प्रति! मैं भी तो ऐसा ही आदमी हूं!

अगर बताओ किसी को कि इसके प्रति करो--बुद्ध सामने खड़े हों, तो भी वही कठिनाई आ जाती है। कृष्ण सामने खड़े हों, तो भी वही कठिनाई आ जाती है। और अगर कोई सामने न हो, तो आदमी का चालाक मन कहता है, किसके प्रति समर्पण करूं? कोई दिखाई तो पड़ता नहीं!

आदमी की इस बेईमानी से बचाने के लिए, जो बहुत बुद्धिमान लोग थे, उन्होंने परमात्मा की मूर्तियां बनाईं। मूर्ति बीच की व्यवस्था थी। न तो व्यक्ति है वहां--बुद्ध और कृष्ण और महावीर और मोहम्मद नहीं हैं वहां--मूर्ति पत्थर है, तो आप यह भी न कह सकेंगे कि इस पत्थर को कहीं क्रोध तो नहीं आता! और कुछ मौजूद भी है, तो आप यह भी न कह सकेंगे कि जो मौजूद नहीं है, उसके प्रति समर्पण कैसे करूं!

लेकिन आदमी की चालाकी का कोई अंत नहीं है। उसने कहा, इस पत्थर को! पत्थर के प्रति समर्पण करवा रहे हैं! इस पत्थर में रखा ही क्या है। अभी चाहूं, तो दो टुकड़े करके इसके बता सकता हूं। जो अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता, वह क्या खाक मेरी रक्षा करेगा!

दयानंद की सारी क्रांति इसी नासमझी से पैदा हुई। इसी नासमझी से, कि परमात्मा की मूर्ति को एक चूहा परेशान करता रहा। तो दयानंद ने कहा कि चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर पाते, तो मेरी क्या रक्षा करोगे और जगत की क्या रक्षा करोगे! सब बेकार है। चूहे की इस प्रतीति पर सारा आर्यसमाज खड़ा हुआ है! सारी दृष्टि इतनी छोटी-सी है। लेकिन मूर्ति के विरोधी हो गए दयानंद, क्योंकि मूर्ति अपनी रक्षा न कर पाई।

और पता नहीं, यह आदमी कैसा है! कुछ भी उसे कहो, वह तरकीब निकालेगा और अपनी बीमारी को बचा लेगा। जीवित आदमी हो, तो भूल-चूक मिलेगी। मूर्ति हो, तो पत्थर हो जाती है। और परमात्मा अगर गैर-मौजूद है, तो कहां उसके चरण हैं? कहां और किसके चरणों पर मैं सिर रखूं? और आदमी अपने को बचाता चला जाता है।

इसलिए मैंने कहा, अर्पण सीखें। पृथ्वी से सीखें। आकाश से सीखें। सूरज से सीखें। प्रेम में सीखें। कहीं भी सीखें। एक बात खयाल रखें कि अर्पण का अनुभव आपका जितना सघन होता चला जाए, उतना ही किसी दिन समर्पण परमात्मा के प्रति आसान हो सकेगा।

जब भी कोई आदमी मुझे आकर कहता है कि कैसे करूं समर्पण, तब मैं जानता हूं, इस आदमी ने कभी कोई प्रेम नहीं किया। इस आदमी ने कभी कोई सौंदर्य की प्रतीति नहीं की। इस आदमी को कभी फूल खिलते दिखाई नहीं पड़े; सूरज उगता नहीं दिखाई पड़ा। इसने कभी नदी के तट पर जाकर नदी की शीतल रेत में अपने को लिटाया नहीं। यह कभी पानी की धार में आंख बंद करके बैठा नहीं कि पानी की धार की सरसराहट में इसके भीतर भी कोई तरंग पैदा हो जाए।

नहीं, इस आदमी ने कुछ भी नहीं जाना। इसने तिजोरी भरी होगी। इसने कपड़े इकट्ठे किए होंगे। इसने मकान बनाया होगा। लेकिन इसकी संवेदना का कोई द्वार नहीं खुल पाया है। तो इसलिए अब यह पूछता है कि समर्पण कैसे? कैसे झुक जाऊं? कैसे सिर नवाऊं? गर्दन अकड़ गई है, पैरालाइज्ड हो गई है। अकड़े-अकड़े, चौबीस घंटे अकड़े-अकड़े गर्दन बिलकुल अकड़ गई है। झुकती नहीं है; झुक नहीं सकती।

तो कृष्ण कहते हैं, मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निस्संदेह मुझे पा लेता है। और हे पार्थ, ध्यान के अभ्यास रूपी योग से युक्त अन्य तरफ न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ पुरुष परम दिव्य पुरुष को, परमेश्वर को प्राप्त होता है।

अभ्यास रूप योग से ध्यान को प्राप्त हुआ और अन्य की तरफ न जाता हुआ!

कोई अन्य परमात्मा तो है नहीं, परमात्मा तो एक है। इस्लाम ठीक कहता है कि सिवाय अल्लाह के और कोई अल्लाह नहीं है। देयर इज़ नो गॉड एक्सेप्ट दि गॉड, ईश्वर के सिवाय और कोई ईश्वर नहीं। ठीक कहता है। एक ही है वह।

तो अन्य तो कोई ईश्वर नहीं है। इसलिए जब कृष्ण कहते हैं कि जिसका ध्यान सतत मुझमें ही अभ्यासरत हुआ है और मेरे अतिरिक्त अन्य की तरफ नहीं जाता, तो इसका आप यह मतलब मत समझना कि कृष्ण कहते हैं, बुद्ध की तरफ नहीं जाता, महावीर की तरफ नहीं जाता, राम की तरफ नहीं जाता। भक्तों ने ऐसे-ऐसे गलत अर्थ निकाले हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कृष्ण-भक्त सोचता है कि अगर राम की तरफ गया, तो अन्य की तरफ गया। अगर बुद्ध की तरफ गया, तो अन्य की तरफ गया। कृष्ण ने तो साफ कहा है, अनन्य रूप से मेरी तरफ, अन्य की तरफ नहीं।

लेकिन भूल है समझ की। परमात्मा तो एक ही है। उसे कोई राम कहे, और कोई रहीम कहे, और कोई कृष्ण कहे, और कोई कुछ और कहे। परमात्मा तो एक ही है। यहां अन्य से क्या अर्थ है? क्या और परमात्मा भी हैं, जिनकी तरफ से बचा लो अपने को? और कोई परमात्मा नहीं है। फिर किससे बचाने को कहते होंगे?

कृष्ण इतना ही कह रहे हैं कि सवाल परमात्मा का नहीं है। लेकिन आदमी के मन में हजार-हजार चीजों की तरफ दौड़ने की वृत्ति है। हजार-हजार चीजों की तरफ दौड़ने की वृत्ति है। और एक के साथ ज्यादा देर रहने की क्षमता नहीं है। मन प्रतिपल नए को खोजता है। नया मकान बना लें; दो-चार-आठ दिन में ही पुराना पड़ जाता है। मन कहता है, अब कोई और दूसरा नया बनाओ। नए कपड़े पहन लें; चार दिन बाद मन फिर दुकानों के सामने ठिठककर रुकने लगता है, कि मालूम होता है, नए फैशन के कपड़े फिर बाजार में आ गए।

मन नए की तलाश करता है। क्यों? क्योंकि अगर एक ही चीज के साथ मन को रहना पड़े, तो मन के लिए गति नहीं मिलती, इसलिए मन ऊब जाता है। कहता है, नया लाओ।

लेकिन परमात्मा तो नया लाया नहीं जा सकता। इसलिए जो नए की निरंतर खोज में लगा है, वह परमात्मा के साथ रुक न पाएगा। परमात्मा के साथ तो वही रुक सकता है, जो उस अभ्यास में आ गया, जहां ऊब पैदा ही नहीं होती है, जहां बोर्डम पैदा ही नहीं होती है।

आदमी को अधार्मिक बनाने वाली अगर कोई एक गहरी से गहरी चीज है, तो वह बोर्डम है, वह ऊब है। हर चीज से ऊब जाता है मन। एक पत्नी से ऊब जाता है, एक पति से ऊब जाता है। एक घर से ऊब जाता है, एक मित्र से ऊब जाता है। एक धंधे से ऊब जाता है। हर चीज से ऊब जाता है। और कहता है, और कुछ लाओ, और कुछ लाओ। वह कहता ही चला जाता है कि और कुछ लाओ। उसकी मांग है, और! और! और चीज में वह कहे चला जाता है, और कुछ लाओ। दौड़ाता रहता है। अपने से ही ऊब जाता है। इसलिए कोई आदमी अपने साथ रहने को राजी नहीं है। अपने से ही घबड़ा जाता है!

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन जब छोटा-सा बच्चा था, तो उसके मां-बाप एक दिन उसे घर छोड़कर गए हैं किसी शादी में। ले जाना संभव न था; शैतान था लड़का। तो कहा उसे कि हम ताला लगा जाते हैं बाहर। अगर तू भली तरह व्यवहार किया, अगर घर में तू शांति से रहा और अच्छा साबित हुआ, तो लौटकर हम तुझे पांच रुपए देने वाले हैं।

पांच रुपए के लोभ में नसरुद्दीन ने भले रहने की कोशिश की, जैसा कि हम सभी लोग किसी लोभ में भले रहने की कोशिश करते हैं। और इसीलिए अगर ज्यादा बड़ा लोभ मिल जाए बुरा होने के लिए, तो तत्काल बुरे हो जाते हैं। यह सवाल सब लोभ का है। तो हर आदमी की भलाई की कीमत है।

एक आदमी कहता है कि मैं रिश्वत बिलकुल नहीं लेता। उससे पूछो, कितनी नहीं लेते–पांच? दस? पंद्रह? पचास? सौ? एक जगह लिमिट आ जाएगी। वह कहेगा, बस ठहरो। क्या देने का इरादा है! सीमा है। एक आदमी कहता है, मैं चोरी बिलकुल नहीं करता। फलां आदमी के घर गया; दस रुपए का नोट पड़ा था; मैंने नहीं उठाया। पूछो उससे, दस हजार का पड़ा होता? तो वह कहेगा, एक दफे सोचने का फिर से मौका दें। सीमा है। वैसे कोई फर्क नहीं पड़ता।

इसलिए भलाई अगर कीमत से मिलती हो, तो बुराई कभी भी ली जा सकती है। इसलिए जिन लोगों को भी भला होने के लिए पुरस्कार दिए जाते हैं, उनके भले होने में सदा संदेह रहेगा। वे कभी भी बुरे हो सकते हैं। भलाई तो वही है, जो बिना पुरस्कार के हो। लेकिन उस भलाई को हम जानते नहीं।

नसरुद्दीन ने बड़ी कोशिश की भले रहने की। पांच रुपए का सवाल था। घड़ी-घंटे की बात थी। आखिर मां-बाप आ गए। देखे तो बड़े हैरान हुए कि वह घर के भीतर एक कमरे से दूसरे कमरे में गोल चक्कर लगा रहा है। पूछा उसके पिता ने कि नसरुद्दीन, यह तू क्या कर रहा है? और हमने कहा था कि भले रहने की कोशिश करना।

तो नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने कोशिश की, आई वाज़ गुडर दैन गुड, बट देन आई कुडंट स्टैंड माइसेल्फ। मैं अच्छे से भी अच्छा हो गया और तब अपने को ही सहना मुश्किल हो गया। यह मैं सिर्फ अपने से भागने, अपने से बचने के लिए भाग रहा हूं एक कमरे से दूसरे कमरे में। जस्ट टु एस्केप फ्राम माइसेल्फ, अपने ही से बचने के लिए भाग रहा हूं। इतना अच्छा हो गया मैं कि खुद को ही सहना मुश्किल हो गया!

अच्छाई भी हो जाए बहुत, तो ऊब पैदा कर देती है। हर चीज से हम ऊब जाते हैं। और परमात्मा तो एकरस है। ध्यान का केवल एक ही अर्थ है, एकरसता से न ऊबने का अभ्यास। ध्यान का अर्थ है, एकरसता से न ऊबने का अभ्यास।

बर्ट्रेंड रसेल ने मजाक में कहीं कहा कि मैं मरकर नरक भी जाने को तैयार हूं, लेकिन हिंदुओं और बौद्धों के मोक्ष में जाने को तैयार नहीं हूं। क्यों? क्योंकि उसने कहा कि मोक्ष में तो बड़ी ऊब पैदा हो जाएगी। वहां तो सब एकरस है। आनंद है, तो आनंद ही आनंद है। वहां कभी दुख पैदा ही नहीं होता। तो आनंद से ऊब जाऊंगा। इतना आनंद कैसे सहूंगा! आनंद ही आनंद! बीच में कोई कड़वा स्वाद ही न आता हो, तो मिठाई भी उबाने वाली हो जाती है। तो तिक्त भी चाहिए। और इतना सन्नाटा है वहां कि कभी कोई वाणी ही नहीं उठती, तो मैं तो घबड़ा जाऊंगा। और फिर वहां से लौटने का भी कोई उपाय नहीं है।

रसेल कहता था, वहां जो गया, सो गया। यह तो मौत हो जाएगी, मोक्ष न होगा। लौट नहीं सकते। मोक्ष में एक ही दरवाजा है एन्ट्रेंस का, प्रवेश का। निकास का, एक्जिट का कोई दरवाजा नहीं है। तो जो गए, सो गए। तो रसेल कहता था, ये लोग कहते हैं कि वह परम मुक्ति है, मुझे लगता है, वह तो परम बंधन हो गया! वहां से निकलने का उपाय नहीं है। नरक से निकल सकते हैं। और नरक में बड़ा परिवर्तन है। चौबीस घंटे उपद्रव चल रहे हैं। जितना उपद्रव वहां है, उतना तो यहां भी नहीं है।

रसेल ठीक कह रहा है। लेकिन बात मुद्दे की है।

अगर आप परिवर्तन के बहुत आकांक्षी हैं, तो आप ध्यान में प्रवेश नहीं कर सकते। आखिर जब आप ध्यान में बैठते हैं, तो आपका मन करता क्या है? एक विचार देता है, फिर दूसरा देता है, फिर तीसरा देता है। वह दिए चला जाता है विचार। वह कहता है, घबड़ाओ मत, ऊबो मत। मैं तुम्हें नई-नई चीजें दे रहा हूं।

और आप पूछते हैं कि ध्यान कैसे लगे? ध्यान उसी दिन लगेगा, जिस दिन आप ऊबने के लिए तैयार हों, और ऊबें न। एक फूल को आप देख रहे हैं। देखे चले जा रहे हैं। बदलने की कोई इच्छा नहीं है। तो ठीक है। देखे जा रहे हैं। देखे जा रहे हैं। देखे जा रहे हैं। पहले मन ऊबेगा। वह कहेगा, क्या एक ही फूल को देखे जा रहे हो, बदलो अब। अगर आपने फूल न बदला, तो मन कहेगा, न बदलो फूल, हम भीतर विचार बदलते हैं। लेकिन कुछ न कुछ बदलो। लेकिन आपने कहा, कुछ न बदलेंगे। यह फूल है और मैं हूं, और बस काफी है।

अगर आप घड़ी दो घड़ी एक फूल के पास भी रोज इस तरह बैठ जाएं, एक दिन आप पाएंगे कि ध्यान की झलक आपको आनी शुरू हो गई। फिर ऊब नहीं आती। फिर आप एक चीज के साथ होने को राजी हो गए। और जो व्यक्ति एक चीज के साथ चौबीस घंटे होने को राजी है, वही प्रभु का स्मरण कर सकता है। क्योंकि वह स्मरण तो बदला नहीं जा सकता, वह तो प्रभु एक ही है; चारों तरफ एकरस है। उसका एक ही स्वाद है।

बुद्ध कहते थे, जैसे नमक; सागर में कहीं भी चखो और नमकीन है स्वाद। ऐसा ही प्रभु को कहीं से चखो, वह बिलकुल एकरस है, एकस्वाद है।

कृष्ण कहते हैं, अन्य की तरफ जरा भी चित्त गया, तो ध्यान नहीं है। और अगर अन्य की तरफ चित्त न जाता हो, अनन्य रूप से मेरी ही तरफ लग जाता हो, या परम दिव्य पुरुष की तरफ लग जाता हो, तो परमेश्वर प्राप्त होता है। इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियंता, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले, अचिंत्य स्वरूप, सूर्य के सदृश प्रकाश रूप, अविद्या से अति परे परमात्मा को स्मरण करता है, वही परमात्मा को उपलब्ध होता है।

इसमें कुछ बातें कहीं, जो हम समझें।

एक, जो पुरुष सर्वज्ञ है। इस जगत में कोई कितना भी जानता हो, तो भी अल्पज्ञ ही होगा। कोई कितना ही जान ले, जानने को सदा शेष रह जाता है। कोई कितना ही जान ले, जानना चुक नहीं पाता है। देयर इज़ नो एंड टु नोइंग। हो भी नहीं सकता। इसलिए कोई भी कितना भी जान ले, वह जानना पूर्ण नहीं है। अगर जानना कहीं भी पूर्ण होगा, तो वह परमात्मा के अंतस्तल में होगा।

निश्चित ही, वह सभी कुछ जानता होगा, जो जाना जा सकता है। लेकिन उसे यह बिलकुल पता नहीं हो सकता कि मैं सब कुछ जानता हूं। क्योंकि जिसे यह पता है कि मैं सब कुछ जानता हूं, उसके भी जानने की सीमा है। इसलिए परमात्मा सर्वज्ञ है, आल नोइंग है, फिर भी उसे कोई पता नहीं कि मैं सब कुछ जानता हूं। सब कुछ जानने का पता भी अज्ञानी का ही बोध है।

इसलिए अगर कभी कोई जमीन पर घोषणा करता है कि मैं सर्वज्ञ हूं, तो वह इस बात की घोषणा करता है कि उसके भी जानने की सीमा है। वह भी अल्पज्ञ है। वह भी अज्ञानी है। सिवाय अज्ञानी के अतिरिक्त कोई सब कुछ जानने की घोषणा नहीं करता है।

लेकिन जो उस सब कुछ जानने वाले का स्मरण करता है, वह धीरे-धीरे उसके साथ एक होता चला जाता है। और एक घड़ी ऐसी आती है उस एक हो जाने की, जब खुद को भी पता नहीं रहता कि मैं कुछ जानता हूं या नहीं जानता हूं।

एक मित्र मुझे पत्र लिखे हैं और पूछे हैं कि क्या आपको सब कुछ पता है?

मैं उन्हें दो ही उत्तर दे सकता हूं। या तो कहूं, हां, सब कुछ पता है--जो कि अज्ञानी का सिद्ध सूत्र है। या मैं उन्हें कहूं कि मुझे कुछ भी पता नहीं है--जो कि ज्ञानी अक्सर कहते रहे हैं। लेकिन मुझे उसमें भी घोषणा दिखाई पड़ती है।

यदि मैं कहूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है, तो भी मैं कुछ पता होने की घोषणा दे रहा हूं और बहुत सुनिश्चित घोषणा दे रहा हूं कि मुझे कुछ भी पता नहीं है, कम से कम इतना मुझे पता है। और कुछ भी मुझे पता नहीं है, यह बहुत एब्सोल्यूट बात है। जैसे कोई कहे, सब कुछ मुझे पता है। ऐसा ही कोई कहे, कुछ भी मुझे पता नहीं है, यह दूसरी सीमा पर पूर्ण घोषणा है।

क्या किया जाए? क्या उनको कहा जाए, मुझे कुछ-कुछ पता है और कुछ-कुछ पता नहीं है! अगर ऐसा कहा जाए, तो भी बड़ी लाजिकल फैलेसी हो जाती है। क्योंकि तब पूछा जा सकता है, कुछ-कुछ क्या पता है और कुछ-कुछ क्या पता नहीं है? और जिसका मुझे पता नहीं है, उसका भी इतना तो मुझे पता है ही कि मुझे पता नहीं है। उनको क्या उत्तर दिया जाए? और वे कहते हैं, हां या न में सीधा जवाब दें!

शायद परमात्मा आपके सामने आने से इसीलिए डरता है कि आपके सवालों का जवाब उसके पास नहीं होगा।

जैसे-जैसे कोई लीन होता है परम सत्ता में, वैसे-वैसे कुछ भी पता नहीं रह जाता, न ज्ञान का और न अज्ञान का।

यही मैं उन मित्र को कहा था, तो वे कहने लगे, लेकिन जब हम आपसे कुछ पूछते हैं और जब आपको कुछ भी पता नहीं--न ज्ञान का, न अज्ञान का--तो आप उत्तर कैसे देते हैं? क्योंकि हम सबको खयाल है कि उत्तर बंधे-बंधाए पहले से ही मौजूद रहते होंगे। आपने पूछा, उसके पहले उत्तर रेडीमेड रहते होंगे, जैसे दुकान में पैकेट बंद रखे हुए हैं चीजों के। आप कहे कि मुझे फलां चीज चाहिए, दुकानदार ने पैकेट निकाला और आपको दे दिया। जिन्हें हम पंडित कहते हैं, उनके पास ऐसे ही रेडीमेड पैकेट तैयार होते हैं। आपने पूछा; उन्होंने दुकान से निकाला, आपको दे दिया।

लेकिन जो व्यक्ति जैसे-जैसे प्रभु में लीन होगा, वैसे-वैसे उसे कुछ भी पता नहीं होता और न कुछ भी न-पता होता है। आप पूछते हैं; उत्तर आता है, दिया नहीं जाता है। ऐसे ही जैसे कोई जाकर किसी निर्जन, वीरान-सी घाटी में जोर से आवाज करे और पर्वत उसकी आवाज को प्रतिध्वनित कर दे। ऐसे ही जैसे किसी दर्पण के सामने कोई जाकर खड़ा हो जाए और दर्पण उसकी आकृति को प्रतिछवित कर दे।

कृष्ण भी जो उत्तर दे रहे हैं अर्जुन को, वे कोई उत्तर नहीं हैं। उस अर्थ में उत्तर नहीं हैं, जैसे स्कूल के अध्यापक और बच्चों के बीच होते हैं; वैसी कोई बंधी रेडीमेड बात नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन पहली दफा अपने देश की राजधानी में गया हुआ था। पहली दफा रास्ते से गुजर रहा था। अचानक जोर से कारों के हार्न बजे, ब्रेक लगे, बसें रुक गईं, घबड़ाहट फैल गई, क्योंकि नसरुद्दीन अकड़कर बीच से चला जा रहा है, बीच रास्ते से। पुलिस वाले ने बहुत हाथ हिलाया रुकने के लिए, लेकिन वह नहीं रुका। पुलिस वाला पास आया और कहा कि महानुभाव, क्या आपको समझ में नहीं आता कि मैं हाथ हिला रहा हूं!

नसरुद्दीन ने कहा, मुझे समझ में नहीं आएगा! मैं तीस साल स्कूल में मास्टर रह चुका हूं। क्या पूछना है, पूछो? वह अपने स्कूल का अभ्यासी है। लड़के जब हाथ हिलाते हैं! बोला, क्या पूछना है, पूछो! सड़क पर भी पीछा नहीं छोड़ते पूछने वाले लोग! रेडीमेड है। उसे पक्का पता है कि जब कोई हाथ हिलाता है, तो उसका मतलब क्या होता है।

कृष्ण कोई ऐसे उत्तर नहीं दे रहे हैं। कृष्ण जैसे व्यक्ति उत्तर देते ही नहीं। केवल प्रश्न को पी जाते हैं और उत्तर आता है। केवल प्रश्न को भीतर भेज देते हैं और परम शून्य से ध्वनि उठती है और लौट आती है।

सर्वज्ञ है वह, इस अर्थ में कि वही है, सो जानता ही है। जानता ही है--क्या हुआ, क्या हो रहा है, क्या होगा। फिर भी इसका उसे कुछ भी पता नहीं है। क्योंकि पता केवल अज्ञानी को होता है।

अनादि! जो कभी प्रारंभ नहीं हुआ, जिसका कभी कोई जन्म नहीं हुआ, जो कभी शुरू नहीं हुआ, जो बस है, सदा से है।

सबका नियंता। वह, सभी जिसके हाथ में है। सभी कुछ जिसके हाथ में है। चांदत्तारे जिसकी अंगुलियों पर हैं। सभी कुछ।

लेकिन नियंता शब्द से बड़ी भ्रांति हुई है। क्योंकि हम नियंता से एक ही अर्थ ले सकते हैं, सुप्रीम कंट्रोलर, जो सभी के ऊपर नियंत्रण कर रहा है। भूल हो जाएगी। क्योंकि नियंत्रण जब भी किया जाता है, तो दूसरे पर किया जाता है। लेकिन यहां तो उसके सिवाय कोई दूसरा है ही नहीं। इसलिए नियंता का अर्थ कंट्रोलर नहीं है, नियंत्रण करने वाला नहीं है।

नियंता का अर्थ है, नियम, दि लॉ। वही है। उसके अलावा तो कोई भी नहीं है। वही है। किसको नियंत्रण करेगा? नियंत्रण उसे करना भी नहीं पड़ता। उसके जीवन की जो धारा है, जो नियम है, जिसे वेदों ने ऋत कहा, और जिसे लाओत्से ने ताओ कहा है, वही। वह अपने आप...। वही नियम है। उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। इसलिए वह नियंता है। इसलिए नहीं कि वह हम सबकी गर्दन को पकड़े हुए चला रहा है कि चलो, तुम चोर बन जाओ। तुम बेईमान बन जाओ। तुम साधु बन जाओ। अब तुम्हारा काम खतम हुआ, चलो, लौटो वापस।

अगर ऐसा वह कर रहा हो, तो कभी का पागल हो गया होता। हम जैसे इतने पागलों का नियंत्रण करते-करते कोई भी पागल हो सकता है।

सुना है मैंने कि इजिप्त का एक सम्राट पागल हो गया था। कोई उपाय न देखकर चिकित्सकों ने कहा, एक ही उपाय है। वह शतरंज का बड़ा खिलाड़ी था, तो कहा कि किसी बड़े खिलाड़ी को बुला लो और वह शतरंज खेलने में लगा रहे, तो शायद ध्यान लग जाए शतरंज में, तो पागलपन छूट जाए।

सम्राट बड़ा खिलाड़ी था। तो बड़े से बड़े खिलाड़ी बुलाए गए। उसके साथ कोई खेलने को भी राजी नहीं होता था। पागल के साथ कौन खेलने को राजी हो! लेकिन बहुत पुरस्कार था, तो बड़ा खिलाड़ी जो था, वह राजी हो गया।

सालभर, कहते हैं, खेल चलता रहा। थक जाता सम्राट, सो जाता। उठता, फिर खेल शुरू हो जाता। सालभर बाद चिकित्सकों ने जो कहा था, वह सही निकला, सम्राट ठीक हो गया। लेकिन खिलाड़ी पागल हो गया। सालभर पागल के साथ खेलना पड़े शतरंज, तो आप समझते हैं क्या होगा!

इतने पागलों को अगर नियंत्रण कर रहा हो परमात्मा, तो कभी का पागल हो चुका होगा। और उसके इलाज का भी उपाय नहीं है फिर।

नहीं, नियंत्रण, कोई कांशस कंट्रोल नहीं है कि एक-एक आदमी को चला रहा है पकड़-पकड़कर। नियंता का अर्थ है, वह नियम है। नियम का क्या अर्थ होता है, वह खयाल ले लें।

आप रास्ते पर चल रहे हैं। आपने तिरछा पैर रख दिया, धड़ाम से जमीन पर गिरे और सिर टूट गया। वैज्ञानिक से पूछें, क्या हुआ? वह कहेगा, ग्रेविटेशन, जमीन की कशिश का फल है। इस जमीन ने तुमको पटका।

जमीन अगर ऐसा पटकती रहे, तो बड़ी कठिनाई होगी जमीन को भी। और कहां-कहां दौड़ना पड़े दिनभर, रातभर। कौन कहां गिर रहा है! तिरछा चल रहा है! नहीं। ग्रेविटेशन कोई आपको गिराने नहीं आता। ग्रेविटेशन मौजूद है; नियम है वह। जमीन की कशिश मौजूद है। आप तिरछा पैर रखते हैं, अपने आप गिर जाते हैं। जमीन को पता भी नहीं चलता कि उसने किसी को गिराया। वह नियम है।

पानी बहा जा रहा है सागर की तरफ। अब कोई परमात्मा एक-एक नदी को धकेल नहीं रहा है कि चलो, यह रहा रास्ता। चूक मत जाना। जगह-जगह संतरी नहीं खड़े किए हैं कि देखो, यह भटक न जाए। नियम है कि पानी नीचे की तरफ बहता है। बस। वह नियम खड़ा है। नदी सूख जाए, तब भी नियम उस सूखी रेत में पड़ा है। नदी बिलकुल सूख गई है। पानी बिलकुल नहीं है। तब परमात्मा को उठा लेना चाहिए वहां से अपना कैंप। हटो, उखाड़ो तंबू, अब यहां कोई जरूरत नहीं। लेकिन उस सूखी नदी की धार में भी नियम तैयार है। जब भी वर्षा होगी, पानी आएगा, नियम सक्रिय हो जाएगा। नदी नीचे की तरफ बहने लगेगी।

नियंता का अर्थ है, नियम। परमात्मा नियम है। और इसीलिए सर्वनियंता है। इसका जो स्मरण करे...।

सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म!

आदमी की भाषा बड़ी कमजोर है। कृष्ण के पास भी वही कमजोर भाषा है, जो कमजोर से कमजोर आदमी के पास है। उनको भी कहना पड़ता है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म। फिर भी कोई हल तो होता नहीं। और भी आगे कह सकते हैं, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, अति सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, अति सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, तो भी कोई हल नहीं होता।

यह कृष्ण को ऐसा क्यों कहना पड़ता है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म! इसीलिए कहना पड?ता है कि सूक्ष्म शब्द भी बहुत स्थूल है। हम किसी चीज को कहते हैं, बहुत सूक्ष्म, लेकिन फिर भी वह होती तो है ही। हम कहते हैं, बाल बहुत सूक्ष्म है, लेकिन बाल है तो ही। काफी मोटा है, अंगुली में पकड़ा जा सकता है; स्थूल है।

अगर अणु के बाबत हम पूछें, तो वैज्ञानिक कहते हैं, एक लाख अणुओं को हम एक के ऊपर एक रखें, तो एक बाल की मोटाई के बराबर होते हैं। अति सूक्ष्म; लेकिन फिर भी होते तो हैं। और एक लाखवां हिस्सा हुआ, तो भी क्या फर्क पड़ता है। बाल का लाखवां हिस्सा हुआ, तो भी स्थूल तो है।

इसलिए कृष्ण को कहना पड़ता है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म।

असल में उसे बताने के लिए हमारे पास कोई सूक्ष्म शब्द नहीं है। हमारे सूक्ष्म का भी अर्थ केवल मात्रा का भेद होता है। हाथी के सामने चींटी को रखकर हम कहते हैं, बहुत सूक्ष्म। बस। लेकिन चींटी के सामने और सूक्ष्म चीजें रखी जा सकती हैं और चींटी बड़ी हो जाएगी और चीजें छोटी हो जाएंगी।

लेकिन जब हम भगवान को, परमात्मा को कहते हैं, सूक्ष्मतम, तो उसका अर्थ यह है कि उससे ज्यादा सूक्ष्म फिर और कुछ भी नहीं है। दि अल्टिमेट, आखिरी, अंतिम, उसके नीचे और कुछ गिरने का उपाय नहीं। उसके नीचे और कोई जाने का उपाय नहीं है। दि एबिस, गहराई, आखिरी, अतल। जिसे हम स्थूल कहते हैं, उससे बिलकुल भी पकड़ में न आने वाला।

लेकिन हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि कल्पना भी हम केवल स्थूल की कर सकते हैं। उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। उसकी सिर्फ प्रतीति हो सकती है। उसका सिर्फ एहसास हो सकता है। अनुभव कहीं थोड़ा-सा स्पर्श ले सकता है।

सूर्य के सदृश प्रकाश रूप।

कितनी कमजोर भाषा आदमी की है। सूर्य बेचारा क्या है! और सूर्य के सदृश बताकर हम क्या बता रहे हैं? जैसे कोई कहे कि हमारे घर में जो रात में हम चिमनी जलाते हैं, एक दीया जलाते हैं, उस दीए के सदृश। तो आप कहेंगे, तू पागल है। दीए के सदृश बता रहा है परमात्मा को! एक फूंक मार दें, तेरा दीया बुझ जाए!

लेकिन सूर्य हमें बहुत बड़ा मालूम पड़ता है। लेकिन ज्योतिषियों से पूछें। वे कहते हैं, हमारा सूर्य, जस्ट ए मीडियाकर स्टार, एक बहुत छोटा-सा तारा है, कुछ खास नहीं है। इससे हजार-हजार, दस-दस हजार, साठ-साठ हजार, लाख-लाख गुने बड़े सूर्य हैं। यह बेचारा क्या है! यह कुछ भी नहीं है। ऐसे बहुत बड़ा है। हमारी जमीन से तो कोई साठ हजार गुना बड़ा है। इसलिए बहुत बड़ा है। और हमारे दीए से तो बहुत ही बड़ा है। लेकिन कहीं कोई महासूर्य हैं, जिनके सामने यह हमारे दीए से भी छोटा है।

लेकिन फिर भी आदमी की भाषा कमजोर है। कृष्ण जैसे आदमी की भी भाषा कमजोर है। उसका कारण है कि भाषा ही कमजोर है, आदमी क्या करे। वह जो भी भाषा उपयोग करे, वह कमजोर है। सिर्फ एक इशारा कि सूर्य के सदृश प्रकाश रूप।

नहीं, यह इशारा भी बिलकुल ठीक नहीं पड़ता। लेकिन उपाय नहीं, कमजोर ही है। यह सूर्य भी बुझ जाएगा। यह ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है। इसका ईंधन चुका जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार साल और ज्यादा से ज्यादा। इस सूरज के बुझने की घड़ी करीब आ रही है। और चार हजार साल कोई बहुत लंबा वक्त नहीं है सूर्यों के हिसाब से, क्षणभर का है।

इस जमीन को बने कोई चार अरब वर्ष हो गए। यह सूरज इससे बहुत पुराना है। यह जमीन बहुत नई है। वैज्ञानिक कहते हैं, अगर हम ऐसा समझें कि एक हजार पृष्ठ की कोई किताब हो, उसे हम सूरज की उम्र मान लें, तो जमीन की उम्र एक पृष्ठ के बराबर है। और अगर जमीन की उम्र को हम एक पृष्ठ मान लें, तो उस पृष्ठ पर जो फुल प्वाइंट रखा जाता है, उतनी उम्र आदमीयत की है। और आदमी की उम्र, मेरी या आपकी, इसका निशान नहीं बनाया जा सकता। इसका निशान कैसे बनाइएगा? फुल प्वाइंट, जो आप अपने बाल प्वाइंट पेन से लगा दें, उतनी उम्र आदमीयत की है। एक पेज के बराबर जमीन की है। एक हजार पेज के बराबर इस सूरज की है।

जमीन को हुए चार अरब वर्ष हो गए और यह सूरज अब केवल चार हजार वर्ष और जीएगा। फिर क्या हिसाब! यह तो बुझ जाएगा। लेकिन उदाहरण के लिए कृष्ण कहते हैं कि सूर्य की तरह जो प्रकाशवान है। पर उसमें फर्क जोड़ लेंगे, जो अनादि है, पहले कह दिया है। उसका कभी अंत नहीं होगा, जो कभी चुकेगा नहीं, जो कभी समाप्त नहीं होगा।

लेकिन हां, प्रकाशवान है। स्वप्रकाशी है। स्वयं ही प्रकाशित है।

इसे थोड़ा खयाल में ले लें।

जगत में दो तरह की चीजें हैं। दूसरों से प्रकाशित होने वाली; और स्वयं प्रकाशित होने वाली। हम एक दीया जलाते हैं एक कमरे में, तो कमरे की सारी चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। हम दीया बुझा देते हैं, कमरे की चीजें नहीं दिखाई पड़ती हैं। कमरे की चीजें दिखाई पड़ सकती हैं, अगर कोई दूसरा प्रकाश मौजूद हो। लेकिन क्या आपको दीया जलाकर भी उस दीए को देखने के लिए दूसरा दीया लाना पड़ता है? नहीं, दीया स्व-प्रकाशित है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात सोया है। सर्द रात है। बहुत सर्दी है। उठने की हिम्मत उसकी पड़ती नहीं। लेकिन जल्दी नींद खुल गई है, तो अपने नौकर से कहता है कि महमूद, जरा बाहर देखकर आ कि सूरज निकला कि नहीं। महमूद भी कुड़मुड़ाया कि खुद की तो हिम्मत नहीं पड़ रही है बाहर जाने की और मुझे भेज रहा है बाहर! लेकिन मजबूरी थी। उठकर जरा-सा सरका। जरा दरवाजे से झांककर देखा। अंदर आकर कहा कि बहुत घनघोर अंधेरा है! नसरुद्दीन ने कहा, मूर्ख, अगर अंधेरा है, तो दीया ले जाकर क्यों नहीं देख लेता, सूरज निकला या नहीं!

सूरज देखने के लिए अगर दीया ले जाकर देखना पड़े, तो फैसला है। दीया स्वयं प्रकाशित है। लेकिन फिर भी दीए में ईंधन की जरूरत पड़ती है, तेल की जरूरत पड़ती है। दीया इंडिपेनडेंट नहीं है, स्वतंत्र नहीं है; परतंत्र है।

परमात्मा ऐसा प्रकाश है, जो स्वयं प्रकाशित है, स्वतंत्र है, किसी चीज पर निर्भर नहीं है; प्रकाश रूप है।

अविद्या से अति परे, अज्ञान से अति दूर, शुद्ध सच्चिदानंद परमात्मा को जो स्मरण करता है, वह उसी को उपलब्ध हो जाता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
भाव और भक्ति—अध्याय—8 (प्रवचन—चौथा)

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। 10।।
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।। 11।।
वह भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

और हे अर्जुन, वेद के जानने वाले जिस परम पद को

(अक्षर) ओंकार नाम से कहते हैं और आसक्तिरहित यत्नशील महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं, तथा जिस परमपद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परमपद को तेरे लिए संक्षेप में कहूंगा।

अंतिम क्षण समस्त जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षण है। क्योंकि वही आगे की जीवन की यात्रा का बीज है। अंतिम क्षण में हम अपने जीवन का सब कुछ सिकोड़ कर पुनः इकट्ठा कर लेते हैं, नई यात्रा के लिए। अंतिम क्षण में वह सब संगृहीत हो जाता है, जिसके सहारे आगे की यात्रा होती है।

ठीक से समझें, तो जब कोई जन्म लेता है, तो जन्म का क्षण प्रारंभ नहीं है। क्योंकि जन्म में तो वही बीज अंकुरित होता है, जो पिछली मृत्यु में संगृहीत हुआ था। ठीक प्रारंभ का क्षण मृत्यु का क्षण है। उस समय बीज बनता है। फिर वृक्ष तो जन्म से शुरू होता है, अंकुरित होता है और यात्रा पर जाता है।

जो नहीं जानते, वे जन्म को प्रारंभ कहते हैं। जो जानते हैं, वे मृत्यु को ही प्रारंभ कहते हैं। एक अर्थ में मृत्यु दोनों है। पिछले जन्म का अंत है और नए जन्म का प्रारंभ है। शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षण है। क्योंकि इसी समय अगर हम छलांग ले सकें; संसार की तीव्रता से घूमती हुई जो विक्षिप्त दशा है, जो वर्तुल है पागल; अगर मृत्यु के क्षण में हम छलांग ले सकें उसके बाहर, तो उससे ज्यादा सरलता से छलांग और कभी नहीं ली जा सकती। क्योंकि मृत्यु के क्षण में शरीर छूटता है। अगर आप शरीर के छूटने के साक्षी बन सकें, मोही नहीं, तो आप उस अशरीरी का अनुभव कर सकते हैं, जिसे शरीर में रहते हुए अनुभव करना कठिन मालूम पड़ता है।

नया जन्म प्रारंभ नहीं हुआ; पुराना समाप्त हो रहा है। बीच की उस संधिकाल घड़ी में यदि प्रभु का स्मरण हो, तो चेतना की यात्रा संसार को छोड़कर ब्रह्म की ओर शुरू हो जाती है।

इसलिए कृष्ण यहां अर्जुन को उस अंतिम क्षण में क्या किया जा सकता है और उस अंतिम क्षण में स्मरण करता हुआ पुरुष कैसी यात्रा पर निकल जाता है, उसकी बात कह रहे हैं।

कृष्ण कहते हैं, वह भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप को ही प्राप्त होता है।

इसमें बहुत-सी बातें समझने जैसी हैं।

भक्तियुक्त पुरुष! भक्ति क्या है और भक्तियुक्तता क्या है? मनुष्य की चेतना में विचार की एक क्षमता है। एक और क्षमता है, भाव की। विचार उपकरण है संसार में गति का; भाव उपकरण है संसार के पार गति का।

मनुष्य की चेतना की दो क्षमताएं हैं। एक, विचार की। विचार की क्षमता संसार के लिए उपयोगी है। संसार में विचार के बिना एक कदम भी चलना असंभव है। लेकिन ठीक ऐसे ही एक और क्षमता है, भाव की। उस भाव की क्षमता के बिना एक कदम भी परमात्मा की तरफ चलना मुश्किल है।

लेकिन एक बड़ी भूल हो जाती है। चूंकि संसार में हम विचार के सहारे चलते हैं, जीवन का अनुभव अनेक जीवन का अनुभव, विचार का ही अनुभव होता है। और हमारा यह भी अनुभव होता है कि जितना हम विचार करते हैं, उतनी ही सफलता मिलती है संसार में। अनंत-अनंत जीवन का निचोड़ यह बन जाता है कि बिना विचार किए कोई सफलता ही नहीं है। और बिना विचार किए भटक जाने का डर है। तो फिर हम परमात्मा की तरफ भी अगर कभी चलते हैं, तो उसी विचार के उपकरण को लेकर चलते हैं–भटक न जाएं इसलिए, असफल न हो जाएं इसलिए।

और जिसे हम समझते हैं, सफलता का साधन, वही असफलता का कारण बन जाता है। और जिसे हम समझते हैं कि भटकाव से बच जाएंगे, वही भटकाव है। क्योंकि जो उपकरण संसार में काम करता है, वह परमात्मा की तरफ काम नहीं करता है। जैसे कोई व्यक्ति कान से देखने की कोशिश करने लगे और आंख से सुनने की कोशिश करने लगे और मुश्किल में पड़ जाए, वैसा ही वह व्यक्ति भी मुश्किल में पड़ जाता है, जो भाव से संसार में चलने लगे, विचार से परमात्मा में चलने लगे।

लेकिन भाव से संसार में चलने की भूल कोई भी नहीं करता है। और अगर कोई करता भी है, तो एक दो कदम पर ही समझ जाता है कि भूल हो गई, कदम वापस लौटा लेता है। लेकिन परमात्मा की तरफ चलने में विचार के सहारे चलने की भूल सौ में निन्यानबे लोग करते हैं। और कदम भी नहीं लौटाते। क्योंकि इतनी गहरी यह धारणा है हमारी कि बिना विचार के तो एक कदम भी ठीक चला नहीं जा सकता, गलती हो ही जाएगी। यह सच है, लेकिन आयाम, डायमेंशन संसार का और है और परमात्मा का और है। इन दोनों के आयाम को ठीक से समझ लें, तो भक्तियुक्त पुरुष समझ में आ जाएगा कि क्या है।

विचार है तर्क की प्रतिक्रिया। विचार है चिंतना का मार्ग। विचार है विश्लेषण की विधि। यदि किसी चीज को नियम में लाना हो, तो विचार और तर्क जरूरी है। बिना तर्क के कोई नियम निर्धारित नहीं होता। यदि किसी विचार को प्रबल बनाना हो, तो चिंतन, निरंतर चिंतन के द्वारा ही वह प्रबल होता है। यदि गलत विचार को अलग करना हो, तो तर्क के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। अगर ठीक विचार की खोज करनी हो, तो तर्क की ही छैनी से काट-काटकर ठीक विचार को बचाया जा सकता है, खोजा जा सकता है। यदि किसी चीज को तोड़कर उसका निरीक्षण करना हो, तो विश्लेषण के सिवाय कोई उपाय नहीं। तोड़ो, जांचो, परखो।

और इसीलिए विचार विज्ञान का जन्मदाता बन जाता है। और इसीलिए विचार जीवन के व्यवसाय का वाहन है। और इसीलिए विचार अंतर्यात्रा का मार्ग नहीं है। क्यों? क्योंकि भीतर के उस जगत में, उस परमात्मा की खोज में जो जा रहा है, वह किसी वस्तु का विश्लेषण करके नहीं जा सकेगा। क्योंकि विश्लेषण करते से ही चीजें मर जाती हैं।

यदि हम एक व्यक्ति की जांच भी करते हैं शरीर की, तो अभी-अभी विज्ञान को भी अनुभव होना शुरू हुआ है कि हम भूल कर रहे हैं। एक चिकित्सक है। अगर मेरा शरीर बीमार है, तो वह मेरे खून की जांच करता है शरीर से खून को निकालकर। लेकिन शरीर से निकलते ही खून डेड हो गया, मुर्दा हो गया। मेरे शरीर के भीतर उसकी जो आर्गेनिक, जीवंत स्थिति थी, वह शरीर के बाहर निकलते ही नहीं रह गई। मेरी आंख है; मेरे शरीर के भीतर जीवंत आंख की जो स्थिति है, आंख को बाहर आपने निकाल लिया, तो आपको धोखा भला हो कि यह वही आंख है। यह वही आंख नहीं है, क्योंकि अब यह देख नहीं सकती। और जो देख नहीं सकती, उसको आंख कौन कहेगा? सिर्फ दिखाई पड़ती है कि आंख है। अब यह एक मुर्दा चीज है। अब इस मुर्दा चीज की जांच होगी और हम जांच करना चाहते थे जीवंत की; भूल हो जाएगी।

हम जो भी विश्लेषण करके जांच पाते हैं, वह हमेशा मुर्दा होता है। इसलिए चिकित्सक आत्मा को कभी भी नहीं खोज पाता। आत्मा को खोजने का कोई डायग्नोसिस का रास्ता भी नहीं है, कोई निदान भी नहीं है। तो चिकित्सक जितनी ही खोज करता है, उतनी ही मुर्दा चीजें भीतर पाता है। आखिर में वह पाता है कि आदमी सिवाय पदार्थ के जोड़ के और कुछ भी नहीं है। आत्मा चूक जाती है।

विश्लेषण के द्वारा, काटने के द्वारा, खंडन के द्वारा, हम केवल मुर्दा, मृत पदार्थ को ही जान सकते हैं। इसीलिए विज्ञान पदार्थ से संबंधित दिशाओं में बहुत सफल हुआ है, लेकिन चेतना से संबंधित दिशाओं में बिलकुल भी सफल नहीं हुआ है। असल में चेतना का कोई विज्ञान नहीं बन सका है अब तक। शायद बन भी नहीं सकेगा। क्योंकि विचार उसका मार्ग नहीं है। अगर जीवन को जानना है, जीवंत, तो भाव उसका मार्ग है।

विचार तोड़ता है, तब जांचता है। भाव जोड़ता है, तब जांचता है। विचार पहले चीजों को तोड़ता है, फिर उनके भीतर प्रवेश करता है। भाव पहले किसी से जुड़ जाता है और फिर भीतर प्रवेश करता है। एक तो फिजियोलाजिस्ट की, शरीरशास्त्री की जानकारी है कि वह आपके शरीर को काट-काटकर बता देगा कि भीतर क्या है, क्या नहीं है। एक प्रेमी की भी जानकारी है, वह भी जिसे प्रेम करता है, तो वह भी उसके संबंध में बहुत कुछ जान लेता है। लेकिन वह जानना प्रेमी को काटकर नहीं होता, प्रेमी से जुड़कर होता है।

भाव प्रेम का ही मार्ग है। वहां हम, परमात्मा है या नहीं, इसे तर्क से जानने नहीं जाते, इसे भाव से जुड़कर जानने की चेष्टा करते हैं।

निश्चित ही, तोड़ने की जो विधि है, वह जोड़ने की विधि नहीं बन सकती। इसलिए विचार प्रभु की तरफ ले ही नहीं जाता। और इसलिए दुनिया जितनी तथाकथित रूप से विचारवान होती जाती है, उतनी परमात्मा से वंचित होती चली जाती है।

इधर पांच हजार वर्षों में हमने आदमी को विचार करने में बड़ा कुशल बना लिया है, लेकिन भाव करने की कुशलता बिलकुल खो गई है। मंदिर-मस्जिद सब मुर्दा हैं आज। पूजा-प्रार्थना सब सड़ गई है। कारण है। क्योंकि भाव की जिस क्षमता से मंदिर जीवित होता था, और भाव की जिस धारा से मस्जिद प्राणवान थी, और भाव के जिस प्रवाह से प्रार्थना में गति आती थी, खून बहता था, और भाव के जिस स्पंदन से पूजा के हृदय की धड़कन धड़कती थी, वह भाव ही खो गया है। और भाव का कोई प्रशिक्षण नहीं है।

भाव के प्रशिक्षण का नाम ही भक्ति की साधना है। और भाव में जो प्रशिक्षित हो गया, वही भक्त है। जिसने विचार को छोड़ा और भाव को जीया। और जिसने कहा, हम सोचेंगे नहीं, भावेंगे। हम प्रश्न न पूछेंगे, हम प्रेम करेंगे। हम काटेंगे नहीं, हम जुड़ जाएंगे और जानना चाहेंगे कि क्या है।

एक फूल को तोड़कर भी देखा जा सकता है–विज्ञान वैसे ही देखता है, विचार वैसे ही देखता है–फूल को तोड़कर देखा जा सकता है। तोड़ लें फूल को, तो पता चल जाता है, किन केमिकल्स से, किन रासायनिक तत्वों से मिलकर फूल बना है। कितना खनिज है उसमें; कितनी मिट्टी है; कितना पानी है; कितनी सूरज की किरण है। सब बांट-छांटकर आपको पता चल जाता है। लेकिन जब तक आप छांटकर, बांटकर पता लगाने तक पहुंचते हैं, तब तक आप एक बात भूल गए, फूल कभी का खो चुका है। फूल वहां नहीं है। और फूल का जो सौंदर्य का अनुभव था, वह इस कटे-छंटे, एनालाइज्ड फूल के टुकड़ों से मिलने वाला नहीं है।

अगर आप अब इस फूल की अलग-अलग टेस्ट-टयूब में, परखनलियों में रखी हुई रासायनिक लाश को किसी कवि को दिखाएं और कहें कि अब कविता करो फूल की, क्योंकि तुम जिस फूल को देखते थे, उससे बहुत ज्यादा जानकारी अब इस परखनली में कैद है! कोई कविता पैदा न होगी। क्योंकि वहां कोई फूल ही नहीं है। अब कहें किसी सौंदर्य के प्रेमी को कि गाओ गीत। नाचो इस फूल के आस-पास। क्योंकि तुम जिस फूल के पास नाच रहे थे, वह निपट अज्ञान से घिरा था। तुम्हें कुछ पता ही नहीं था। अब फूल के बाबत सब कुछ पता है। अब तुम ज्यादा अच्छा गीत गा सकोगे!

यह नहीं होगा; गीत का जन्म नहीं होगा। क्योंकि फूल को जानने का जो ढंग है–फूल को, फूल की विषय-वस्तु को नहीं; फूल की देह को नहीं, फूल के प्राण को जानने का जो मार्ग है। फूल की देह को जानने का तो यही मार्ग है, क्योंकि देह मृत है। लेकिन फूल के प्राणवान, वह जो फूल के भीतर लपट है भागती हुई जीवन की, वह जो फूल के भीतर सौंदर्य का खिलाव है, वह जो इस फूल में परमात्मा झलका है, अगर उसे जानना है, तो फूल के पास बैठकर अति प्रेम से डूबे हुए, अति प्रेम में लीन, किसी भाव-लोक में प्रवेश करना होता है।

और यह बड़े मजे की बात है। जब आप विचार से किसी चीज को सोचते हैं, तो जिसे आप सोचते हैं, वह नष्ट हो जाता है, आप बचे रहते हैं। और जब भाव से आप किसी चीज को जोड़ते हैं, तो फूल तो बच जाता है, थोड़ी देर में आप खो जाते हैं।

विचार से जब किसी चीज की तरफ जाते हैं, तो विचार आक्रामक है, एग्रेसिव है, हिंसात्मक है, वह तोड़-फोड़कर रख देता है। आप तो बच जाते हैं, चीज टूट-फूट जाती है। वैज्ञानिक के आस-पास इसी तरह टूटी-फूटी मुर्दा चीजों का फैलाव है, कबाड़खाना है। सब मरा हुआ है उसके आस-पास; सिर्फ वैज्ञानिक जिंदा है। वह भर बैठा है बीच में, बाकी सब कबाड़खाना है उसके आस-पास मुर्दा चीजों का।

एक कवि भी होता है कहीं किसी फूल के पास बैठा हुआ, एक प्रेमी भी होता है कहीं। तब एक दूसरी घटना घटती है। उसके पास चांदत्तारे होते हैं–बहुत मुखर, बहुत जीवित–लेकिन कवि खो गया होता है। वह नहीं होता वहां।

रवींद्रनाथ से कोई पूछता था कि इतने अच्छे गीत तुमने लिखे! रवींद्रनाथ, तुम कभी असफल भी हुए हो? तो रवींद्रनाथ ने कहा, जब-जब मैं रहा, तभीत्तभी असफल हुआ। जब-जब मैं मिटा, तभीत्तभी सफलता थी। अगर गीत लिखते वक्त मैं मिट गया, तो सफल हुआ; और अगर गीत लिखते वक्त मैं बना रहा, तो कभी सफल नहीं हुआ।

अब अगर वैज्ञानिक, विचार करने वाला अगर मिट जाए, टूट जाए, खो जाए, न रह जाए...। कभी-कभी कोई वैज्ञानिक भी प्रयोगशाला में खो जाता है। जब वह खो जाता है, तब वह वैज्ञानिक नहीं है, तब वह कवि हो जाता है। और अक्सर वैज्ञानिक भी कवि होकर ऐसे गहरे हीरे खोज लाता है, जो वैज्ञानिक होकर उसने कभी भी नहीं खोजे। और कभी-कभी कवि भी नहीं खोता, फूल ही खो जाता है, तब वह कवि नहीं होता, तब वह वैज्ञानिक ही हो जाता है। तब फूल के संबंध में वह जो भी खोजकर लाता है, वह काव्य नहीं होता, मुर्दा तुकबंदी होती है।

यह जो भाव है हमारे भीतर, इस भाव को परमात्मा की ओर प्रवाहित करने का नाम भक्ति है।

लेकिन हम परमात्मा के पास भी विचार को लेकर पहुंच जाते हैं। हम अपना पूरा तर्कशास्त्र साथ लेकर पहुंच जाते हैं। हम अपनी सब पोथी विचार की साथ ही ढोते हैं। और हमें मौका मिले, तो हम परमात्मा को भी चीर-फाड़ करके, शल्यक्रिया करके, सर्जरी करके, ठीक से उसकी जांच करके, बच्चों के पढ़ने के लिए स्कूल की किताब में लिखना पसंद करें।

लेकिन इस विचार को ढोने वाले आदमी को उससे कभी मिलना नहीं हो पाता, इसलिए उसकी शल्यक्रिया नहीं कर पाते। नहीं तो बहुत लोग परमात्मा का पोस्टमार्टम करने को इतने उत्सुक हैं! मिल भर जाए कहीं उसकी लाश, तो वे पोस्टमार्टम कर लें! परमात्मा में उनकी उत्सुकता नहीं है; उनकी उत्सुकता अपने विचार और अपने सिद्धांतों में है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में बुजुर्ग आदमी था, तो कभी-कभी लोग उससे दवा भी पूछ ले जाते थे। गांव का बुजुर्ग था, कुछ दवाएं जानता था।

एक संदेहशील आदमी उसके पास आया और उसने कहा कि मुल्ला, दवा तो तुम्हारी लेता हूं, लेकिन अब चिकित्सकों का कोई भरोसा नहीं रहा। मेरा एक मित्र था, चिकित्सक उसका निमोनिया का इलाज करता रहा और आखिर में जब वह मरा, तो पोस्टमार्टम में पता चला कि वह टी.बी. का बीमार था!

मुल्ला ने कहा, बेफिक्र रहो, जब मैं निमोनिया का इलाज करता हूं, तो आदमी हमेशा निमोनिया से ही मरता है! और अब तक हर पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में मैं सही सिद्ध हुआ हूं। तुम बेफिक्र रहो। अगर मेरी दवाई से मरोगे, तो निमोनिया से ही मरोगे। ऐसा कभी नहीं होता है कि कोई दूसरी बीमारी से मर जाता हो।

विचारवादी उत्सुक है अपने विचार में। वह कहता है कि अगर मैंने कहा कि निमोनिया है, तो निमोनिया से ही मरोगे। और अगर नहीं मानते, तो पोस्टमार्टम की रिपोर्ट सिद्ध करेगी कि निमोनिया से ही मरे। न तुमसे उसे प्रयोजन है--विचार को अपने अहंकार से प्रयोजन है। इसलिए विचार के आस-पास जो लोग घूमते रहते हैं, वे अहंकार के आस-पास घूमते रहते हैं। और अहंकार से परमात्मा का क्या लेना-देना है!

ध्यान रहे, भाव की दशा में अहंकार नहीं बचता। भाव का कोई अहंकार नहीं है। क्यों? क्योंकि अहंकार पैदा होता है दूसरों के संसर्ग में। इसलिए जब आदमी अपने से बाहर जाता है, तो अहंकार पैदा होता है। क्योंकि जहां तू है, वहां मैं के पैदा होने की जरूरत पड़ जाती है। लेकिन जब आदमी अपने भीतर जाता है, वहां कोई तू है ही नहीं, तो वहां मैं को पैदा होने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। मैं अकेला नहीं जी सकता; उसके लिए तू का छोर चाहिए।

भाव अंतर्प्रवेश है, जैसे गंगा गंगोत्री की तरफ लौटने लगे वापस। भाव जो है, गोइंग बैक, वापस लौटना है। विचार जो है, दौड़ना है बाहर की ओर। इसलिए विचार चांद पर ले जाएगा, मंगल पर ले जाएगा, महासूर्यों पर ले जाएगा। बस, एक जगह नहीं ले जाएगा--आदमी के भीतर। विचार कहेगा, चलो और दूर, और दूर। जितनी दूर की यात्रा होगी, उतना विचार प्रसन्न होगा। सिर्फ एक यात्रा पर विचार इनकार कर देगा, भीतर की यात्रा पर। वह कहेगा, क्या बेकार के काम में लगे हो? भीतर जाने की जरूरत क्या है? और भीतर कहीं कुछ है कि जा सकोगे? चांद पर चलो, आकर्षण तीव्र है। भीतर क्या रखा है?

और अगर कभी विचार थक भी गया बाहर से और भीतर जाने की कोशिश की, तो भी वह भीतर नहीं जा पाता। फिर भी वह बाहर-बाहर ही घूमता है। विचार भीतर जा ही नहीं सकता। वह है ही बाहर के लिए। वह आयाम ही उसका बाहर है।

भाव भीतर जाता है। लेकिन भाव का हमें कोई खयाल नहीं है। कोई भी खयाल नहीं है। आमतौर से जिसे हम भाव कहते हैं, वह भी भाव नहीं है।

एक मां अपने बेटे को प्रेम करती है। निश्चित ही, हम कहेंगे, यह विचार नहीं, भाव है। लेकिन उस मां को आज ही पता चल जाए कि यह बेटा उसका नहीं है। जब वह प्रसव-पीड़ा में पड़ी थी, तब अस्पताल में किसी ने उसका बेटा बदल लिया। बीस साल से वह प्रेम करती थी। यह आज पता चला, डाक्युमेंट हाथ में आ गए, सारे प्रमाणपत्र मिल गए कि बेटा उसका नहीं, किसी और का है। क्या आप सोचते हैं, प्रेम ठीक वैसी ही धारा में बहता रहेगा, जैसा बह रहा था एक क्षण पहले तक?

नहीं; धारा अवरुद्ध हो जाएगी, सब बिखर जाएगा। तो यह बेटे से भाव का संबंध था या यह भी विचार का ही संबंध था? चूंकि यह मेरा बेटा है। मेरा बेटा है, तो संबंध था; और मेरा नहीं है, तो संबंध एकदम शिथिल होगा और खो जाएगा।

भाव मेरात्तेरा नहीं जानता। सिर्फ विचार ही मेरा और तेरा जानता है। इसलिए जिस मां ने मां होने का आनंद नहीं लिया और सिर्फ मेरे बेटे को प्रेम किया, अभी उसके भाव का जन्म नहीं हुआ है। यह भी विचार है।

भाव मेरात्तेरा जानता ही नहीं, भाव सिर्फ प्रेम जानता है। वह मेरा हो तो भी, और तेरा हो तो भी। और भाव जब गहन होता है, तो कोई भी मौजूद न हो, तब उस निर्जन में भी भाव की धारा प्रेम की वर्षा करती रहती है।

बुद्ध जैसा व्यक्ति जब कहीं बैठता है, या कृष्ण जैसा व्यक्ति जब कहीं खड़ा होता है, कोई भी न हो वहां, तो भी प्रेम की किरणें वैसी ही फैलती रहती हैं, जैसे एकांत में जलते हुए दीए से प्रकाश झरता रहता है। वह किसी के लिए निवेदित नहीं है, वह किसी के लिए एड्रेस्ड नहीं है। वह सिर्फ भाव है। और उस भाव में रमने में परम आनंद है।

जिस दिन भाव अनएड्रेस्ड होता है, उसी दिन परमात्मा के लिए एड्रेस्ड हो जाता है। जिस दिन भाव बिना किसी पते के घूमने लगता है, भीतर से बहने लगता है, उसी दिन वह परमात्मा के चरणों पर पहुंचना शुरू हो जाता है। लेकिन यह भाव अंतर्गमन है, अपने पर वापस लौटना है।

तो जिसे भी भाव की तरफ चलना हो, उसे पहली शर्त तो यह है कि वह विचार से सावधान हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह विचार छोड़ दे। इसका इतना अर्थ है कि वह विचार बाहर के लिए करे और भीतर के संबंध में विचार को बाधा न देने दे। वैसे विचार की आदत इंटरफिअर करने की है हर चीज में। और अगर आप विचार से कहेंगे कि मत डालो बाधा, तो विचार ही आपसे कहेगा कि तुम्हीं उलटे मेरे काम में बाधा डाल रहे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है अपने घर में। चिट्ठी डालने वाला दरवाजे के नीचे से चिट्ठी डाल गया है। पत्नी उठी। मुल्ला उठ ही रहा था कि पत्नी उठ गई। उसने चिट्ठी उठाई। पता पढ़ा। मुल्ला ने पूछा, किसकी है? उसने कहा, मेरे मायके से है। किसके नाम है? तो पत्नी ने कहा, मेरे नाम है। पत्नी ने चिट्ठी खोली, पढ़ने लगी। मुल्ला ने पूछा, क्या लिखा है? पत्नी ने कहा, चिट्ठी मेरे नाम है, मेरे मायके से है, आप इतनी उत्सुकता क्यों ले रहे हैं? मुल्ला ने कहा, फिर वही नासमझी! हजार दफे कहा कि मेरे काम में बाधा मत डाला कर।

चिट्ठी उसकी है, उसके मायके से है। वह पढ़ रही है। बाधा मुल्ला डाल रहा है। लेकिन वह कहता है, फिर वही नासमझी! मेरे काम में बाधा मत डाला कर।

विचार पूरे समय भाव के लिए बाधा डालता है। और अगर आपने विचार से कहा कि बाधा मत डालो, तो विचार कहेगा, मेरे काम में आप बाधा डाल रहे हैं। और विचार से आप इतने आब्सेस्ड हैं, विचार से ऐसे रुग्ण हैं कि आप यह भूल ही गए हैं कि आप विचार से अलग हैं। यही सबसे बड़ी कठिनाई है।

आप जब भी विचार करते हैं, समझते हैं, मैं कर रहा हूं। और जब भी भाव आता है, तो आप समझते हैं, कोई विजातीय चीज भीतर आ रही है। हमारी आइडेंटिटी विचार से जुड़ गई है, हमारा तादात्म्य। तो आदमी जब विचार करता है, तो कहता है, मैं विचार कर रहा हूं। जब भाव करता है, तो समझता है कि कोई फारेन, कोई विजातीय चीज भीतर बाधा डाल रही है। भाव से हमारा कोई तादात्म्य नहीं है, जब कि भाव ही हमारी जड़ है, वही हमारा आधार है।

तो पहला काम तो भक्ति-युक्त चित्त की तरफ यह है कि हम विचार को भीतर के मार्ग पर बाधा देने के लिए पाबंदी कर दें। कह दें कि नहीं, तेरा वहां कोई काम नहीं है।

कठिनाई पड़ेगी। लेकिन कठिनाई ज्यादा नहीं पड़ेगी, अगर संकल्प है। और बहुत शीघ्र एक डिमार्केशन, एक सीमा-विभाजन हो जाएगा–विचार बाहर के लिए, भाव भीतर के लिए। जो व्यक्ति ऐसा अपने भीतर स्पष्ट रेखा नहीं खींच पाता, वह विचार के द्वारा सदा ही अपने भाव के जगत को नष्ट करने में लगा रहता है।

जरा प्रेम उठेगा और विचार कहेगा, यह क्या गलती में पड़ रहे हो! इल्लाजिकल, तर्कहीन बातों में जा रहे हो! ध्यान करने गए। विचार कहेगा, यह क्या कर रहे हो? कीर्तन करने लगे। विचार कहेगा, यह क्या कर रहे हो? पागल हो रहे हो, मूढ़ हुए जा रहे हो? भाव ने कहा, कूद पड़ो संन्यास में। विचार कहेगा, क्या होश खो रहे हो? क्या दिमाग खराब है? पहले सोचो।

आप भी कहेंगे कि सोचना तो जरूर चाहिए कुछ भी करने के पहले। लेकिन क्या आपको पता है, कुछ चीजें सोचकर की ही नहीं जा सकतीं। जैसे कोई प्रेम करने के पहले सोचे। निश्चित ही सोचना चाहिए।

सुना है मैंने, एक आदमी ने सोचा है बहुत। वह आदमी था जर्मनी का एक बहुत बड़ा विचारक इमेनुअल कांट। एक स्त्री ने उससे निवेदन किया कि मैं विवाह के लिए निवेदन करती हूं। इमेनुअल ने नीचे से ऊपर तक उसे देखा, वैसे ही जैसे विचारक किसी चीज को परख करते वक्त देखते हैं। उन्होंने ने कहा, ठीक। मुझे विचार का मौका दें।

स्त्री में थोड़ी भी प्रतीति रही होगी, तो उसी वक्त जान लेती कि यह आदमी काम का नहीं है। फिर महीनों पर महीने निकल गए। वर्ष निकल गया। तीन वर्ष निकल गए। और तीन वर्ष बाद इमेनुअल उसके दरवाजे पर पहुंचा।

उसके पिता ने उसे बिठाया और पूछा कि आप कैसे आए? ख्यातिलब्ध आदमी था! इमेनुअल ने कहा कि कुछ समय हुआ आपकी लड़की ने निवेदन किया था मुझसे विवाह का। तीन साल मैंने सब तरह अध्ययन किया, चिंतन किया, मनन किया, विवाह के पक्ष में और विपक्ष में सारी युक्तियां, सब तर्क! यही कहने आया हूं कि अभी तक कोई निर्णय नहीं हो पाया है।

लेकिन उसके पिता ने कहा, अब आप चिंता छोड़ें। लड़की के विवाह हुए भी दो साल हो गए। एक बच्चा भी हो चुका है। वैसे भी काफी देर हो चुकी है। और अब तो आप चिंता ही छोड़ दें।

इमेनुअल कांट विचारक था। प्रेम को अगर विचार करने गए, तो विचार हाथ लगेगा, प्रेम कभी का खो चुका होगा।

लेकिन प्रेम के संबंध में हम यह नासमझी नहीं करते। लेकिन प्रार्थना के संबंध में जरूर करते हैं। क्यों करें प्रार्थना? यह क्यों सवाल विचार का है; यह सवाल भाव का नहीं है। भाव क्यों पूछता ही नहीं। भाव पूछता है, कैसे करें प्रार्थना? भाव पूछता है, क्या है प्रार्थना? क्यों नहीं। क्या मिलेगा प्रार्थना से, यह भी भाव नहीं पूछता। कभी प्रेम ने पूछा है कि क्या मिलेगा प्रेम से? प्रार्थना करने वाले ने भी कभी नहीं पूछा है। लेकिन हम प्रार्थना करने वाले निरंतर पूछते रहते हैं, क्या मिलेगा? क्या मिला है? कुछ मिल रहा है कि नहीं मिल रहा है?

नहीं, भाव नहीं है वहां। विचार को हटाएं, अन्यथा भाव के जगत में कोई गति नहीं होगी। विचार को कहें कि तेरी सीमा है, वहां तू काम कर। बाहर, घर के बाहर; घर के भीतर नहीं। कुछ मेरे अंतस्तल का भी जगत है, जहां तू बाधा न डाल। तू पदार्थ से जूझ, तू परमात्मा से जूझने मत चल, अन्यथा मुझे हराकर रहेगा। तू पदार्थ को काट, लेकिन प्रेम को काटने की तैयारी मत कर। तू पदार्थ की परीक्षा कर, लेकिन परमात्मा की परीक्षा लेने मत जा।

तो फिर दूसरा कदम उठाया जा सकता है, भाव के विकास का। जहां भी चिंतन को गति न मिलती हो और प्रतीति को गति मिलती हो, वहां-वहां ज्यादा से ज्यादा समय देना शुरू करें।

संगीत सुन रहे हैं, उसे भी हम संगीत की तरह नहीं सुनते।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ, शूवर्ट, एक गांव में संगीत बजाने गया है। जब वह अपना वायलिन बजा रहा है, तब सामने बैठा एक बूढ़ा बार-बार कह रहा है, बेकार है; कुछ भी नहीं है। शूवर्ट परेशान हो गया। वह सामने की कुर्सी पर बैठा हुआ है, और बार-बार कह रहा है। और वह अपनी बगल के आदमी से भी कान में कुछ-कुछ पूछता है। जब उसने बगल के आदमी से पूछा, तब राज खुला। बगल के आदमी से उसने पूछा, यह कब सिक्खड़ हटेगा, शूवर्ट कब आएगा? वह शूवर्ट ही बजा रहा है। तो बगल के आदमी ने कहा, महानुभाव, यह शूवर्ट ही है! उसने कहा, अरे, वंडरफुल, आश्चर्य! क्या अदभुत संगीत है! वह शूवर्ट सुन रहा है सामने ही बैठा! क्या हुआ! यह आदमी संगीत सुन रहा है? यह, शूवर्ट कौन है, तो प्रभावित होता है। नहीं तो नहीं प्रभावित होता है।

विनसेंट वानगाग के चित्र अनेक लोगों के घरों में थे। विनसेंट वानगाग गरीब चित्रकार था। किसी से कुछ सिगरेट उधार ले ली थीं, उसके पास पैसे चुकाने को नहीं थे, तो एक पेंटिंग उसको दे आया। जो आदमी सिगरेट के पैसे नहीं चुका सकता, उसकी पेंटिंग कोई अपनी दूकान में टांगेगा? पान वाला भी नहीं टांगेगा। उसने उसको कबाड़खाने में डाल दिया।

विनसेंट वानगाग के मरने के बीस-पच्चीस वर्ष बाद उसकी तस्वीरों की खोज शुरू हुई, जैसा अक्सर होता है। विनसेंट वानगाग को खाने के पैसे नहीं थे और अब विनसेंट वानगाग की एक-एक तस्वीर चार और पांच लाख रुपए की होती है। खोजबीन मच गई कि कहां उसकी तस्वीरें हैं? क्योंकि उसकी एक तस्वीर जिंदगी में बिकी नहीं कभी; एक नहीं बिकी! तो वे तो मुफ्त उसने दे दी थीं। मित्र उसका अनुग्रह करके तस्वीर टांग देते थे अपने बैठकखाने में, और जैसे ही वह जाता था, उतारकर पीछे हटा देते थे। और कभी फिर घर आने को है, तो जल्दी से उसकी तस्वीर टांग देते थे कि उसको बुरा न लगे।

लोगों ने खोजबीन की, तस्वीरें एकदम कीमती हो गईं। नकली, लोगों ने विनसेंट वानगाग की तरह ही चित्र बना-बनाकर लाखों रुपए कमा लिए। जो तस्वीर पीछे घर में पड़ी थी, जैसे ही घर के मालिक को पता लगा कि विनसेंट वानगाग की है। वानगाग है! तस्वीर बैठकखाने में आ गई! अभी तक कबाड़खाने में पड़ी थी।

इस आदमी का तस्वीर से कोई भी संबंध बन पा रहा था? कोई संबंध नहीं था।

आपके घर में भी हीरा पड़ा हो और पत्थर आपको पता हो, तो उससे कोई संबंध नहीं बनता। और पत्थर पड़ा हो और वहम आ जाए कि हीरा है, तो संबंध बन जाता है। तो आपके सौंदर्य से कोई भाव का लेना-देना नहीं है। यह सब विचार का ही मामला है।

भाव जहां हो! संगीत बज रहा है। छोड़ें फिक्र, कौन बजा रहा है। छोड़ें फिक्र, क्या बजा रहा है। इतनी ही फिक्र करें कि मन, जहां बुद्धि हट जाती है और भाव–सिर्फ भावत्तरंगें होती हैं–क्या यह संगीत इन भाव की तरंगों को छू रहा है? अगर छू रहा है, तो बुद्धि को एक तरफ रख दें उतारकर और इस भाव की धारा में बहें।

चाहे फूल हो, और चाहे आकाश के तारे हों, चाहे संगीत हो, चाहे किन्हीं दो सुंदर आंखों में मिली कोई झलक हो, चाहे किसी चेहरे का सौंदर्य हो, चाहे किसी पत्थर का सौंदर्य हो, चाहे मंदिर हो, चाहे मस्जिद–जहां भी आपको लगता हो कि बुद्धि के गहरे में जाकर कोई चीज छू रही है, बुद्धि को हटा दें और अपने हृदय को खुला कर दें, ताकि वह आपके हृदय पर स्पर्श करके उसको जगा पाए।

अगर कोई व्यक्ति इतनी ओपनिंग, इतना दरवाजा अपने में बना ले, तो बहुत शीघ्र ही वह पाएगा कि भाव का एक अनूठा अंकुरण उसके भीतर हो जाता है। और इस भाव के अंकुरण के साथ आता है प्रेम, निर्बाध प्रेम। इस भाव के अंकुरण के साथ आता है प्रार्थना का लोक–लोभरहित, बेशर्त। इस भाव के साथ आती है धीरे-धीरे भक्ति।

भक्ति का अर्थ है, एक के प्रति नहीं, समस्त के प्रति प्रेम। एक के प्रति नहीं, समस्त के प्रति प्रेम। जब तक सुंदर में ही सुंदर दिखाई पड़ता है, तब तक अभी पूर्ण सौंदर्य का अनुभव नहीं हुआ। और जब कुरूप में भी सौंदर्य के दर्शन शुरू हो जाते हैं, तो पूर्ण सौंदर्य का अनुभव होता है। जब तक मित्र से ही प्रेम बनता है, तब तक पूर्ण प्रेम का कोई पता नहीं; और जब शत्रु से भी प्रेम बन जाता है, तभी पूर्ण प्रेम का पता है।

जिस दिन भाव की यह धारा समस्त के प्रति बिना किसी कारण के, बिना किसी निर्णय के, बिना किसी चुनाव के बहनी शुरू हो जाती है, भक्ति बन जाती है।

कृष्ण कहते हैं, भक्तियुक्त पुरुष, ऐसे भाव से भरा हुआ व्यक्ति, अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके...।

ये जो दो आंखें हैं आपकी, ये जो दो भृकुटियां हैं, आई ब्रोज हैं, इनके बीच में जगह है एक, जो इस शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वह थर्ड आई, तीसरी आंख की जगह है, शिव-नेत्र की जगह है। जिस व्यक्ति का समस्त के प्रति प्रेम भाव है, प्रार्थना भाव है, पूजा भाव है, जो इस जगत में सिवाय परमात्मा के और किसी को देखता नहीं, ऐसा व्यक्ति अंत समय में भृकुटी के मध्य में ध्यान को स्थिर कर लेता है। क्यों? क्योंकि जिसका ध्यान भृकुटी के मध्य में स्थिर हो, उसकी आगे की शरीर-यात्रा बंद हो जाती है।

आगे की शरीर-यात्रा, आवागमन, तीसरी आंख पर अगर ध्यान न हो, तो जारी रहता है। इस तीसरी आंख पर अगर ध्यान हो, तो यह द्वार है संसार से छूट जाने का। यहां मार्ग है, जहां से एक संधि है छोटी, जहां से हम शरीर के पार हो जाते हैं। इस पर अगर ध्यान हो और प्रेम से भरा हुआ चित्त हो, भाव से भरा हुआ चित्त हो, विचार की कोई तरंग ही न हो, भाव की गहनता हो, बस। विचार की कोई लहर ही न हो, क्योंकि जैसे ही विचार की लहर आती है, भृकुटी से ध्यान हट जाता है। इसे समझ लें।

विचार की जरा-सी तरंग, और भृकुटी से ध्यान हट जाता है। और विचार निस्तरंग, भाव परिपूर्ण, और भृकुटी पर ठहर जाता है। इस भृकुटी पर ठहरा हुआ चित्त, निश्चल मन से स्मरण करता हुआ दिव्य स्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है।

निश्चल विचार कभी होता ही नहीं, सिर्फ भाव होता है। अगर आप कहते हैं कि मेरा विचार बहुत दृढ़ है, तो आप बड़ी गलत बात कहते हैं। विचार दृढ़ होता ही नहीं। जैसे कोई कहे कि मेरी नदी में जो लहरें उठती हैं, वे बड़ी निश्चल हैं, वह पागलपन की बात कर रहा है। लहरें निश्चल होती ही नहीं। नदी निश्चल हो सकती है, लेकिन तभी, जब लहरें न हों। भाव निश्चल हो जाता है तभी, जब विचार की तरंगें नहीं होती हैं।

विचार तो तरंग है, इसलिए निस्तरंग विचार का अर्थ होता है, न-विचार, निर्विचार। विचार ही कंपन है, इसलिए अकंप विचार नहीं होता। जब अकंप विचार होता है, तो विचार होता ही नहीं। और जब भी विचार होता है, तो कंपन जारी रहते हैं।

अगर जरा-सा भी कंपन है, तो भृकुटी पर नहीं ठहराया जा सकता। आदमी चूक जाता है। और भृकुटी की जो संधि है, वह इतनी छोटी है कि अगर आप बालभर भी कंप गए, तो चूक गए। अगर बालभर भी कंपन हुआ, तो चूक गए। वह जगह बहुत एटामिक है, बहुत आणविक है; वह बहुत बड़ी जगह नहीं है; बहुत सूक्ष्म संधि है। उसमें तो सिर्फ वे ही लोग प्रवेश करते हैं, जो कंपना जानते ही नहीं, जिन्हें कंपन का पता ही नहीं रहा है अब।

और ध्यान रहे, भाव बड़ा निष्कंप है। कभी आपने किसी को अगर प्रेम किया हो, जैसा कि होता नहीं। मुश्किल से कभी कोई सौभाग्यशाली होता है कि किसी को प्रेम करता है। अगर कभी किसी को प्रेम किया हो, तो सब करते हुए–सब चलते, उठते, काम में लगे हुए–भीतर कोई एक अकंप भाव उस प्रेमी का बना ही रहता है।

कबीर से कोई पूछता है कि तुम ये सब काम में लगे हुए कैसे उसको स्मरण करते होओगे? कबीर ने कहा, कभी समय आएगा, तो बताऊंगा। फिर एक दिन स्नान करके नदी से लौटते हैं कबीर। साथ में पूछने वाला भी है। वह फिर पूछता है, बताया नहीं! तो कबीर ने कहा–पास में दो ग्राम-वधुएं अपने सिर पर घड़ा लिए पानी से भरा हुआ, दोनों हाथ छोड़े गपशप करती हुई रास्ते से गुजर रही हैं। कबीर

ने कहा, देखते हो इन्हें, पानी से भरा हुआ घड़ा है, माथे पर रखा है, हाथ का सहारा नहीं, दोनों हाथ छोड़कर गपशप करती हुई वे मार्ग से चलती हैं। क्या तुम सोचते हो, इन्हें घड़े का स्मरण नहीं होगा?

रोका उन्हें, पूछा। तो उन्होंने कहा, अगर घड़े का स्मरण सतत न बना रहे, तो हाथ हटाया नहीं जा सकता। हाथ हटा ही इसलिए सके हैं कि स्मरण तो घड़े का बना ही हुआ है। वह स्मरण ही सम्हाले हुए है।

सारे काम में लगा हुआ व्यक्ति भी अगर भाव से भर जाए, तो फिर सब तरफ उलझा रहे, भीतर कहीं कोई चीज सम्हली ही चली जाती है। वह सम्हली ही बनी रहती है। उस भाव की दशा में यदि अंत क्षण आ जाए, तो समस्त भाव सिकुड़कर भृकुटी पर केंद्रित हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, योगबल से!

क्योंकि भृकुटी पर ध्यान को केंद्रित करने का जिन्होंने अभ्यास किया हो, उन्हीं के लिए आसान होगा कि अंत क्षण में उनका भाव भृकुटी पर आ जाए, अन्यथा संभव नहीं होगा। क्योंकि शरीर के भीतर रास्ते हैं। और अगर रास्ते टूटे हुए न हों, तो आखिरी समय में रास्ते बनाना बहुत मुश्किल है।

आप शायद ही कभी अपनी भृकुटी की तरफ ध्यान ले जाते हों। ध्यान जाता है सेक्स सेंटर की तरफ, ज्यादा से ज्यादा। ज्यादा से ज्यादा आदमी का ध्यान उसके काम-केंद्र की तरफ दौड़ता रहता है। काम-केंद्र बिलकुल उलटा है तृतीय नेत्र से, दूसरे छोर पर है। ये दो छोर हैं।

ऐसा समझ लें, काम-केंद्र का चिंतन अगर ज्यादा चलता हो, तो हमारे भीतर चेतना को जाने के लिए एक ही रास्ता होता है बना हुआ; वह बिलकुल, कहें कि हाईवे है चेतना के लिए भीतर। बिलकुल सपाट रास्ता तैयार है। जरा खिसके कि काम-केंद्र पर पहुंच जाएंगे। बीमार पड़े हैं खाली, तो कामवासना पकड़ेगी। खाली बैठे हैं, कोई काम नहीं है दफ्तर में, तो कामवासना पकड़ेगी। कार में बैठे हैं खाली, तो कामवासना पकड़ेगी। या तो करते रहो विचार कुछ न कुछ, उलझे रहो, और या फिर कामवासना पकड़ेगी। एक सपाट रास्ता भीतर बना है, चित्त जरा खाली हुआ, भागा।

एक दूसरा केंद्र है भृकुटी के मध्य में, योगी उसे आज्ञा-चक्र कहते हैं, या कोई और नाम देते हैं। यह जो केंद्र है, यह ठीक उलटा है। भक्त का, जैसे ही समय मिला, ध्यान भागा और भृकुटी पर आया। लेकिन इस भृकुटी के कांशसनेस के लिए, इसके चैतन्य के लिए, इसके बोध के लिए योग का अभ्यास जरूरी है। धीरे-धीरे आपको शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा आज्ञा-चक्र मालूम पड़ने लगे, और जब भी सुविधा हो, समय हो, शक्ति हो, ध्यान तत्काल आज्ञा-चक्र की तरफ भाग जाए।

अगर यह रास्ता तैयार रहा, तो अंत समय में समस्त भाव आज्ञा-चक्र पर इकट्ठा होकर शरीर के आवागमन के बाहर हो जाता है। लेकिन अगर यह न रहा, तो कठिनाई पड़ जाती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थापन करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त होता है।

और हे अर्जुन, वेद के जानने वाले जिस परम पद को अक्षर, ओंकार नाम से कहते हैं और आसक्तिरहित यत्नशील महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं, तथा जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परम पद को मैं तेरे लिए संक्षिप्त में कहूंगा।

वेद के जानने वाले!

सहज ही खयाल आता है कि वेद की जो चार संहिताएं हैं, उनको जानने वाले, वेदपाठी पंडित, कृष्ण उनकी बात कर रहे होंगे! कृष्ण जैसे व्यक्ति उनकी बात नहीं कर सकते। शास्त्र को जानने वाला, कृष्ण जैसे व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण नहीं होता। लेकिन वेद अनूठा शब्द है। वेद का अर्थ होता है केवल ज्ञान। वेद का अर्थ शास्त्र तो परोक्ष से होता है। सीधा-सीधा अर्थ होता है ज्ञान।

जिसे हम वेद कहते रहे हैं, वह केवल उस ज्ञान की एक भनक है, एक प्रतिछवि। अनंत वेद पैदा हो सकते हैं, अगर हम उस परम ज्ञान के सामने जितने दर्पण ले जाएंगे, उतने वेद पैदा हो सकते हैं। लेकिन वेद का इशारा उस परम ज्ञान की तरफ है। अगर वेद की चारों संहिताएं भी खो जाएं, तो भी वेद नहीं खो जाएगा। और वेद की अगर करोड़ों संहिताएं भी पैदा हो जाएं, तो भी वेद चुक नहीं जाएगा।

जिन चार संहिताओं को हम वेद कहते हैं–ऋग्वेद को, यजुर्वेद को, अथर्व को, साम को–यह मनुष्य जाति के स्मरण में उस परम वेद की पहली प्रतिछवि है। कुरान भी वेद है, और बाइबिल भी वेद है, और महावीर के वचन भी, और बुद्ध के वचन भी–ये बाद की प्रतिछवियां हैं। लेकिन जो लोग पहली प्रतिछवि से आग्रहग्रस्त हो गए, उन्होंने कहा, अब इसके बाद और कोई वेद नहीं है।

वेद निरंतर जन्मता रहेगा। जब भी कोई व्यक्ति परमभाव को उपलब्ध होता है, तब दर्पण बन जाता है। और वह जो परम वेद है, जो शाश्वत ज्ञान है, जो परमात्मा के हृदय में विराजमान है, वह फिर अपनी प्रतिछवि बनाता है।

निश्चित ही, वह छवि दर्पण के अनुसार अलग-अलग होती है। ऋग्वेद एक छवि है। कुरान दूसरी, वह मोहम्मद का दर्पण है। बाइबिल तीसरी, वह जीसस का दर्पण है। बुद्ध या महावीर, और लाओत्से, हजार-हजार लोग प्रतिबिंब दिए हैं, वे सभी वेद हैं।

वेद किसी मुर्दा किताब का नाम नहीं। वेद उस परम ज्ञान का नाम है, जिसके समक्ष परिपूर्ण शून्य हुआ व्यक्ति खड़ा होता है।

तो कृष्ण जब वेद की बात करते हैं, तो कोई इस भ्रांति में न रहे कि वे कोई हिंदुओं के वेद की बात कर रहे होंगे। नहीं, कृष्ण जैसे लोग विशेषण की भाषा में नहीं बोलते। हिंदू, और मुसलमान, और ईसाई, और जैन की भाषा में नहीं बोलते। उनकी भाषा तो परम भाषा है। वेद से उनका अर्थ है, वह वेद, जो दर्पण बन गए लोगों में प्रतिबिंबित होता रहा है।

ऐसे वेद को जानने वाले उस परम पद को अक्षर, ओंकार नाम से पुकारते हैं। अक्षर, जो कभी क्षरता नहीं, क्षीण नहीं होता, नष्ट नहीं होता।

हम तो सभी वर्णमाला को अक्षर कहते हैं। अ, ब, स, द, क, ख, ए, बी, सी, डी–सभी अक्षर हैं। लेकिन सभी क्षर जाते हैं। और सभी नष्ट हो जाते हैं। इनको अक्षर कहना ठीक नहीं है। अगर मैं न बोलूं, तो ये अक्षर पैदा भी नहीं हो सकते। अगर आप चुप रहें, तो ये अक्षर खो जाते हैं। इनको अक्षर कहा नहीं जा सकता।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, जानने वाले उस परम पद को अक्षर कहते हैं और वह अक्षर ओंकार है। एक ऐसा अक्षर भी है, ओम, जो आप न बोलें, तो ही बोला जाता है।

इसे थोड़ा समझ लेना पड़ेगा।

और सब अक्षर आप बोलें, तो ही बोले जाते हैं; न बोलें, तो खो जाते हैं। एक अक्षर ऐसा भी है, जो आप जब तक बोलते रहें, तब तक न बोला जाता और न सुना जाता। जब आप बोलना बंद कर दें, चुप हो जाएं, मौन हो जाएं, भीतर भी शब्द न रह जाएं, तब भी एक गूंज, प्राणों के प्राण में एक आवाज, एक नाद उठना शुरू हो जाता है। उस नाद का नाम, जानने वाले, वेद को जानने वालों ने अक्षर कहा है। उस नाद का जो प्रतीक है, वह ओम या ओंकार है।

जब कोई परम मौन होता है, तब उसके भीतर भी एक ध्वनि गूंजती है। वह ध्वनि हमारी पैदा की हुई नहीं है, क्योंकि हम तो चुप हैं। वह ध्वनि हमारा अस्तित्व है। अस्तित्व की ध्वनि है; कहें कि अस्तित्व ही ध्वनित होता है; हमारा होना ही ध्वनित होता है। उस ध्वनि का नाम अक्षर है। क्योंकि हम जब नहीं थे, तब भी वह ध्वनि ध्वनित हो रही थी; और हम नहीं होंगे, तब भी वह ध्वनित होती रहेगी। शायद हम उस ध्वनि की एक वेव लेंथ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। शायद उस परम ध्वनि का ही हम एक सघन रूप हैं, ए पर्टिकुलराइज्ड फार्म आफ दैट साउंड, दैट साउंडलेस साउंड; उस ध्वनिरहित ध्वनि का एक सघन रूप हैं। उस ध्वनि का नाम ओंकार है, ओम है।

यह ओम कोई शब्द नहीं है, इसमें कोई अर्थ नहीं है। यह अस्तित्व बोधक मात्र है, इंगित मात्र है। इसलिए ओम को लिखने का जो पुराना ढंग है, वह पिक्टोरियल है; चित्र बनाकर है। ओम को हम अ, उ, म से भी लिख सकते हैं। अंग्रेजी में ओम लिखना हो, तो हम ओ और एम से लिख सकते हैं। लेकिन नहीं, वह वर्णाक्षरों में लिखना ठीक नहीं है। ओम को हम लिखते हैं पिक्टोरियल, एक चित्र में। शब्द नहीं देते उसे, चित्र देते हैं, आकृति देते हैं सिर्फ। और वह आकृति इसीलिए देते हैं, ताकि हमारे और अक्षरों से वह एक न हो जाए, संयुक्त न हो जाए।

वस्तुतः वही अक्षर है, शेष सब जिन्हें हम अक्षर कहते हैं, उसकी ही पैदावार हैं। ओम में अ, उ और म तीन की ध्वनियों का तालमेल है। यह ओम तो अक्षर है, फिर अ, उ, म उसकी तीन उत्पत्तियां हैं। और फिर हमारे सारे वर्णाक्षर उन तीन के और विस्तार हैं।

पूर्वीय मनीषा ने जाना है ऐसा कि सत्य है एक; और जब सत्य संसार बनता है, तो होता है तीन; और फिर तीन से हो जाता है अनेक। ओम है एक। फिर अ, उ, म। और फिर सारे वर्णाक्षर पैदा होते हैं। लेकिन वे सब अक्षर नहीं हैं। अक्षर तो सिर्फ ओम ही है।

इस परम पद को जानने वालों ने ओंकार कहा है, अक्षर कहा है। और आसक्तिरहित, यत्नशील महात्माजन इसमें प्रवेश करते हैं--इस ओम में, इस अक्षर में।

जैसे ही किसी का भाव भृकुटी के मध्य थिर हो जाता है, वैसे ही उस थिरता में ओंकार का नाद शुरू होता है। उस नाद के साथ ही व्यक्ति संसार से मोक्ष में प्रवेश करता है। कहें कि वह नाद वाहन है। भृकुटी के मध्य में जैसे-जैसे व्यक्ति करीब पहुंचने लगता है, नाद घनघोर होने लगता है, गहन होने लगता है।

कबीर कहते हैं, कैसी जोर की बिजली कड़कती है! कैसे घनघोर बादल बरसते हैं! कैसे अमृत की बरसा हो रही है! और यह कैसा नाद, जो कहीं पैदा नहीं हो रहा है और सुनाई पड़ रहा है!

जैसे-जैसे भृकुटी के मध्य आएंगे, वैसे-वैसे पूरे तन-प्राण में एक नाद गूंजने लगेगा। उस क्षण में आप केवल ध्वनि का एक संग्रह मात्र रह जाएंगे--शरीर नहीं, नाद मात्र। और इस नाद पर सवारी करके ही व्यक्ति भृकुटी के छिद्र से ऊपर उठता है और परम पद में प्रवेश करता है।

इसे जिसे ओंकार कहते हैं ज्ञानीजन, आसक्तिरहित--ये शब्द समझ लेने जैसे हैं--आसक्तिरहित यत्नशील महात्माजन उसमें प्रवेश करते हैं।

आसक्तिरहित! जिनकी इतनी भी आसक्ति नहीं रही है कि हम मोक्ष में प्रवेश करें। क्योंकि बाकी आसक्ति तो छोड़े कोई, तभी भृकुटी तक पहुंचता है, लेकिन एक आसक्ति फिर भी रह जाती कि मैं मोक्ष में प्रवेश करूं। अगर इतनी आसक्ति भी भीतर शेष रह गई कि मैं मुक्त हो जाऊं, मोक्ष में प्रवेश करूं, परम पद पा जाऊं, प्रभु को पा लूं, इतनी आसक्ति भी अगर रह गई, तो बाधा बन जाती है। पाने का जहां खयाल शेष रह गया, वहां संसार शुरू हो जाता है। जहां वासना आ गई कोई भी, वहीं हम फिर पुनः संसार की यात्रा पर वापस लौट जाते हैं।

यह बहुत समझ लेने जैसी बात है।

प्रभु के खोजी को प्रभु के पाने के पहले, प्रभु को पाने की वासना भी छोड़ देनी पड़ती है। मोक्ष के खोजी को मोक्ष के द्वार पर मोक्ष की वासना को भी उतारकर रख देना पड़ता है। उतनी-सी वासना भी संसार में लौटा लाने के लिए पर्याप्त है।

आसक्तिरहित, लेकिन यत्नशील; यह बहुत अदभुत बात है। आसक्तिरहित और यत्नशील! आसक्त तो यत्नशील दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि जहां आसक्ति है, वहां यत्न है, एफर्ट है, चेष्टा है। जहां कुछ पाना है, वहां पाने की कोशिश होगी। लेकिन दूसरी घटना जो घटती है--घटना कहें या दुर्घटना--जब कोई व्यक्ति कहता है, अब कोई आसक्ति ही न रही, तो अब चेष्टा भी क्या? आसक्ति है, तो यत्न है। आसक्ति छूटी, तो लोग यत्न भी छोड़ देते हैं। लेकिन दोनों में ही खतरे हैं।

कृष्ण एक और ही बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, आसक्तिरहित यत्नशील। पाना कुछ भी नहीं है, फिर भी प्रयास में रत्तीभर कमी नहीं। यह बड़ी कठिन बात है। पाना कुछ भी नहीं है, फिर भी प्रयास में रत्तीभर कमी नहीं। दौड़े ऐसे ही जा रहे हैं जैसे मंजिल पर पहुंचना हो, और पहुंचना कहीं भी नहीं है। यह कैसे होगा?

यह कभी-कभी होता है। अगर दौड़ने में ही आनंद आ रहा हो, तो होता है।

एक तो दौड़ है, कहीं पहुंचने में आनंद छिपा है, कोई खजाना मिलने को है यात्रा के अंत पर, तो दौड़ रहे हैं। दौड़ने में कोई आनंद नहीं है। आनंद तो छिपा है वहां, अंत में। मिलेगा, तो आनंद मिलेगा। दौड़ तो रहे हैं उसे पाने के लिए।

अगर ऐसे व्यक्ति से कहो कि आसक्तिरहित दौड़ो, तो वह बैठ जाएगा वहीं। वह कहेगा, जब पहुंचना ही नहीं है कहीं, दौड़ना किसलिए? और कृष्ण कहते हैं, दौड़ो और पहुंचने का खयाल मत करो। इसका अर्थ हुआ, दौड़ो दौड़ने के ही आनंद में।

असल में जब कोई साधक गहरा उतरना शुरू होता है, तो वह यह नहीं कहता कि मैं ध्यान किसलिए कर रहा हूं। वह जानने लगता है कि ध्यान ही आनंद है, योग ही आनंद है। वह यह नहीं कहता कि प्रार्थना मैं इसलिए कर रहा हूं कि परमात्मा मुझे यह मिल जाए। वह कहता है, परमात्मा न भी हो, तो चलेगा; प्रार्थना के बिना नहीं चल सकता। वह कहता है, प्रार्थना आनंद है, इसलिए कर रहा हूं।

भक्तों ने बड़ी अदभुत बातें कही हैं। और भक्तों ने भगवान से ऐसी शानदार टक्करें ली हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। एक भक्त कहता है कि मुझे तेरे मोक्ष-वोक्ष से कोई प्रयोजन नहीं। मुझे तेरी वृंदावन की गली में ही जन्म ले लेना काफी है। मुझे तेरे मोक्ष-वोक्ष को

नहीं चाहिए। इतना ही खयाल रखना कि वृंदावन में जहां तू चला, वहीं मैं हो जाऊं, वहीं रह जाऊं, उसी धूल में पड़ा रहूं। मैं तेरे मोक्ष को छोड़ सकता हूं, तेरी वृंदावन की गली नहीं।

अब यह आनंद किसी और बात की खबर है। मोक्ष को छोड़ने की हिम्मत की बात जो कह सकता है, उसने मोक्ष पा ही लिया। उसे अब पाने को कुछ शेष न रहा। वृंदावन की गली भी उसके लिए मोक्ष हो जाएगी। धूल में पड़ा हुआ वह परम सिद्ध-शिला पर विराजमान हो जाएगा।

कृष्ण कहते हैं, आसक्तिरहित और यत्नशील। आसक्ति तो करना मत कुछ, लेकिन यत्न मत छोड़ देना। यत्न जारी रखना। निश्चित ही, अब यत्न तभी जारी रह सकता है, जब यत्न ही आनंद हो जाए।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास किसलिए? वे संन्यास की बात ही चूक गए; बात ही खतम हो गई। संन्यास किसलिए! संसार किसलिए–सार्थक है। संन्यास किसलिए– सार्थक नहीं है यह प्रश्न। संन्यास संन्यास के लिए। और तो कोई अर्थ नहीं होता। अगर संन्यास ही आनंद है, तो ही संन्यासी हो सकते हैं। अगर आपने सोचा कि संन्यास इसलिए लेते हैं कि यह-यह मिलेगा, तो आप संन्यास को भी संसार की एक चीज बना रहे हैं। संन्यास अपने में ही आनंद है। प्रार्थना अपने में ही आनंद है। पूजा अपना ही फल है।

यत्न जारी रखना, आसक्ति छोड़ देना, तो कृष्ण कहते हैं, ऐसे महात्माजन उस ओंकार की अक्षर ध्वनि में प्रवेश करते हैं। तथा जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं...।

और यह वही परम पद है, जिसको चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं। यह आखिरी सूत्र बहुत कीमती है। ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं जिसे चाहने वाले।

ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है, प्रभु जैसी चर्या। जिसे प्रभु को पाना हो, उसे प्रभु को पाने के पहले ही प्रभु जैसी चर्या शुरू कर देनी चाहिए। अन्यथा प्रभु सामने खड़ा होगा और हम उसके पात्र न होंगे। अन्यथा उसके द्वार पर भी पहुंच जाएंगे, तो द्वार की सांकल बजाने की हमारी हिम्मत न होगी। इसके पहले कि प्रभु-मिलन हो, हमें ऐसे जीना शुरू ही कर देना चाहिए, जैसे कि वह मिल गया है। हमें ऐसे जीना शुरू ही कर देना चाहिए, जैसे कि वह मिल गया है, जैसे कि वह घर में आकर बैठ गया है, जैसे कि वह मौजूद है। साथ चल रहा है; हृदय की धड़कन-धड़कन में खड़ा है; पैर-पैर में वही कंप रहा है। साधक को ऐसे जीना शुरू कर देना चाहिए कि परमात्मा साथ है, मिला हुआ है।

तो उसकी चर्या धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इस प्रभु के साथ होने के भाव से ब्रह्मचर्य बन जाती है, ब्रह्म जैसी बन जाती है। और जिस दिन चर्या ब्रह्म जैसी बन जाती है, उसी क्षण मिलन घटित हो जाता है।

मुझसे लोग कहते हैं कि अभी तो मन बदला नहीं; यदि संन्यास ले लेंगे, तो क्या होगा? पहले मन पूरा बदल जाए, तो फिर हम संन्यास ले लेंगे।

संन्यास की चर्या भी शुरू करने से संन्यास के आने का द्वार खुलता है। प्रार्थना के लिए होंठ हिलाने से भी परम नाद की तरफ का मार्ग खुलता है। मंदिर की तरफ चलने का खयाल भी भीतर के मंदिर के द्वार को खोलने के लिए कारण बन जाता है।

चर्या शुरू करें। ऐसे जीना शुरू कर दें कि परमात्मा है। और एक दिन आप पाएंगे कि जिसे चर्या में शुरू किया था, वह अनुभूति में आ गया है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
योगयुक्त मरण के सूत्र—अध्याय—8 (प्रवचन—पांचवां)

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।12।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।13।।
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।14।।

हे अर्जुन, सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर अर्थात इंद्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को उद्देश्य में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योगधारणा में स्थिर हुआ, जो पुरुष ओम, ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरे को चिंतन करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

और हे अर्जुन, जो पुरुष मेरे में अनन्य चित्त से स्थित हुआ सदा ही निरंतर मेरे को स्मरण करता है, उस निरंतर मेरे में युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूं।

मनुष्य की चेतना दो प्रकार की यात्रा कर सकती है। एक तो अपने से दूर, इंद्रियों के मार्ग से होकर, बाहर की ओर। और एक अपने पास, अपने भीतर की ओर, इंद्रियों के द्वार को अवरुद्ध करके। इंद्रियां द्वार हैं। दोनों ओर खुलते हैं ये द्वार। जैसे आपके घर के द्वार खुलते हैं। चाहें तो उसी द्वार से बाहर जा सकते हैं, लेकिन तब द्वार खोलना पड़ता है। और चाहें तो उसी द्वार से भीतर आ सकते हैं, तब द्वार भीतर की ओर खोलना पड़ता है। एक ही द्वार बाहर ले जाता है, वही द्वार भीतर ले आता है।

इंद्रियां द्वार हैं चेतना के लिए, बहिर्गमन के या अंतर्गमन के।

लेकिन हम जन्मों-जन्मों तक बाहर की यात्रा करते-करते यह भूल ही जाते हैं कि इन्हीं द्वारों से भीतर भी आया जा सकता है। स्मरण ही नहीं रहता है कि जिस द्वार से हम घर के बाहर गए हैं, वही भीतर लाने वाला भी बन सकता है।

यह भूल विचार की निरंतर होती है। यह हमें खयाल नहीं रहता कि जिन मार्गों से हम नीचे गिरते हैं, वे ही मार्ग हमारे ऊपर उठने के मार्ग भी बन जाते हैं। और जिन सीढ़ियों से कोई नर्क में उतरता है, उन्हीं सीढ़ियों से स्वर्ग में भी चढ़ा जाता है। सीढ़ियां अलग नहीं होतीं, केवल चलने की दिशा अलग होती है।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन, सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर अर्थात इंद्रियों के संयम को उपलब्ध हो, जो भाव को, मन को, हृदय में स्थित करे और प्राण को मस्तक में, वह परम गति को उपलब्ध होता है।

इंद्रियों को अवरुद्ध करके, इंद्रियों के संयम से--क्या अर्थ है?

इंद्रियों को अवरुद्ध दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो जबरदस्ती विषयों से इंद्रियों को हटाकर--झटके से, दमन से। कोई चीज सुंदर लगती है आपको; मन खिंचता है, आकर्षित होता है, दौड़ता है, चंचल होता है। एक उपाय तो यह है कि आंखें फोड़ लें, या आंखें हटा लें, या भाग खड़े हों उस जगह से। विषय से भाग खड़े हों। जो आकर्षित करता है, उससे दूर हट जाएं।

लेकिन जो आकर्षित करता है, वह गौण है; जो आकर्षित होता है, वही प्रमुख है। इसलिए जो आकर्षण के विषय से भाग जाएगा, वह विषय से तो भाग जाएगा--वह गौण बात थी, निमित्त मात्र था--लेकिन जो आकर्षित हो रहा था, उससे कैसे भागेगा? वह तो उसके साथ ही चला जाएगा।

धन मुझे खींचता हो, धन मुझे दिखाई पड़ता हो और मेरे प्राण उस धन को उपलब्ध करने के लिए आतुर होते हों, तो धन से भाग जाना बहुत कठिन नहीं है। भागने के लिए बहुत बहादुरी की भी जरूरत नहीं है। अक्सर तो कायर ही भागने में बहुत कुशल होते हैं। भागा जा सकता है। लेकिन भागकर भी, वह जो मेरे भीतर प्राण आतुर होते थे धन को पाने के लिए, वे मेरे साथ ही चले जाएंगे।

इस जगत में स्वयं से भागने का कोई भी उपाय नहीं है। हम सबसे भाग सकते हैं, अपने को छोड़कर। हम सारे संसार को छोड़ सकते हैं, लेकिन अपने को नहीं छोड़ सकते हैं। वह हमारे साथ ही होगा--जंगल में, पहाड़ में, कंदरा में, हिमालय पर। मैं कहीं भी चला जाऊं, मैं तो अपने साथ ही रहूंगा। हां, विषयों से भाग सकता हूं, लेकिन वृत्तियां? वृत्तियां मेरे भीतर ही रहेंगी।

और एक धोखा भी हो सकता है। जब विषय नहीं होते, तो वृत्तियों को गतिमान होने का मौका नहीं मिलता। तो मैं इस भ्रांति में भी पड़ सकता हूं कि चूंकि अब मेरी वृत्ति गतिमान होती नहीं मालूम पड़ती, इसलिए समाप्त हो गई है। लेकिन इस भ्रांति में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। जैसे ही विषय फिर दिखाई पड़ेगा, वृत्ति पुनः सक्रिय हो जाएगी।

यह वृत्ति का निष्क्रिय हो जाना वैसे ही है, जैसे बारूद रखी हो और अंगारा पड़े और विस्फोट हो जाए। लेकिन अंगारा न पड़े बरसों तक, तो बारूद भी सोच सकती है कि अब मैं बहुत शांत हो गई हूं। क्योंकि अब कोई विस्फोट नहीं होता। और बारूद अगर यह सोचे कि यह अंगारे के कारण विस्फोट होता है, इसलिए मैं अंगारे से बचती रहूं तो शांत बनी रहूंगी, तो भी भ्रांति है। क्योंकि अंगारा विस्फोट नहीं करता; अंगारा केवल विस्फोट के लिए निमित्त बनता है। विस्फोट तो बारूद में ही होता है।

वह हमारे भीतर वृत्तियों की बारूद मौजूद रहे, तो हम अंगारों से कितने ही भागते रहें, कोई बचाव नहीं है। और जन्मों-जन्मों में वापस पुनः-पुनः वृत्तियां हमें उपलब्ध हो जाएंगी।

जब कृष्ण कहते हैं कि सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर, तो पहली बात ठीक से समझ लें, इस तरह के निरोध के लिए कृष्ण नहीं कहते हैं। कृष्ण का जीवन भी नहीं कहता कि इस तरह का निरोध उन्होंने किया होगा। फिर भी कृष्ण के साथ भी भूल हो जाती है।

बुद्ध के वक्तव्य में कोई खोज सकता है यह अर्थ, क्योंकि वे छोड़कर गए हैं। महावीर के व्यक्तित्व में खोज सकता है कोई यह अर्थ, क्योंकि वे भी छोड़कर गए हैं। लेकिन कृष्ण के साथ तक भ्रांति होती है और गलत अर्थ होते हैं। जब कि कृष्ण कुछ भी छोड़कर नहीं गए। निश्चित ही, कृष्ण का यह अर्थ नहीं हो सकता कि आब्जेक्ट से, विषयों से भाग जाओ। उनका अर्थ दूसरा है। वह दूसरा अर्थ बहुत भिन्न है और बहुत क्रांतिकारी है।

एक तो उपाय है कि मैं विषय से भाग जाऊं, अंगार से भाग जाऊं, बारूद को बचाए हुए। दूसरा उपाय है कि बारूद को छोड़ दूं और अंगारों से खेलता रहूं। कृष्ण तो अंगारों से खेलने के लिए संदेश दे रहे हैं अर्जुन को। वे कहते हैं, युद्ध कर, भाग मत।

और ध्यान रहे, जो युद्ध बाहर है, वह तो बहुत छोटा है। एक और अंतर्युद्ध है भीतर, जो सतत चल रहा है चेतना का विषयों के साथ, कि विषयों के प्रति आकर्षित हों या न हों। कृष्ण उस युद्ध से भी भागने की सलाह नहीं दे सकते। भागना उनकी भाषा नहीं है। एस्केपिज्म, पलायन उनके सोचने का ढंग नहीं है। कृष्ण का ढंग तो सोचने का है, युद्ध की सघनता में खड़े होकर जीवन के रूपांतरण का।

कृष्ण का अर्थ दूसरा ही हो सकता है। वह यह है, विषयों से भागने की कोई भी जरूरत नहीं। और भागकर भी कोई भाग नहीं सकता। और जहां भी हम जाएंगे, वहीं विषय मौजूद हो जाएंगे। संसार जहां भी है, वहां विषय उपलब्ध हैं। वृत्ति को विसर्जित करना ही इंद्रियों का संयम है। और वृत्ति विसर्जित हो, तो इंद्रियां अपने आप अवरुद्ध हो जाती हैं। क्योंकि वृत्ति के ऊपर ही चढ़कर चेतना इंद्रियों के द्वार से निकलती है। वृत्ति के घोड़ों पर बैठकर ही चेतना इंद्रियों के बाहर निकलती है और अनंत की बाह्य यात्रा पर भटकती है। वृत्ति के घोड़े ही अगर क्षीण हो जाएं, तो फिर इंद्रियां भागती नहीं, अवरुद्ध हो जाती हैं; उनके द्वार बंद हो जाते हैं।

ठीक समझें, तो इंद्रियों के द्वार बहुत आटोमैटिक हैं, बहुत स्वचालित हैं। जब तक चेतना भीतर से धक्का देती है उन्हें बाहर की तरफ, तभी तक वे खुले रहते हैं। और जब भीतर की चेतना धक्का नहीं देती बाहर की तरफ, वे द्वार अपने से बंद हो जाते हैं।

ऐसा समझें, आंख प्रतीक है, आंख से समझें तो सारी इंद्रियों का खयाल आ जाए। और आंख सूक्ष्मतम और सबसे ज्यादा नाजुक, डेलिकेट, बारीक इंद्रिय है। और जो आंख पर होता है, वही सब इंद्रियों पर होता है।

जब तक आपके भीतर चेतना जागना चाहती है, तब तक पलकें खुली रहती हैं। और जब चेतना सोना चाहती है, पलकें झप जाती हैं और बंद हो जाती हैं। चेतना का धक्का ही पलकों को खोले रखता है। इसलिए कितनी ही गहरी नींद आ रही हो, आपको लगता हो कि अब क्षणभर नहीं जाग सकूंगा, उसी वक्त कोई खबर दे कि घर में आग लग गई है, नींद नदारद हो जाती है। नींद का पता ही नहीं चलता; आप रातभर जाग सकते हैं। क्या हो गया? चेतना ने वापस जागने का निर्णय लिया; पलकें खुल गईं।

करीब-करीब सभी इंद्रियां इसी तरह हैं। आंख पर तो पलकें हैं, कान पर तो कोई पर्दे नहीं हैं बंद करने के। लेकिन विद्यार्थी कक्षा में बैठा है और बाहर एक पक्षी गीत गा रहा है। पक्षी का गीत सुनाई पड़ने लगता है, शिक्षक की आवाज बंद हो जाती है। शिक्षक ज्यादा करीब है, ज्यादा जोर से बोल रहा है। पक्षी बहुत दूर है, किसी अमराई में छिपा होगा; बहुत धीमी सी गूंजती उसकी आवाज आती है। लेकिन उस विद्यार्थी को आवाज सुनाई पड़ने लगी पक्षी की, शिक्षक का बोलना खो गया। बात क्या हो गई?

चेतना जिस तरफ उन्मुख होती है, उस तरफ द्वार खुल जाते हैं; और जिस तरफ उन्मुख नहीं होती है, उस तरफ द्वार बंद हो जाते हैं।

काम के भी सूक्ष्म द्वार हैं, जो बंद होते और खुलते हैं। चित्त में कामवासना भर जाती है, तो कामवासना का द्वार खुल जाता है। चेतना धक्के देती है, तो कामवासना का जो केंद्र है, उसका द्वार खुल जाता है और काम ऊर्जा बाहर प्रवाहित होने लगती है। चेतना धक्के नहीं देती, तो काम ऊर्जा का द्वार बंद है। और कोई उपाय नहीं है कि वह बाहर प्रवाहित हो जाए।

हमारे शरीर की सभी इंद्रियों के द्वार स्वचालित हैं। जब चेतना भीतर से धक्का देती है, तो द्वार खुल जाते हैं। और जब चेतना भीतर से धक्का नहीं देती, तो द्वार अपने आप बंद हो जाते हैं।

जब कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों के द्वारों को रोककर, तो वे ऐसा नहीं कहते हैं कि जबरदस्ती अपनी आंखों को बंद करके बैठ जाओ। क्योंकि जो जबरदस्ती अपनी आंखों को बंद करके बैठेगा, जिसके खिलाफ उसने आंखें बंद की हैं, वह बंद आंखों में भी मौजूद हो जाता है। उससे बचा नहीं जा सकता।

जबरदस्ती कान बंद कर लो, कुछ न सुनना हो, तो वह अनसुना भी भीतर गूंजता है, बंद नहीं होता। जबरदस्ती कामवासना को रोक लो, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। काम ऊर्जा स्खलित होती ही चली जाती है।

जबरदस्ती कोई भी उपाय नहीं। क्योंकि जबरदस्ती एक बात की खबर देती है कि भीतर से चेतना बाहर जाना चाहती है और उसी चेतना का एक हिस्सा उसे जबरदस्ती भीतर रोकना चाहता है। तो अगर रोकने वाला हिस्सा सबल हुआ, तो दरवाजे पर थोड़ी देर कशमकश होती रहती है दरवाजे के पीछे, बाहर जाने वाला धक्का देना चाहता है, रोकने वाला खींचता है। अगर सबल हुआ रोकने वाला, तो थोड़ी देर तक यह कशमकश होती है। लेकिन एक बड़े मजे का नियम है कि जो रोकता है, वह थोड़ी देर में कमजोर हो जाता है। जो हिस्सा रोकता है, उसकी ताकत रोकने में व्यय हो जाती है।

इसलिए आदमी आज कसम खाता है ब्रह्मचर्य की और कल पाता है कि मुश्किल है। वह हैरान होता है कि जब कसम खाई थी, तो बिलकुल सुलभ मालूम पड़ती थी, सरल मालूम पड़ती थी बात। कसम खाई ही इसलिए थी। चौबीस घंटे बाद क्या हो जाता है? जिस मन के हिस्से ने कसम खाई थी, वह लड़ने में लग जाता है उस मन से, जो जाना चाहता था।

और ध्यान रहे, कसम जब भी कोई खाता है, तो पक्का मान लेना, उसके भीतर दूसरा हिस्सा भी मौजूद होगा। नहीं तो कसम किसके खिलाफ खाई जाएगी? जब मैं कहता हूं कि कसम लेता हूं कि अब झूठ नहीं बोलूंगा, वह मैं किसके खिलाफ कसम खा रहा हूं! अपने ही उस मन के हिस्से के खिलाफ, जिसके बाबत मुझे पक्का पता है कि वह मुझे झूठ बोलने को मजबूर कर सकता है।

लेकिन जिस हिस्से से मैं रोकूंगा, वह रोकने में उसकी ताकत व्यय हो जाएगी; और जो हिस्सा रुका है, वह रोज-रोज शक्तिशाली होता चला जाएगा। रुके होने की वजह से शक्ति बढ़ेगी, रोकने की वजह से शक्ति कम होगी । आज नहीं कल, धक्का देकर चेतना फिर इंद्रिय के द्वार को खोल देगी। और जो हम करना चाहते हैं, उसके लिए तर्क खोज लेते हैं।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन मक्का की यात्रा पर गया। वहां उसने कसम ले ली; भाव में आ गया। कसम ले ली कि मछलियां खाना छोड़ देता हूं। कसम लेने का, मछलियां छोड़ने का असली कारण यह नहीं था कि मछलियां छोड़ने से मुल्ला को लगता हो कि कोई बहुत बड़ा स्वर्ग मिल जाएगा। असली कारण यह था कि उसके गुरु ने कहा, कुछ तो छोड़ो! तो मछलियां मुल्ला को बिलकुल पसंद नहीं थीं, इसलिए उसने मछलियां छोड़ दीं।

लेकिन छोड़ने की रात ही मुल्ला हैरान हुआ कि मछलियों का स्वप्न आया। कभी नहीं आया था। और घर लौटते-लौटते तीर्थयात्रा से, बस एक ही बात याद रह गई कि मछलियां छूट गईं। और एक ही बात गूंजने लगी मन में कि बड़ी गलती की। इतनी जल्दी क्या थी? ऐसा बातों में पड़ जाने का प्रयोजन क्या था? और घर आते-आते एक ही वासना मन में सघन हो गई, मछलियां खाने की, जो कि मन में कभी भी न थी।

कई बार ऐसा होता है। अगर किसी चीज में रस पैदा करना हो, तो छोड़ने की कसम खा लें, तो रस पैदा होना शुरू हो जाता है। क्योंकि जिसे हम छोड़ते हैं, उसके प्रति वासना पैदा होती है। पैदा इसलिए होती है कि छोड़ने से लगता है कि अब कभी भी भोग न सकेंगे। अब कभी भी भोग न सकेंगे! तो मन के किसी भी कोने में भोग की जरा-सी भी वृत्ति पड़ी हो, वह कहती है कि यह तो बड़ी गलती कर ली, एक बार तो भोग लेते! अगर भोग सकेंगे, तो वह वृत्ति विश्राम करती है, प्रतीक्षा करती है, कभी भी भोग लेंगे, कभी भी भोग लेंगे।

घर आते ही मुल्ला बेचैन हुआ। पत्नी को भी उसके गुरु ने बता दिया है आकर कि मुल्ला मछलियां छोड़ दिया है, उसे मछलियां मत देना। पत्नी का भी मन हुआ--जैसा कि सभी पत्नियों का होता है--कि पति की परीक्षा ले लें। दूसरे दिन ही उसने मछलियों का शोरबा बना डाला। मुल्ला को बास आने लगी। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया।

आखिर जब खाने पर बैठा, सब चीजें दी गईं, शोरबा नहीं दिया गया। मुल्ला ने कहा कि मछली का शोरबा बना है, ऐसी सुगंध घर में आती है। थोड़ा-सा दो। उसकी पत्नी ने कहा, लेकिन मैंने सुना है कि आप मछलियां छोड़कर आए हैं! मुल्ला ने कहा, मछलियां छोड़ी हैं, मछलियों का शोरबा नहीं।

बात ठीक ही थी। पत्नी झिझकी तो, लेकिन शोरबा छोड़ा ही नहीं था। तो पत्नी ने बर्तन उठाया और मुल्ला की थाली में शोरबा डालने लगी। तो मछलियों के कतरे न चले जाएं, तो उसने हाथ की आड़ लगा दी। मुल्ला ने कहा कि हाथ की आड़ क्यों लगा दी? मछलियां छोड़ी हैं, लेकिन खुद जो आती हों, उन्हें रोकने का कहां नियम लिया है! अपने आप जो आने को उत्सुक हों, उनको आने दो।

फिर आदमी तर्क खोजता है। उसी के लिए तर्क खोजता है, जिसके खिलाफ तर्क खोज लिए थे। नहीं, कोई भी इस भांति जीवन के रूपांतरण को नहीं पाता। और इंद्रियों के द्वार इस तरह कभी बंद नहीं होते। इंद्रियां बल्कि इस तरह और सतेज हो जाती हैं, उनकी जंग भी झड़ जाती है।

कृष्ण का जो अर्थ हो सकता है, जो अर्थ है, जो सदा ही जानने वालों का अर्थ रहा है, वह यह है कि जो वृत्ति भीतर से धक्का देती है, उस वृत्ति का विसर्जन हो।

कैसे हो? छोड़ने से नहीं होता, भोगने से नहीं होता। भोगने से बढ़ता है, पुनरुक्ति से आदत मजबूत होती है। छोड़ने से निषेध का आकर्षण मिलता है, और निषेध से रस जगता है। न भोगने से मिटता, न छोड़ने से मिटता। वह कैसे मिटे वृत्ति का रस? कैसे इंद्रिय...वह संयम कैसे उपलब्ध हो?

उस संयम का एक ही उपाय रहा है सदा से, और वह है, जब भी कोई विषय आकर्षित करे, तो ध्यान विषय पर न रखकर वृत्ति पर रखना। जब भी कोई विषय आकर्षित करे! राह से गुजर रहे हैं आप, एक सुंदर चेहरा दिखाई पड़ता है, एक सुंदर देह दिखाई पड़ती है, स्त्री की, पुरुष की। दौड़ता है मन। उस समय आपका ध्यान उस शरीर पर होता है, जो आपको आकर्षित कर रहा है। उस वृत्ति पर नहीं होता, जो दौड़ी जा रही है। और उस चेतना पर भी नहीं होता, जो आकर्षित हो रही है।

और जहां ध्यान होता है, चेतना उसी तरफ दौड़ती है, यह नियम है। जहां ध्यान होता है, चेतना उसी तरफ दौड़ती है। जहां ध्यान, वहीं चेतना के लिए निशाना बन जाता है, और चेतना का तीर उसी तरफ चलने लगता है।

ध्यान को, जब कोई सुंदर व्यक्ति दिखाई पड़े, तो ध्यान को सुंदर व्यक्ति पर मत केंद्रित करें, तत्काल अपने पर केंद्रित करें; और देखें कि मैं सौंदर्य से आकर्षित हुआ हूं और मेरी चेतना वृत्ति बनकर सौंदर्य की तरफ बह रही है। लड़ने की जरूरत नहीं है, गाली देने की जरूरत नहीं है, कि यह पाप है सौंदर्य को देखना। बिलकुल पाप नहीं है।

सौंदर्य की प्रतीति में जरा भी पाप नहीं है। सौंदर्य के अनुभव में जरा भी पाप नहीं है। सुंदर को जानकर अगर आदमी की चेतना स्वयं में थिर हो, तो परमात्मा का ही स्मरण होगा, पाप का कोई स्मरण नहीं हो सकता है। कोई कंडेमनेशन, कोई निषेध, कोई निंदा नहीं। सिर्फ इतना कि मैं उसे जानूं जो आकर्षित हुआ है, क्योंकि वही मैं हूं। और मैं उसे जानूं जो चेतना आकर्षित होकर बह रही है।

और जैसे ही आप अपने ध्यान को स्वयं पर और अपनी बहती हुई चेतना पर ले जाएंगे, आप अचानक पाएंगे कि इंद्रिय का द्वार बंद हो गया है। क्योंकि ध्यान भीतर जाए, तो चेतना भीतर की तरफ प्रवाहित होने लगती है, बाहर की तरफ नहीं। जहां ध्यान, वहां चेतना बहती है। जैसे जहां गड्ढा, वहां पानी बहता है। गड्ढा खोद दें और पानी बह जाएगा।

अब कुछ पागल हैं जो पानी को रोकने की कोशिश करते हैं। पानी को रोकने से कुछ न होगा। कितना ही रोकिए, पानी गड्ढे की तरफ ही बहेगा। और अगर बांध बनाया, तो जो झरना था, वह महासागर हो जाएगा। और आज नहीं कल, अगर झरने को ही बहने देते तो बहुत खतरे होने वाले नहीं थे, लेकिन किसी दिन यह झरना जब बांध बनकर महासागर बन जाएगा और बांध को तोड़कर बहेगा, तो महाविनाश होगा।

चित्त के साथ यही हो रहा है। इसलिए आप जानकर हैरान होंगे, जो लोग रोज छोटा-मोटा क्रोध कर लेते हैं, वे लोग कभी हत्या नहीं करते। इसलिए अगर आपके घर में कोई ऐसा आदमी हो, जो क्रोधी तो हो, लेकिन क्रोध न करता हो, तो उससे सावधान रहना। क्योंकि वह किसी दिन जब भी करेगा, तो हत्या से कम में निपटारा नहीं है! बांध बन जाएगा। जो आदमी रोज नाराज हो लेता है, वह रोज प्रसन्न भी हो जाता है। इसलिए बच्चे अभी नाराज हो रहे हैं, अभी मुस्कुरा रहे हैं। क्योंकि बांध बिलकुल नहीं है। कोई बांध नहीं है।

हम कितना ही क्रोध कर लेते हों, फिर भी बांध बांधकर चलना ही पड़ता है। दफ्तर में मालिक है, नाराज नहीं हो सकते। समय है, परिस्थिति है, नाराज नहीं हो सकते। रोक लेना पड़ता है। वह बांध बन जाता है। फिर वह बांध टूटता है। और तब जोर से क्रोध निकलता है।

इसलिए हमारा क्रोध अक्सर ही अनजस्टीफाइड होता है। क्योंकि जिस पर निकलता है, अकेला वही उसका कारण नहीं होता और पच्चीस लोगों का क्रोध भी उसमें जुड़ा होता है, जो उन पर नहीं निकल पाया और इस पर निकलता है। इसलिए जिस पर निकलता है, वह सदा सोचता है कि इतनी छोटी-सी बात और इतना क्रोध! जस्टीफाइड नहीं मालूम पड़ता उसे। हमें भी मालूम नहीं पड़ेगा पीछे सोचने पर। इतनी-सी बात थी, इतने क्रोध की क्या जरूरत थी! लेकिन बहुत-सा क्रोध जो इकट्ठा था बांध बांधकर, वह समय की तलाश में था कि जब भी गड्ढा मिल जाएगा, बांध को तोड़ देंगे और मुक्त हो जाएंगे।

छोटे-छोटे पापी बड़े पाप कभी नहीं कर पाते। और बड़े पापी अक्सर वे ही लोग होते हैं, जो छोटे-छोटे पाप करने से अपने को बचाते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि छोटे-छोटे पाप करने के अभ्यास से कोई बड़ा पापी होता है, खयाल रखना। छोटे-छोटे पाप करने वाला कभी बड़ा पापी नहीं हो पाता। बड़ा पापी होने की आकांक्षा हो, तो छोटे-छोटे पाप करना बंद कर दें। फिर एक दिन अपने आप विस्फोट हो जाएगा। और बड़ा पाप घटित हो जाएगा।

चेतना भी ध्यान की तरफ इसी तरह बहती है, जैसे गड्ढे की तरफ पानी बहता है। एक नेचुरल, एक निसर्ग का नियम है कि चेतना ध्यान की तरफ बहती है। जहां ध्यान, वहीं चेतना का तीर सरकने लगता है। अगर आप, कोई गाली दे, उस वक्त गाली देने वाले पर ध्यान न रखें, गाली सुनने वाले पर ध्यान रखें। आप अचानक पाएंगे, इंद्रिय का द्वार बंद हो गया और चेतना वापस भीतर लौट गई। जब कोई आपको चांटा मारे, तो चांटा मारने वाले के हाथ पर ध्यान न रखें। चांटा जिसे मारा गया है, उस पर ध्यान रखें। और आप अचानक पाएंगे कि वह आदमी भी खो गया, जिसने चांटा मारा था, वह बाहर जाता क्रोध भी विलीन हो गया। और चेतना अपने भीतर लौट गई।

और एक बार अगर आपको यह अनुभव हो जाए कि जो ऊर्जा, जो शक्ति क्रोध बनकर बाहर जा रही थी, वह बाहर नहीं गई, बल्कि लौटकर भीतर आ गई, तो आप हैरान हो जाएंगे। बाहर जाती हुई क्रोध की ऊर्जा पीड़ा में ले जाती है, वही ऊर्जा जब भीतर की तरफ लौटती है, तो क्वालिटेटिवली बदल जाती है, उसका गुणधर्म बदल जाता है; वही क्षमा बन जाती है।

और जिसने क्षमा जानी, उसके आनंद का कोई हिसाब नहीं। और जिसने क्रोध जाना, उसके पश्चात्ताप का कोई अंत नहीं।

अगर कामवासना मन को पकड़ती हो और बाहर न जाकर वापस भीतर लौट आए ध्यान के साथ, तो वही ब्रह्मचर्य बन जाती है। और जिसने कामवासना जानी, उसने फ्रस्ट्रेशन के अतिरिक्त, विषाद के अतिरिक्त कभी कुछ नहीं जाना। और जिसने कामवासना का अपने पर लौटाना जाना, उसने वह जाना है जिसे ज्ञानी ब्रह्मचर्य कहते रहे हैं। अपूर्व है उसकी शांति, अपूर्व है उसकी शक्ति, अपूर्व है उसका आनंद। उसके आनंद को मापने का कोई उपाय नहीं है।

लेकिन लौटती हुई ऊर्जा में गुणात्मक अंतर होता है। ऊर्जा की दिशा सब कुछ है। क्योंकि जब ऊर्जा मुझ से बाहर जाती है, तो मुझे गरीब कर जाती है। मेरी ही ऊर्जा जब मुझ से बाहर जाती है, माई ओन एनर्जी, जब भी बाहर जाती है, तो मुझे दरिद्र कर जाती है। मैं दीन हो जाता हूं। वह चुक जाती है, और मैं उतना गरीब हो जाता हूं। जब मेरी ऊर्जा इंद्रियों के द्वार के पास आकर, वापस लौटकर वर्तुल बना लेती है, सर्किल पूरा कर लेती है, मुझ पर वापस लौट आती है, तो मैं अनंत गुना धनी हो जाता हूं। और जो अपनी ही ऊर्जा का वर्तुल बना लेता है, वही व्यक्ति संयम को उपलब्ध होता है।

संयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का बन गया वर्तुल। खुद की ऊर्जा एक वर्तुल में घूमने लगी, एक सर्किल में। अब बाहर जाने का कोई उपाय न रहा। अब ऊर्जा कहीं भी डिसीपेट, कहीं भी बिखर नहीं सकती। अब ऊर्जा जितनी भी बढ़ती जाएगी, भीतर होती जाएगी। और जैसे-जैसे यह वर्तुल बनता है, वैसे-वैसे ऊर्जा ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। और धीरे-धीरे जैसे हम मंदिर के ऊपर शिखर बनाते हैं–वे इसी के प्रतीक में बनाए गए शिखर हैं। छोटा होता जाता है मंदिर का बुर्ज, ऊपर जाकर स्वर्ण-शिखर लग जाता है। छोटा होता जाता है। जैसे-जैसे ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती है, वैसे-वैसे वर्तुल छोटा होता जाता है, सघन होता जाता है, कंडेंस्ड होता जाता है। और एक क्षण आता है, जब ऊर्जा स्वर्ण-शिखर बन जाती है। फिर ऊर्जा ऊपर की तरफ ऊर्ध्वगति को उपलब्ध होती है।

संयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का बनाया गया वर्तुल। असंयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का टूटा हुआ वर्तुल। उस टूटी जगह से ही लीकेज है। जहां वर्तुल टूटता है, वहीं से लीकेज है, वहीं से शक्ति बिखर जाती है और खो जाती है। जैसे शार्ट सर्किट हो जाए बिजली का, वहां से ऊर्जा बिखरने लगती है। और हमारी सारी इंद्रियों के द्वार से हम सिर्फ ऊर्जा को बिखेरते हैं, खोते हैं।

कृष्ण जैसे व्यक्ति के लिए संयम का अर्थ है, इस ऊर्जा का स्वयं में ही रमण करना, स्वयं में ही थिर हो जाना।

तो इस सीक्रेट को, इस राज को, इस गुर को समझ लें। जब भी कोई विषय आकर्षित करे, तब ध्यान विषय पर न दें, तत्काल स्वयं पर दें और स्वयं की चेतना पर दें। उसी क्षण एक क्रांति मालूम पड़ेगी। भीतर कोई चीज जा रही थी बाहर; लौट पड़ी; टर्न अबाउट; बिना कुछ किए। अपने भीतर अनुभव होगा, कोई शक्ति बाहर जाती थी, वापस लौट गई। और वापस लौटकर जब वह स्वयं पर आती है, तो अपूर्व-अपूर्व साक्षात्कार होता है अपनी ही ऊर्जा का।

इस संयम को जो उपलब्ध है; और भाव को, मन को जिसने हृदय में स्थिर कर लिया है। और ऐसी ऊर्जा होगी, तो भाव अपने आप हृदय में स्थिर हो जाता है। और प्राण जिसका मस्तिष्क में ठहर गया है।

इन दो बातों को ठीक से समझ लें।

भाव का अर्थ है, फीलिंग, संवेदना। वह जो हमारे भीतर अनुभव करने की क्षमता है, वह। वह हृदय-क्षेत्र में स्थिर हो जाती है, जब कोई संयम को उपलब्ध होता है। क्यों ऐसा होता है?

हमारे शरीर के भीतर प्रत्येक अनुभूति, प्रत्येक अनुभव के लिए अलग-अलग केंद्र हैं, सेंटर्स हैं, चक्र हैं। और जब भी किसी चक्र की ऊर्जा किन्हीं दूसरे चक्रों में प्रवेश कर जाती है, तो हम करीब-करीब पागल की तरह जीते हैं। और अभी हमारी हालत ऐसी ही है। और अभी हमारी हालत ऐसी ही है।

जैसे एक आदमी मुंह से भोजन करे, समझ में आता है। दांतों से चबाएं; गले से गटके; पेट से पचाए–समझ में आता है। लेकिन वह आदमी बैठकर केवल खाने का विचार करे, तो खाने का जो भी यंत्र है, वह बिलकुल उपयोग में नहीं आएगा; और मस्तिष्क, जहां से खाना खाया नहीं जा सकता, वह खाने के काम में लग जाएगा। तो भोजन करना सेरिब्रल हो जाएगा, मस्तिष्कीय हो जाएगा। मस्तिष्क भोजन कर नहीं सकता, लेकिन भोजन करने के भ्रम में पड़ सकता है। और भ्रम अगर भारी हो जाए, तो व्यक्तित्व का सब विखंडित हो जाता है। और ऐसे भ्रम में हम जीते हैं।

कामवासना का केंद्र है। लेकिन लोग मस्तिष्क में कामवासना को धीरे-धीरे, सोच-सोचकर, सोच-सोचकर, कामवासना के केंद्र से हटाकर मस्तिष्क में प्रवेश कर देते हैं। तो मनोचिकित्सकों के पास ऐसे लोग आते हैं, जो कहते हैं, स्वप्न में तो मैं बहुत पोटेंट मालूम पड़ता हूं, बहुत वीर्यवान मालूम पड़ता हूं। जब विचार करता हूं, तो इतनी काम ऊर्जा मालूम होती है! लेकिन जब स्त्री के निकट पहुंचता हूं, तो एकदम इंपोटेंट, निर्वीर्य हो जाता हूं। वह रोज घटता है। उसके घटने का कारण है। क्योंकि उनकी पूरी की पूरी सेक्स सेंटर की जो संभावना थी, वह हटकर मस्तिष्क में केंद्रित हो गई है। तो जब वे सोचते हैं, तब वे बड़े शक्तिशाली मालूम पड़ते हैं। लेकिन जब शक्ति को प्रकट करने का अवसर हो, तब वे एक दम शक्तिहीन हो जाते हैं।

हमारे सारे चक्रों के जो-जो विभाजन हैं, वे सबके सब कनफ्यूज्ड हैं, एक-दूसरे में प्रवेश कर गए हैं। कोई किसी की सुनता नहीं मालूम पड़ता। और कोई चक्र किसी का काम करता है, कोई चक्र किसी का काम करता है। सब उधार हो गया है। तो हम मस्तिष्क से भावना तक करने पर उतर जाते हैं। मस्तिष्क भावना नहीं कर सकता है। हृदय विचार नहीं कर सकता है।

जो जिस चक्र का काम है, अगर उस पर ही पहुंच जाए, तो व्यक्तित्व एकदम संतुलित हो जाता है। और जब ऊर्जा संयम को उपलब्ध होती है, तो प्रत्येक चक्र सिर्फ अपने ही काम को करता है।

अभी पश्चिम में एक बहुत बड़ा साधक, महायोगी था, जार्ज गुरजिएफ। तो वह कहता था, अगर तुम इतना ही कर लो कि तुम्हारा प्रत्येक चक्र शुद्ध हो जाए, कि कामवासना का चक्र केवल कामवासना का ही काम करे, तो भी तुम महाजीवन को उपलब्ध हो जाओगे।

लेकिन हमारे भीतर सब कनफ्यूज्ड है। हमारी हालत ऐसी है, जैसी किसी एक ऐसी मिलिटरी की टुकड़ी की, जिसमें पहरेदार सेनापति बनकर बैठ गया हो; जिसमें सेनापति पहरेदार के पैरों के पास बैठा हो; जिसमें जिनको आज्ञा देनी चाहिए, वे आज्ञा ले रहे हों; जिनको आज्ञा लेनी चाहिए, वे आज्ञा दे रहे हों; और किसी को पता न हो कि कौन कौन है। सब विक्षिप्त हो जाए। ऐसी हमारे चित्त की, चेतना की, हमारे व्यक्तित्व की दशा है।

कृष्ण कहते हैं, जब कोई संयम को उपलब्ध हो और भाव हृदय-देश में स्थित हो जाए, मन हृदय-देश में ठहर जाए और प्राण मस्तक में...।

ये दो बातें हैं। भाव, अनुभव करने की जो प्रतीति है; क्या कभी आपने खयाल किया है कि आप अनुभव कहां से करते हैं? आकाश में पूर्णिमा का चांद है, आप उसके नीचे खड़े हैं। आंख उठाकर आकाश को देखते हैं, तो क्या आपका मस्तिष्क कहता है कि बहुत सुंदर या आपके हृदय के पास कोई स्फुरणा होती है? यह आपको जांचना पड़े।

और आप हमेशा पाएंगे, सौ में निन्यानबे मौके पर, कि यह मस्तिष्क ही है, जो कह रहा है, बहुत सुंदर। और यह भी इसलिए नहीं कह रहा है कि इसे बहुत सुंदर का अनुभव हो रहा है। यह सिर्फ इसलिए कह रहा है कि इसने बार-बार पूर्णिमा के दिन लोगों को कहते सुना है कि बहुत सुंदर। किताबों में पढ़ा है, कविताओं में पढ़ा है, फिल्मों में देखा है, नाटकों में सुना है–बहुत सुंदर। यह भी दोहरा रहा है। यह ग्रामोफोन रिकार्ड की तरह इसके मस्तिष्क में भर गया है। इसको दोहरा रहा है। अगर इसे अनुभव हो, तो मस्तिष्क में नहीं होगा, हृदय में होगा। और जब अनुभव होगा, तो शायद आदमी शब्द भी न देना चाहे।

सुना है मैंने, लाओत्से के साथ एक मित्र रोज घूमने जाता था सुबह। मित्र का एक अतिथि भी साथ आ गया और दोनों लाओत्से के साथ घूमने गए। मित्र तो जानता है लाओत्से को कि वह चुप ही रहना पसंद करता है, वर्षों में कभी बोलता है। लेकिन परदेशी अतिथि को कुछ पता नहीं है। दोनों को चुप देखकर वह भी काफी चुप रहा। फिर एक भूल हो गई।

सुबह जब सूरज निकला और वृक्षों के ऊपर उठने लगा, और पक्षी गीत गाने लगे, और फूल खिल गए, और सुगंध भर गई उस वन-पथ पर, तो उसने कहा, कितनी सुंदर सुबह है! किसी ने उत्तर न दिया। लाओत्से ने जरूर गौर से उसे देखा, फिर चल पड़ा। मित्र थोड़ा घबड़ाया; उसने जरा संकोच से अपने अतिथि की तरफ देखा; वह भी चल पड़ा। वह अतिथि थोड़ा हैरान हुआ कि किसी ने इतना भी न कहा कि हां, ठीक कहते हो, बड़ी सुंदर सुबह है!

लौटकर लाओत्से ने अपने मित्र को कहा, कल से इस आदमी को मत लाना; बहुत बातूनी मालूम पड़ता है। दो घंटे में उसने इतना ही कहा था, बड़ी सुंदर सुबह है। उसके मित्र ने, लाओत्से के मित्र ने कहा, ज्यादा बातूनी तो नहीं है ऐसा। एक ही बात कही है।

लाओत्से ने कहा, लेकिन अगर उसे सुबह सुंदर लगी थी, तो कहने का खयाल भी न आता। अगर सुबह सुंदर लगी थी, तो वह लीन हो गया होता। वह भूल ही गया होता कि सुबह है। वह खो गया होता। उसे कुछ लगा-वगा नहीं है। सिर्फ आदत, आदतन, सुबह सुंदर है! और फिर हमको भी तो पता था, हम भी वहीं मौजूद थे। उसने कहकर सिर्फ सौंदर्य को बाधा पहुंचाई। उस सन्नाटे में, जहां पक्षियों के गीत थे, और जहां सूरज की किरणें थीं, और सुबह की सुगंधित हवाएं थीं, उसकी यह बात बड़ी कुरूप थी, और बेमानी थी, और सन्नाटे को तोड़ती थी, उस मौन को खंडित करती थी, कि सुबह बहुत सुंदर है। यह वक्तव्य बड़ा असुंदर था, अग्ली स्टेटमेंट था।

निश्चित ही, जब आपको कोई चीज सुंदर मालूम पड़ेगी, बुद्धि ठहर जाएगी, हृदय अनुभव करेगा। हो सकता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाए। हो सकता है, रक्तचाप तेजी से हो जाए। हो सकता है, रोएं खड़े हो जाएं। लेकिन यह प्रतीति हृदय की होगी; यह बुद्धि की नहीं होगी।

लेकिन हमने हृदय से कुछ भी अनुभव करना बंद कर दिया है। हम सब बुद्धि से ही अनुभव किए जा रहे हैं। और बुद्धि अनुभव करने में असमर्थ है। वह उसका काम नहीं है।

संयमी व्यक्ति का भाव हृदय में स्थापित हो जाता है। कैसे होगा स्थापित? या तो संयम को उपलब्ध हों, तो हो जाए; या अगर भाव को भी हृदय में स्थापित कर लें, तो भी संयम का मार्ग सुगम हो जाएगा।

तो जब भी अनुभव करें, खयाल रखकर करें कि हृदय से अनुभव कर रहे हैं। जब किसी से कहें कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तो यह पहले मत कहें; पहले हृदय के पास किसी सनसनी को दौड़ जाने दें, कोई लहर। और जब लहर हृदय को पकड़ ले, तभी अगर जरूरी लगे, तो कहें। और अगर दूसरा बिना कहे समझ सकता हो, तो चुप ही रहें; उसे समझने का मौका दें।

अक्सर हम शब्दों से बताते नहीं, छिपाते हैं। अक्सर जब प्रेम चुक जाता है, तब हम कहते हैं कि मैं बहुत प्रेम करता हूं। यह केवल सब्स्टीटयूट है। जब प्रेम होता है, तो उसे कहने की जरूरत नहीं होती। आंखें कह देती हैं। पलकें कह देती हैं। चेहरे का भाव कह देता है। हाथ का इशारा कह देता है। उठना-बैठना कह देता है। प्रेमी के पास आकर बैठना कह देता है कि मैं प्रेम करता हूं।

लेकिन जब यह सब चुक जाता है, तब सिर्फ शब्द रह जाते हैं, कोरे और खाली, चले हुए कारतूस जैसे, जिनके भीतर कोई बारूद-वारूद नहीं है। तब हम कहते हैं, मैं बहुत प्रेम करता हूं! यह सिर्फ समझाना है। सिर्फ समझाना है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही है कि जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी, तब भी तुम मुल्ला मुझे प्रेम करोगे या नहीं? मुल्ला ने कहा, बिलकुल करूंगा। जरूर करूंगा। तेरे पैरों की धूल सिर पर रखूंगा। फिर एकदम से कहा कि तू अपनी मां जैसी तो नहीं हो जाएगी? इतना ही खयाल रखना, अपनी मां जैसी मत हो जाना!

यह जब उसकी पत्नी पूछ रही है, तब वह बहुत बीमार पड़ी थी। वह सिर्फ खोज रही है। फिर वह पूछती है उससे कि मुल्ला, अगर मैं मर जाऊं, तो सच-सच कहो, दूसरा विवाह तो नहीं करोगे! मुल्ला ने कहा, ऐसी बातें नहीं पूछा करते। तेरी तबीयत ठीक नहीं है। ऐसी बातें नहीं पूछा करते। पर पत्नी पीछे पड़ गई, तो मुल्ला ने कहा, बड़ी मुश्किल है। अगर मैं कहूं कि करूंगा, तो कहना जंचेगा नहीं; और अगर कहूं कि नहीं करूंगा, तो वह सच न होगा।

कहते हैं कि मुल्ला किसी स्त्री को प्रेम का निवेदन किया था। और उसकी उस प्रेयसी ने पूछा था कि मुल्ला, तुम ऐसे-ऐसे पत्र लिखते हो कि मैं मर जाऊंगा अगर तू मुझे न मिली; क्या सच ही तुम मर जाओगे अगर मैं तुम्हें न मिली? मुल्ला ने कहा, दिस हैज बीन माई यूजुअल हैबिट। यह तो मैं सदा करता रहा हूं। यह सदा की मेरी आदत है। जब भी किसी से मैंने प्रेम किया और अगर वह मुझे न मिला, तो मैं फौरन मर गया!

उस स्त्री ने प्रेम नहीं किया मुल्ला से, विवाह भी नहीं किया। और कहते हैं, मुल्ला ने अपना वचन निभाया, यद्यपि सत्तर साल बाद! मर गया सत्तर साल बाद! लिख गया अपनी वसीयत में कि कोई यह न समझे कि मैं झूठा हूं। मैंने वचन दिया था अपनी प्रेयसी को कि अगर तूने मुझसे विवाह न किया, तो मैं मर जाऊंगा, और अब मैं मर रहा हूं। सत्तर साल बाद!

हमारा सारा प्रेम, प्रेम के दावे, मर जाने के वचन, आश्वासन, कहीं भी हृदय से आते नहीं मालूम पड़ते। सिर्फ बुद्धि का हिसाब-किताब है। और जितना कम होता है हृदय, बुद्धि से हमें उतना ज्यादा सब्स्टीटयूट, परिपूरण करना पड़ता है।

तो जितना कम प्रेमी, उतना ज्यादा गुहार मचाए रखता है कि मैं प्रेम करता हूं, मैं प्रेम करता हूं, मैं प्रेम करता हूं। सच में जो प्रेमी है, चुप होना भी काफी है। और अगर चुप्पी न कह सके प्रेम को, तो शब्द कभी भी न कह पाएंगे। भाव जब होता है, तो रोआं-रोआं कहता है; उपस्थिति कहती है।

तो जब आप किसी के प्रेम में हों, तो भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं। जब आप प्रार्थना में हों, तो भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं। जब आप सौंदर्य को देख रहे हों--सूरज निकला है, फूल खिल गया है; कोई आंखें हैं, सुंदर हैं--तब भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं।

भाव इतना ही कहेगा, आंखें सुंदर हैं। बुद्धि कहेगी, इन आंखों को घर में कैद करने का कोई उपाय है या नहीं! भाव इतना ही कहेगा, प्यारा है फूल; अनुभव करेगा। बुद्धि कहेगी, तोड़ो। क्योंकि बुद्धि जहां भी प्यारा कुछ लगे, उसको तोड़ना चाहती है। बुद्धि बहुत हिंसात्मक है।

अगर सच में ही किसी ने फूल को प्रेम किया है, तो मुश्किल है सोच पाना कि उसे तोड़ेगा कैसे? लेकिन आप जब भी फूल को प्रेम करते हैं, तो जो पहला काम आप करते हैं, वह फूल को तोड़ने का है। अजीब प्रेम है! अगर यही प्रेम है, तो हत्या करना किसे कहते हैं?

जब भी फूल प्यारा लगता है, तो पहला काम कि तोड़ो झटके से; उसके जीवन को नष्ट करो। उसका जो जीवंत रूप था, हटाओ। और एक मुर्दे फूल को खीसे में लगाकर घूमो। शायद फूल से आपको बिलकुल प्रेम नहीं है। शायद इस फूल को भी आप अपने अहंकार की शोभा और आभूषण बनाना चाहते हैं।

अगर कोई स्त्री मुझे सुंदर लगे, तो कैसे जल्दी इसे अपने घर में कैद करूं, यह बुद्धि का खयाल है। बुद्धि इसी भाषा में सोचती है। भाव नहीं सोचता। भाव को अगर कोई सुंदर लगता है, तो कारागृह में डालने का कोई सवाल ही नहीं है। अगर भाव को कोई सुंदर लगता है, तो कारागृह में हो भी, तो उसे मुक्त कर देने की कामना पैदा होती है। अगर किसी को फूल सुंदर लगा है और जमीन पर पड़ा है, तो वह उसे उठाकर कहीं पानी में रख देना चाहेगा कि थोड़ी देर और ज्यादा जिंदा रह जाए।

भाव की प्रक्रिया अलग है। भाव आपको कठिनाई में नहीं डालता। लेकिन बुद्धि आपके ऊपर इतनी जोर से कसकर बैठी है कि भाव बोल भी नहीं पाता कि बुद्धि अपने वक्तव्य देने शुरू कर देती है। और भाव कह भी नहीं पाता कि क्या अनुभव हुआ, बुद्धि योजना बनाने लगती है कि क्या करना चाहिए।

नहीं; सौंदर्य का अनुभव बुरा नहीं है, लेकिन सौंदर्य को कैद करने की जो बुद्धि है, वह पाप है। और अगर हम इस पृथ्वी पर किसी दिन भाव से जीना शुरू करें, और किसी के सौंदर्य को अगर आप सड़क पर खड़े होकर देखने लगें, तो वह बुरा अनुभव नहीं करेगा; नहीं करना चाहिए। क्योंकि परमात्मा की इस देन को अगर कोई आनंद से देख रहा है, तो हर्ज कहीं भी, कुछ भी नहीं है। लेकिन अभी वह बुरा अनुभव करता है, क्योंकि सबको पता है कि देखना केवल प्रारंभ है, केवल शुरुआत है एक लंबे नर्क की। इसलिए देखने के नियम हैं।

अगर मैं सरसरी नजर से आपको देखूं, तो कोई एतराज नहीं। अगर जरा समय से ज्यादा रुक जाऊं, तो खतरा शुरू हो जाता है। क्योंकि उतनी देर रुकने का मतलब है, नजर उतनी देर रुकी, उसका मतलब है कि अब मैं किसी कारागृह में डालने की योजना बना रहा हूं, या किसी वासना की तृप्ति पर उतर आया हूं। इसलिए हमारी आंख को भी हमें हिसाब में रखना पड़ता है। किसको कितनी देर देखो, हिसाब रखना पड़ता है।

अगर भाव कह भी रहा हो कि दो क्षण रुक जाओ, शायद ऐसा सौंदर्य फिर दिखाई न पड़े, शायद परमात्मा की ऐसी कुशलता फिर दिखाई न पड़े, तो भी बुद्धि कहेगी कि इतनी ज्यादा देर रुके तो खतरा हो सकता है। दूसरा भी सचेत हो जाता है! दूसरा भी सचेत हो जाता है।

किसी को घूरकर देखिए। घूरकर देखना ही बुरी बात है। घूरकर देखने का मतलब ही बुरा हो जाता है। हम तो कहते ही उस आदमी को लुच्चा हैं, जो घूरकर देखता है। लुच्चा का मतलब सिर्फ होता है, घूरकर देखने वाला। और कुछ मतलब नहीं होता इस शब्द का। लुच्चा, आंख से बना शब्द है, लोचन से। जो आंख गड़ाकर देखता है, वह लुच्चा। वैसे आलोचक का भी यही मतलब होता है। वह भी जरा आंख गड़ाकर चीजों को देखता है, कि आप क्या कह रहे हैं, वह जरा आंख गड़ाकर देखता है--क्रिटिक, आलोचक। आलोचक और लुच्चे में बहुत फर्क नहीं है। लुच्चा जरा गलत जगह लगा देता है, आलोचक जरा ठीक जगह लगा देता है।

आंख को गड़ाकर देखना, बुद्धि आ गई। दूसरी तरफ भी आ गई, इस तरफ भी आ गई; और अड़चन शुरू हो गई।

भाव! एक बच्चा अगर किसी सुंदर स्त्री को खड़ा होकर देखता रहे, तो उसे कुछ बेचैनी न होगी। क्योंकि अभी सिर्फ भाव है। भाव इनोसेंट है; भाव बहुत निर्दोष है, पवित्र है। लेकिन यही बच्चा कल जवान हो जाएगा। और यही घूरकर देखेगा, तो कठिन हो जाएगा। क्यों? अब सिर्फ भाव न रहा। अब बुद्धि योजना बनाने लगेगी और वासना के उपयोग में आने लगेगी।

हैरान होंगे जानकर आप, भाव वासना का जन्मदाता नहीं है। अगर शुद्ध भाव में कोई ठहर सके, तो वासना तिरोहित हो जाती है। वासना का जन्म होता है बुद्धि और वृत्ति के सहयोग से। भाव और वृत्ति के बीच कभी कोई सहयोग नहीं होता। बुद्धि और वृत्ति के बीच सहयोग हो जाता है। और बुद्धि रास्ता बताती है कि यह है मार्ग; जाओ बाहर। खोजो। पाने का उपाय करो। पा लोगे। ये-ये विधियां हैं। ये-ये रीतियां हैं। इस तरह चलोगे, तो सफल हो जाओगे।

और जब भी कोई व्यक्ति बुद्धि की मानकर चलने लगता है, धीरे-धीरे भाव का केंद्र सो जाता है। और जिसका भाव का केंद्र सो गया, वह चलती-फिरती लाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह एक कंप्यूटर हो सकता है कि गणित का हिसाब लगा देता हो, दफ्तर का काम कर देता हो, दुकान चला लेता हो। इंजीनियर हो, कि डाक्टर हो, कि वकील हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह सिर्फ एक कंप्यूटर है। यह जो उसकी खोपड़ी कर रही है, यह तो अब कंप्यूटर बहुत बेहतर ढंग से कर देगा।

कंप्यूटर और आदमी में एक ही फर्क है कि कंप्यूटर अभी तक भाव नहीं कर सकता; बुद्धि का तो सब काम कर देता है। अगर आप भी सिर्फ बुद्धि रह गए हैं, तो आप बहुत जल्दी रिप्लेस कर दिए जाएंगे; आप बहुत जल्दी गैर-जरूरी हो जाएंगे। और किसी कबाड़खाने में आपको उठाकर रख दिया जाएगा। क्योंकि आप महंगे भी हैं, खर्चीले भी हैं, नान-इकोनामिकल भी हैं। कंप्यूटर बेहतर है। वह भोजन करता नहीं या बहुत कम भोजन करता है। थोड़ी-सी बिजली लेता है। टूटता-फूटता नहीं। भूल-चूक कभी नहीं करता। और हजार आदमी जिस काम को कर सकें लाखों घंटों में, वह क्षण में कर देता है। तो आदमी तो आउट आफ डेट है। कंप्यूटर उसकी जगह आ जाएगा ।

आदमी के बचने की एक ही संभावना है कि आदमी अगर अपने भाव के केंद्र को पुनर्जाग्रत कर ले, तो ही कंप्यूटर से जीत सकता है। अन्यथा जीतने का अब कोई उपाय नहीं है।

और ध्यान रहे, आदमी आदमी से लड़ता रहा, यह एक बात थी। अब पहली दफा आदमी मशीन से लड़ेगा। और मशीन से लड़कर आदमी जीतेगा नहीं, क्योंकि मशीन सब कुछ आपसे ज्यादा कुशलता से कर सकती है। सिर्फ एक काम मशीन नहीं कर सकती, वह भाव है।

लेकिन भाव हमारे पास नहीं है। भाव का हमें पता ही नहीं। हृदय में हम सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि वह जो धड़कन होती रहती है। वह भी हम तभी जानते हैं, जब कोई बीमारी, कोई अड़चन आ जाती है। लेकिन वह धड़कन तो सिर्फ फुफ्फुस है। वह धड़कन तो सिर्फ पंपिंग स्टेशन की वजह से है। श्वास को, खून को पंप कर रही है, इसलिए धड़कन है। वह हृदय नहीं है। उस धड़कन के पास एक और धड़कन भी है, जिसको नापा नहीं जा सकता। वह भाव की धड़कन है।

लेकिन भाव को फैलाएं, मौका दें, अवसर दें, और धीरे-धीरे भाव को केंद्रित करें, तो वह संयम में सहयोगी बन जाता है। या संयम हो, तो वह भाव में सहयोगी बन जाता है। साधना के जगत में सब चीजें अन्योन्याश्रित हैं, इंटरडिपेनडेंट हैं। कहीं से भी शुरू करें, दूसरी चीज सहयोगी हो जाती है।

और प्राण को मस्तक में!

प्राण से अर्थ है, जिसे बर्गसन ने एलान वाइटल कहा है, जीवन शक्ति कहा है, भारत उसे सदा से प्राण कहता रहा है। प्राण है हमारे भीतर वह ऊर्जा, जिसके सहारे हम जीते हैं। और जब यह शरीर छूटता है तो शरीर से कुछ भी नहीं जाता, सिर्फ प्राण चला जाता है। लेकिन वह प्राण अगर मस्तक में स्थापित होकर जाए, तो परम गति को उपलब्ध होता है। और अगर मस्तक में स्थापित न हो पाए, तो जिस केंद्र पर स्थापित होता है, उसी गति को उपलब्ध होता है।

परम गति, कृष्ण किसे कहते हैं, वह भी हम समझ लें। परम गति उसे ही कहा है, जिसके आगे फिर कोई गति नहीं। परम गति उसे ही कहा है, जो अंतिम गति है, दि अल्टिमेट है, जिसके आगे कुछ भी नहीं है।

इसलिए मोक्ष ही परम गति है, या ब्रह्म-उपलब्धि ही परम गति है, या निर्वाण ही परम गति है। बाकी सब गतियां परम नहीं हैं। क्योंकि उनके बाद और गतियां होंगी, और गतियां होंगी, और यात्राएं, और यात्राएं। परम यात्रा तो वही है, जिसके आगे फिर कोई मंजिल शेष नहीं रह जाती।

अगर प्राण इकट्ठा हो जाए भृकुटी-मध्य में, तो फिर कोई दूसरी गति में मनुष्य को नहीं जाना पड़ता। और जिस जगह केंद्रित होता है, उस जगह से पता चलता है कि किस गति में आदमी जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति का प्राण शरीर के अलग-अलग बिंदुओं से निकलता है। सभी व्यक्ति एक ही बिंदु से नहीं मरते। जिन व्यक्तियों का प्राण भ्रू-मध्य में इकट्ठा हो जाता है, उनका प्राण सहस्रार से निकलता है। आज्ञा-चक्र में जिनका प्राण स्थापित हो जाता है, तो जैसे ही आज्ञा-चक्र में प्राण का प्रवेश होता है, यह जो अंतिम चक्र है हमारा सहस्रार, दि सेवेंथ, उसे तोड़कर निकल जाता है। इसलिए परम ज्ञानियों की अक्सर खोपड़ी भी टूट जाती है उस जगह से। जरूरी नहीं है कि टूटे ही; अक्सर टूट जाती है।

लेकिन हमने इसीलिए नियम बना रखा है कि जब किसी को, मुर्दे को हम जलाने जाते हैं, तो उसकी कपाल-क्रिया कर देते हैं, खोपड़ी फोड़ देते हैं। वह खुद तो नहीं फोड़ पाए, काफी देर पहले मर गए। अब हम फोड़ रहे हैं! मुर्दे की खोपड़ी फोड़ रहे हैं। उसका कोई मतलब नहीं है। लेकिन सूचक है।

इस मुल्क ने जाने हैं ऐसे लोग, जिनकी मरते वक्त अपने आप खोपड़ी टूट जाती है। वह सूचना है कि वे परम गति को उपलब्ध हो गए। अब हम दीन-हीन, गरीब लोग हैं। मैं मर जाऊं और खोपड़ी अपने से न टूटे, तो एक बेटे को अपने पीछे छोड़ जाता हूं कि तू मेरी खोपड़ी तोड़ देना मरने के बाद! यह वैसे ही है, जैसे मरने के बाद कोई दवा दे, इंजेक्शन लगाए। इस खोपड़ी तोड़ने का कोई भी अर्थ नहीं है। यह बड़ी दीनता की सूचक है। यह खबर दे रही है कि जो होना था, वह नहीं हुआ। अब वे मुर्दे के साथ एक खेल कर रहे हैं।

लेकिन जिन्होंने यह रिवाज जारी किया, उन्हें पता था कि कभी-कभी कोई व्यक्ति उस छिद्र से भी प्राण को छोड़ता है। उस छिद्र से तभी प्राण छूटता है, जब प्राण भ्रू-मध्य में स्थापित होता है, अन्यथा नहीं छूटता।

यही प्राण हमारी जीवन ऊर्जा है, लाइफ एनर्जी है। हम इसी के द्वारा गति करते हैं। अगर भ्रू-मध्य तक वह नहीं पहुंचा, तो फिर कहीं से भी छूटे, हमें दूसरे जन्म को ग्रहण करना पड़ेगा। और जितने नीचे केंद्र से छूटेगा, उतनी नीची गति में हमारी यात्रा होती है। उतने ही निम्न मन और निम्न प्राण को और निम्न देह को लेकर हम फिर जीवन को चलाते हैं।

अक्सर अधिक लोगों का प्राण काम-केंद्र से ही छूटता है। क्योंकि वही हमारा केंद्र है सर्वाधिक सक्रिय। और जब काम-केंद्र से हमारा प्राण छूटता है, तो हम कामवासना से भरे हुए फिर नए जीवन में प्रवेश कर जाते हैं।

कामवासना समस्त वासनाओं का आधार है, मूल है। फिर सब वासनाएं उसके साथ पुनः पैदा हो जाती हैं। और एक बार नहीं अनेक बार मरकर भी हम वही भूल करते हैं कि हम ठीक से नहीं मरते।

ठीक से मरना एक कला है। ठीक से जीना तो एक कला है ही, लेकिन ठीक से मरना भी एक बड़ी कला है। हालांकि जो ठीक से जीते हैं, वही ठीक से मर पाते हैं। इसलिए हम ऐसा कह सकते हैं कि ठीक से जीना, ठीक से मरने की कला का प्राथमिक चरण है। शिखर और सेतु तो ठीक से मरना है! हाउ टु डाइ राइटली? सम्यक मृत्यु कैसे फलित हो?

कृष्ण उसी सम्यक मृत्यु की चर्चा कर रहे हैं। वे कहते हैं, प्राण स्थिर हो जाए भ्रू-मध्य में।

और ध्यान की कोई भी विधि का उपयोग करें, प्राण भ्रू-मध्य में स्थापित होने लगता है। कोई भी ध्यान की प्रक्रिया करें--भजन में लीन हों, कि प्रार्थना में, कि नमाज में, कि मौन बैठें, कि नाम स्मरण करें--कोई भी उपाय करें, जब भी ध्यान फलित होता है, तो प्राण भ्रू-मध्य की तरफ दौड़ने लगते हैं। वही ध्यान की सफलता का सूचक है, लक्षण है, कि अब भ्रू-मध्य की तरफ ध्यान दौड़ना शुरू हो गया, तो ध्यान सफल हो रहा है, स्वीकृत हो रहा है; प्रभु के मार्ग पर स्वीकृत होता जा रहा है।

जो पुरुष ऐसे क्षण में ब्रह्म को उच्चार करता हुआ, मुझे चिंतन करता हुआ, शरीर को त्याग जाता है, वह परम गति को उपलब्ध होता है।

यह बात थोड़ी समझनी पड़ेगी। जो पुरुष ओम, ऐसे अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चार करता हुआ...।

इससे बहुत बड़ी भ्रांति होती है। क्योंकि हम एक ही तरह का उच्चारण जानते हैं, जो हम करते हैं। हमें उस उच्चार का कोई भी पता नहीं, जो होता है, दैट व्हिच हैपेंस।

हम ओम का उच्चार कर सकते हैं, चेष्टा से। लेकिन जो ओम का उच्चार चेष्टा से होगा, वह हृदय तक नहीं जाता। क्योंकि चेष्टा कंठ से नीचे नहीं उतरती। कंठ से जो पैदा होता है, वह कंठ तक रहेगा। होंठ से जो पैदा होता है, वह होंठ तक रहेगा। इसलिए इस तरह के

उच्चार को आहत नाद कहा है। आहत नाद का अर्थ है, जो दो चीजों के टकराने से पैदा होता है। दोनों होंठ टकराते हैं, आवाज पैदा होती है। जीभ तालू से टकराती है, उच्चार होता है। कंठ की मांस-पेशियां सिकुड़ती हैं, टकराती हैं, उच्चार पैदा होता है।

एक तरह की ध्वनि हम जानते हैं, जो आहत नाद है। आहत नाद का अर्थ है, दो चीजों के संघर्षण से पैदा हुआ शब्द, ध्वनि।

कृष्ण जिस उच्चार की बात कर रहे हैं, वह है अनाहत नाद। अनाहत नाद का अर्थ है, बिना दो चीजों के टक्कर के पैदा हुआ नाद।

हम ऐसे किसी नाद को नहीं जानते। लोग कहते हैं, एक हाथ से ताली नहीं बजती। ठीक कहते हैं। ताली बजे भी, तो दूसरा हाथ जरूरी ही होगा। हाथ न हो, तो कोई दूसरी चीज जरूरी होगी। लेकिन दूसरा जरूरी होगा। एक हाथ से ताली बजाइएगा कैसे? बजने के लिए दूसरा चाहिए, संघर्षण चाहिए।

जगत में जितना नाद है, सब आहत नाद है। चाहे वृक्षों से दौड़ती हुई सरसराती हवा, या सागर की लहरों की टक्कर चट्टानों से, कि बांसों के झुरमुट में होती गूंज, कि पक्षियों के गीत, कि आकाश की गड़गड़ाहट, कि आदमी की वाणी, कि सितार पर गूंजता हुआ स्वर, कि पानी की कल-कल, जो कुछ भी है इस जगत में, सब आहत नाद है।

एक नाद और भी है इस जगत में जो अनाहत है, वही ओम, वही ओंकार है। लेकिन वह तब पैदा होता है, जब भीतर सब संघर्ष बंद हो जाता है।

इसे ठीक से समझ लें।

जब तक भीतर किसी तरह का संघर्ष और कांफ्लिक्ट है, तब तक आहत नाद ही होता है। अब एक आदमी बैठकर अगर भीतर कहे, ओम-ओम, तो वह आहत नाद है। वह ओम नहीं है वह, जो अपने से उच्चरित होता है, जो गूंज उठता है प्राणों से और हम केवल साक्षी होते हैं, कर्ता नहीं होते।

कृष्ण कहते हैं, जो पुरुष ओम, ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चार करता हुआ...।

यहां कर्ता की तरह करता हुआ नहीं, यहां समस्त अस्तित्व से ओम का उच्चार होता हुआ, ज्यादा ठीक होगा कहना। यहां सारी प्राण ऊर्जा ओम का उच्चार होती हुई, ओम का उच्चार बनकर जब गतिमान होती है, तो परम गति उपलब्ध होती है।

कभी अगर एक क्षण भी ऐसा अवसर मिल जाए, जब भीतर कोई संघर्षण न हो, परम मौन हो, कोई शब्द न हो, कोई स्वर न हो, तब भीतर ही आंखों और कानों को बंद करके सुनना, क्या गूंजता है भीतर? शीघ्र ही एक अनूठी ध्वनि सुनाई पड़नी शुरू हो जाएगी, जो कभी नहीं सुनी। ओम तो सिर्फ उसकी कापी है समझाने को, प्रतिलिपि है; कार्बन कापी है। ओम से पता नहीं चलता; सिर्फ इशारा है। जो गूंज वहां अनुभव होती है, वह करीब-करीब ऐसी है, जैसा ओम के उच्चार से मालूम पड़े। पर वह ठीक ऐसी नहीं है। निकटतम, एप्रॉक्सिमेटली, ऐसी है।

इसलिए अनेक लोगों ने उसे अनेक तरह से समझा है। हिंदू ओम के उच्चार से समझे हैं। हिब्रू, यहूदी, मुसलमान उसी को आमीन की तरह समझे हैं। वह ओम, जो हमने ओम समझा, वह भीतर की ध्वनि को सूफियों ने समझा, आमीन। वह आमीन जैसा भी सुनाई पड़ सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

ये दो ही शब्द हैं इस समय जमीन पर, आमीन और ओम। आधे धर्म दुनिया के आमीन के खयाल में हैं, आधे धर्म दुनिया के ओम के। भारत में जो धर्म पैदा हुए, वे सब ओम के खयाल में हैं। और उस खयाल में कोई और कारण नहीं है। जब हमें पता है कि ओम, जो जब पहली दफे हमें वह ध्वनि सुनाई पड़ेगी, तो ओम जैसी सुनाई पड़ेगी। जिनको पता है आमीन, उन्हें आमीन जैसी सुनाई पड़ जाएगी।

लेकिन ये दोनों ही केवल फीकी प्रतिध्वनियां हैं उस ध्वनि की। स्मृति से, बुद्धि से समझा गया उच्चार है। वह इन दोनों से भिन्न और दोनों से मिलती-जुलती है। उस ध्वनि को अनाहत कहा है, क्योंकि वह बिना किसी चीज से टकराए पैदा होती है। वह अस्तित्व की ध्वनि है। वह अस्तित्व के होने से ही पैदा हो रही है।

इस ध्वनि को उच्चार करता हुआ जो पुरुष मेरे चिंतन में रमा, शरीर को त्यागकर जाता है...।

हम शरीर को त्याग नहीं करते, हमें शरीर त्याग करना पड़ता है। बड़ी मजबूरी में, बड़ी विवशता में, बड़ी मुश्किल से; छीना-झपटी होती है हमसे। आपने कथाएं पढ़ी होंगी, कहानियां कहती हैं, धर्मगुरु समझाते हैं, वे कहते हैं कि जब मौत आती है, तो मौत के यमदूत आते हैं और बड़ी जोर-जबरदस्ती करके आत्मा को छीनकर ले जाते हैं।

उलटी है यह बात। कोई छीनकर आत्मा नहीं ले जाता। आप ही शरीर को इतने जोर से पकड़ते हैं कि छीना-झपटी हो जाती है। प्राण जाना चाहते हैं। कोई उस तरफ से नहीं खींचता आपको। किसी को खींचने की जरूरत नहीं है। प्राण जाना चाहते हैं। वक्त आ गया। समय चुक गया। शरीर व्यर्थ हो गया। और आपका मन छोड़ना नहीं चाहता। आप पकड़े हैं। नाव छूट चुकी, उसका इंजन दौड़ने लगा; और आप किनारे को पकड़े हुए हैं। जो छीना-झपटी होती है, वह उस तरफ से नहीं, इसी तरफ से होती है, हमारे द्वारा होती है। हम शरीर को फिर भी पकड़े रहना चाहते हैं, हम फिर भी चीखते-चिल्लाते हैं। और बच जाएं, एक क्षण और मिल जाए। एक श्वास और ले लूं। हम त्याग नहीं कर पाते शरीर का।

अब यह बहुत मजे की बात है। न हम भोग कर पाते, न हम त्याग कर पाते। क्योंकि अगर भोग ही कर लिया हो, तो त्याग करने में कठिनाई नहीं आनी चाहिए। क्योंकि जिस चीज को हम भोग लेते हैं, उसे छोड़ने की तैयारी हो जाती है। जब पेट भर जाता है, तो आदमी थाली छोड़ देता है। लेकिन जिंदगीभर इस शरीर में रहकर भोग भी नहीं कर पाते कि थाली छोड़ सकें। जब वक्त आए छोड़ने का, तो हम कह सकें, भर गया पेट।

न हम भोग कर पाते, न हम त्याग कर पाते। हम बड़े अजीब लोग हैं। जब भोग का समय होता है, तब हम भोग को पोस्टपोन करते रहते हैं, कल कर लेंगे! इंतजाम पहले कर लें, फिर भोग कर लेंगे। फिर इंतजाम में जिंदगी चुक जाती है, फिर मौत सामने आ जाती है, त्याग का वक्त आ जाता है। लेकिन अभी हमने भोग ही नहीं किया, तो त्याग कैसे करें! तो पकड़ने की चेष्टा चलती है।

ध्यान रहे, अगर कोई आदमी विवेकपूर्वक, बुद्धिमानीपूर्वक, होशपूर्वक भोग कर ले, तो त्याग करने में कठिनाई नहीं आनी चाहिए। क्योंकि शरीर में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे पकड़ने की आकांक्षा शेष रह जाए। सिर्फ अज्ञान ही पकड़ा सकता है। और भोग न कर पाने के कारण त्याग की क्षमता नहीं हो पाती।

भोग करें। और ठीक से भोग कर लें। और होशपूर्वक भोग कर लें। और देख लें कि शरीर क्या दे सकता है। और जान लें कि शरीर से क्या मिल सकता है। जल्दी ही आप इस नतीजे पर पहुंच जाएंगे कि शरीर से कुछ भी मिलने वाला नहीं है। अगर कुछ खोजना है, तो किसी और दिशा में खोजना पड़ेगा। फिर शरीर को छोड़ने में कठिनाई नहीं होती।

और जिसको यह प्रतीति हो जाए कि शरीर से कुछ मिलता नहीं, कुछ मिलेगा नहीं, वह तत्क्षण–तत्क्षण शरीर को त्यागने को तैयार हो सकता है। और मृत्यु तब जब आए, तो वह सहज स्वीकार कर सकता है कि ठीक है, आ जाओ। मैं तो तैयार ही था। इस शरीर को मैं देख चुका। इसमें कहीं कुछ भी नहीं है, जो पाने योग्य है। और कहीं भी कुछ भी नहीं है, जिसे खोने का कोई भय हो। मैं शरीर को देख और जान चुका हूं। ऐसे व्यक्ति को संयम भी आसान हो जाता है। और ऐसे व्यक्ति को अंतिम क्षण में शरीर का त्याग भी सरल हो जाता है।

शरीर को त्यागकर जाता है ऐसा जो पुरुष, वह परम गति को प्राप्त होता है।

परम गति, यानी जिसके आगे फिर और कोई गति नहीं है। जहां से लौटना नहीं है, जिसके आगे जाना नहीं।

शब्द बड़ा अदभुत है। गति का तो मतलब होता है मूवमेंट। गति का अर्थ होता है मूवमेंट, चलना, बदलना, परिवर्तन। परम गति का क्या मतलब होगा? वहां तो कोई चलना नहीं होता, कोई मूवमेंट नहीं; कोई जाना नहीं, कोई आना नहीं।

परम गति शब्द कंट्राडिक्टरी है, विरोधी है। असल में परम कहना और गति कहना, दो विरोधी शब्दों का एक साथ प्रयोग करना है। कहना कि अल्टिमेट मूवमेंट! मूवमेंट कभी भी अल्टिमेट नहीं हो सकता। क्योंकि गति का अर्थ ही होता है कि वह अभी किसी तरफ हो रही है। गति का अर्थ ही होता है कि अभी हो रही है। तो जिस तरफ हो रही है, वहां होगा अंत। अभी अंत नहीं हो गया। गति स्वयं में कभी अंत नहीं होती। अंत कहीं आगे होगा, जिसकी तरफ गति होती है।

परम गति विरोधी शब्द है। लेकिन जीवन में जितने गहरे सत्यों का उदघाटन करना हो, उतने विरोधी शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। और इसीलिए संतों की वाणी निरंतर कंट्राडिक्शंस से, विरोधों से, असंगतियों से भरी होती है। असल में संत बोल ही नहीं सकता, बिना कंट्राडिक्ट किए संत बोल ही नहीं सकता। और अगर कोई बोलता हो, तो उसे सत्य का कोई पता नहीं होगा।

सत्य को बोलने का मतलब ही यह है कि आपको विरोधी शब्दों का एक साथ प्रयोग करना पड़ेगा। उपनिषद कहते हैं, दूर से भी दूर और निकट से भी निकट है वह। या तो कहो दूर से भी दूर; रुको। या कहो, निकट से भी निकट; और ठहरो! कृपा करके दोनों तो एक साथ मत कहो कि दूर से भी दूर है वह और निकट से भी निकट है! कंट्राडिक्शन का तो उपयोग मत करो।

लेकिन कोई उपाय नहीं। ऐसा ही है वह। पास भी इतने कि उससे ज्यादा पास कोई नहीं। और फिर भी अनंत-अनंत यात्रा करके भी उस तक पहुंच कहां पाते हैं! दूर से भी बहुत दूर। शायद इसीलिए बहुत दूर है कि बहुत पास है। इतने पास है कि चलने का मौका ही नहीं मिलता कि कैसे चलकर उसके पास पहुंचें। जरा दूर हो, तो आदमी चलकर भी पहुंच जाए। बहुत पास हो, तो चलकर कैसे पहुंचे!

मुल्ला नसरुद्दीन एक जगह काम करता है। दफ्तर उसके घर के सामने है, लेकिन रोज ही वह देर पहुंचता है। लेट लतीफ। रोज ही। आखिर एक दिन मालिक के बरदाश्त के बाहर हुआ। उसने कहा, नसरुद्दीन, सीमा भी होती है किसी बात की। जो आदमी छः मील दूर रहता है, वह ठीक दस बजे आ जाता है। और तुम दफ्तर के सामने हो और तुम कभी भी ठीक वक्त पर नहीं आ पाते!

नसरुद्दीन ने कहा, उसका कारण है। बिकाज आई एम सो नियर, क्योंकि इतने निकट हूं। उसके मालिक ने कहा, यह कैसा कारण! समझ में नहीं आया। तो नसरुद्दीन ने कहा कि इस आदमी को अगर देर हो जाए, तो जल्दी चलकर देर की कमी पूरी कर लेता है। मुझे देर हो जाए, तो कितनी ही जल्दी चलूं, कोई फर्क नहीं! देर हो ही गई है! इस आदमी को मौका है, छः मील का फासला है। ही कैन मेक अप। आई कैन नाट मेक अप। घर से निकले कि दफ्तर! मेक अप करने की थोड़ी जगह ही नहीं है। इसलिए हम रोज लेट हो जाते हैं!

बहुत करीब हो, तो चूक सकता है, क्योंकि खयाल में ही न आए। आंखें दूर देखती हैं। पास देखने में सभी आंखें अंधी हैं। जितने पास हो जाए, दिखाई नहीं पड़ता। इस हाथ को पास पास पास, आंख के जितने पास ले आओ, उतना ही दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाता है। फिर बिलकुल आंख से लगा लो, फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और वह आंख के भी पीछे है, तो कठिन हो जाता है।

परम गति भी विरोधी शब्द है, कंट्राडिक्शन इन टर्म्स। गति परम नहीं हो सकती; और जो परम है, वहां कोई गति नहीं हो सकती। लेकिन फिर भी सार्थक है, क्योंकि हम गति को ही पहचानते हैं। हमने बहुत गतियां की हैं। न मालूम कितनी योनियों में भ्रमण किया है। न मालूम कहां-कहां गतिमान हुए हैं। हमें तो एक ही पता है--गति, और गति, और गति।

कृष्ण कहते हैं, वह परम गति को उपलब्ध हो जाता है।

और परम गति अर्थात आखिरी गति को, जिसके आगे और कोई गति नहीं, जहां सब ठहर जाता है। परम गति का अर्थ है, जहां सब ठहर जाता है। जहां कंपन भी नहीं, लहर भी नहीं। जहां कोई मूवमेंट नहीं।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वहां मृत्यु है। यह जो ठहराव है, यह जो थिरता है, परम जीवन है; लेकिन बिना गति के। और गति का जो जीवन है, वह तो घिस जाएगा। और गति में जो जीवन है, वह आज नहीं कल गलेगा, सड़ेगा, टूटेगा, डिटेरिओरेट होगा। लेकिन परम जीवन तो वही हो सकता है, शाश्वत, जहां कोई गति नहीं। क्योंकि गति में चीजें मिट जाती हैं।

हम सब गति में ही मिटते हैं। इसलिए सत्तर साल में शरीर घिस जाता है। घिस जाता है, इसका मतलब है कि सत्तर साल गति कर ली सब तरह से। मन को दौड़ाया, इंद्रियों को दौड़ाया, पैरों को चलाया; सब चले। सत्तर साल में सब घिस जाता है। शरीर छूट जाता है। फिर दूसरा शरीर पकड़ना पड़ता है।

उस परम स्थिति में जहां कोई गति नहीं, शरीर की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वहां कोई गति नहीं। शरीर गति का यंत्र है, वाहन है। इसलिए वह स्थिति अशरीरी है। और परम है, क्योंकि उसके पार, उसको ट्रांसेंड करने वाला और कुछ भी नहीं है।

और हे अर्जुन, जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त हुआ, सदा ही स्मरण करता है मुझे, उस निरंतर मेरे में युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूं। अंतिम बात, कृष्ण कहते हैं, ऐसे व्यक्ति को मैं अति सुलभ हूं।

यह भी विरोधाभास है। क्योंकि परमात्मा तो अति दुर्लभ है। खड्ग की धार पर चलने जैसा है। बड़ा मुश्किल है। लाखों चलते हैं, एकाध पहुंच पाता है। बड़ा कठिन है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, ऐसे चित्तवान व्यक्ति को, जो सतत मेरे स्मरण में डूबा हुआ, भाव जिसका हृदय में आ गया, प्राण जिसका भृकुटी में और इंद्रियां जिसकी संयम को उपलब्ध हुईं और जिसके भीतर अनाहत के नाद की गूंज शुरू हो गई, ऐसे व्यक्ति को मैं अति सुलभ हूं। मुझसे ज्यादा सुलभ और ऐसे व्यक्ति को कोई और चीज नहीं है।

परमात्मा दुर्लभ है, अगर आप उलझे हुए हैं। परमात्मा बहुत सुलभ है, अगर आप सुलझे हुए हैं। सब निर्भर करता है आप पर, परमात्मा पर नहीं। जटिलता है आपकी, तो परमात्मा बहुत दुर्लभ है। और आप पीठ किए खड़े हैं सूरज की तरफ, तो सूरज का कोई कसूर नहीं है। और आप कितने ही चलते रहें पीठ किए, आप कभी भी सूरज का दर्शन न कर पाएंगे। क्योंकि जो आंखें पीठ किए हैं, वे कितनी ही चलें, कितनी ही चलें, सूरज के दर्शन का कोई सवाल नहीं। और एक कदम वापस लौटें, लौटकर देखें, और एक कदम भी फिर चलने की जरूरत नहीं; सूरज आंख के सामने है।

परमात्मा ऐसा ही सुलभ और दुर्लभ है। अगर पीठ किए रहें उसकी तरफ, तो अति दुर्लभ है। कितना ही दौड़ें जन्मों-जन्मों, नहीं मिलेगा। और लौटें, ऊर्जा को लौट आने दें भीतर, संयमित हों, ध्यान को उपलब्ध हों, समाधि को पाएं...।

समाधि, ध्यान, कुछ और नहीं, जस्ट ए टघनग, लौटना, एन अबाउट टर्न, चित्त का लौट आना स्वयं पर; और आप इसी वक्त उपलब्ध हो जाते हैं। इसी क्षण भी उपलब्ध हो सकते हैं। बहुत सुलभ है। सब आप पर निर्भर है, इट डिपेंड्स आन यू।

लेकिन हम बड़े होशियार हैं। हम मंदिर के सामने जाकर कहते हैं कि मैं बहुत पापी हूं, मुझ से क्या होगा! तू ही कुछ करवा लेना! और अपने पाप में लौटकर बड़ी कुशलता से लग जाते हैं। अगर हम परमात्मा को परम दयालु भी कहते हैं, तो इसलिए नहीं कि हम मानते हैं, वह परम दयालु है। सिर्फ इसीलिए कि इसमें हमें सुविधा है।

उमर खय्याम ने मजाक में कहा है--मौलवी ने रोका है उसे कि शराब पीना बंद कर खय्याम--तो खय्याम कहता है कि हम तो पीते ही रहेंगे, क्योंकि हमें उस रहमान की रहमत पर भरोसा है; उस परम कारुणिक पर हमें पूरा भरोसा है। तू आस्तिक है? तू आस्तिक कैसा! नास्तिक है। मौलवी से खय्याम कहता है अपनी शराब की प्याली हाथ में लिए, तू नास्तिक है। हमें तो उसका भरोसा है। उसकी करुणा अपार है। और हम क्या खाक पाप किए! महान करुणा के सामने हम कितने ही पाप करें, सब क्षमा है।

यह उमर खय्याम हम सब पर मजाक कर रहा है। हम सब ऐसे ही हैं।

नहीं, वह सुलभ होगा तभी, जब हम उसकी ओर उन्मुख हों। वह दुर्लभ रहेगा तब तक, जब तक हम विमुख हैं। विमुखता ही उसकी दुर्लभता, और हमारी उन्मुखता ही उसकी सुलभता बन जाती है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
वासना, समय और दुःख— अध्याय—8 (प्रवचन—छठवां)

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।15।।
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।16।।
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।17।।
और वे परम सिद्धि को प्राप्त हुए महात्माजन मेरे को प्राप्त होकर, दुख के स्थान आलयरूप क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं।

क्योंकि हे अर्जुन, ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं, परंतु हे कुंतीपुत्र, मेरे को प्राप्त होकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।

और हे अर्जुन, ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको हजार युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी हजार युग तक अवधि वाली, ऐसा जो पुरुष तत्व से जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं।

पूरब की मनीषा ने दुख का कारण, पश्चिम की मनीषा से बिलकुल ही भिन्न जाना है। शायद धर्म और विज्ञान का वही भेद है। या ऊपर से जीवन की जो खोज करते हैं और भीतर जीवन के गहन तत्व में जो प्रवेश करते हैं, उनकी दृष्टि का वह अंतर है।

पश्चिम सदा से सोचता रहा है कि दुख का कारण परिस्थिति में है, स्थिति में है। और यदि हम परिस्थिति को बदल लें, तो दुख विनष्ट हो जाएगा। यदि बाहर की सारी स्थिति ऐसी बनाई जा सके, जहां दुख पैदा न हों, तो फिर दुख पैदा नहीं होगा। बाह्य को हम बदल लें, तो दुख की समाप्ति है। दुख है, तो इसलिए कि बाहर की परिस्थिति भीतर की चेतना के अनुकूल नहीं है।

इसलिए पश्चिम दो हजार वर्षों तक निरंतर विज्ञान की सतत साधना से बाहर की स्थिति को बदलने में लगा रहा है। और अब पहला मौका है, जब पश्चिम कुछ सीमा तक सफल हुआ। और सफल होते ही उसकी सारी आशाओं का महल गिरकर ढेर हो गया है। सफलता इतनी असफल हो सकती है, यह कभी पश्चिम के चिंतकों ने सोचा भी नहीं था। सोचा भी नहीं था कि जिस दिन हम परिस्थिति से सारे दुख को अलग कर लेंगे, उस दिन और भी बड़ा दुख आदमी के ऊपर टूट पड़ने वाला है।

पृथ्वी पर ज्ञात पांच हजार वर्षों के इतिहास में पश्चिम ने सर्वाधिक समृद्धि, यंत्र-कौशल, वैज्ञानिक प्रगति और बाहर की स्थिति को मनुष्य के अनुकूल रूपांतरित करने में जैसी सफलता पाई है, वैसी किसी सदी ने और किसी समाज ने कभी नहीं पाई थी। लेकिन आज उस सफलता के शिखर पर बैठा हुआ अमेरिका दुख के महागर्त में गिर गया है। ऐसे दुख के गर्त में गरीब, दीन-हीन, पीड़ित और भिखारी समाजों को भी गिरते कभी नहीं देखा गया। पश्चिम का तर्क बुरी तरह असफल हुआ है।

पूरब और तरह से सोचता है। पूरब ने जाना है कि परिस्थिति में दुख नहीं, मनुष्य की चेतना में ही दुख है। मनुष्य की चेतना ही बदल जाए, तो ही दुख से छुटकारा हो सकता है। अन्यथा मनुष्य की चेतना को कैसी भी परिस्थिति मिले, दुख को पकड़ लेने वाली, दुख को पैदा कर लेने वाली चेतना, पुनः-पुनः दुख पैदा कर लेती है, हर स्थिति में दुख पैदा कर लेती है। दुखवादी हर जगह दुख को खोज लेता है।

यह मनुष्य की चेतना का रूपांतरण ही दुख से मुक्ति बन सकता है। कृष्ण अर्जुन से इसका पहला सूत्र कहते हैं। वे कहते हैं, परम सिद्धि को जो प्राप्त हुए महात्माजन हैं, वे मुझे पाकर, दुख के स्थान, आलयरूप, क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं। दुख के आलयरूप, दुख का जहां घर है, ऐसे क्षणभंगुर जीवन को वे उपलब्ध नहीं होते हैं।

इसे समझना पड़े। यह पूरब का गहनतम तर्क है, अंतर्दृष्टि है। दुख का घर पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म का प्रारंभ जीवन की आकांक्षा है, जीते रहने की आकांक्षा, लस्ट फार लाइफ, जीवेषणा, और जीता ही रहूं, और जीता ही चला जाऊं। एक वासना पूरी नहीं होती कि दस वासनाओं को जन्म दे जाती है। और किसी भी वासना को पूरा करना हो, तो जीवन चाहिए, समय चाहिए, अन्यथा वासना पूरी नहीं होगी।

वासना के लिए भविष्य चाहिए। अगर भविष्य न हो, तो वासना क्या करेगी? अगर मैं इसी क्षण मर जाने वाला हूं, तो वासना करना व्यर्थ हो जाएगा। क्योंकि वासना के लिए जरूरी है कि कल हो, आने वाला दिन हो। आने वाला दिन हो, तो ही मैं वासना को फैलाऊं, श्रम करूं, भवन बनाऊं, पूर्ति की आकांक्षा करूं, दौडूं। वासना पूरी हो सके, उस मंजिल तक जाने का यत्न करूं। लेकिन समय की जरूरत है; टाइम इज़ नीडेड।

अगर वासना पूरी करनी है, तो समय के बिना पूरी नहीं हो सकती। समय चाहिए। और अगर हर वासना दस वासनाओं को जन्म दे जाती हो, तो हर वासना के बाद दस गुना समय चाहिए। हर जीवन के बाद हमें दस और जीवन चाहिए, इतनी वासनाएं हम पैदा कर लेते हैं।

और मजा यह है कि पूरे जीवन हम वासनाओं को पूरा करने की कोशिश करते हैं और आखिर में पाते हैं, कोई वासना पूरी नहीं हुई, मरते क्षण हम और भी वासनाओं को जिंदा कर लिए हैं। जन्म के समय जितनी वासनाएं हमारे पास होती हैं, मृत्यु के समय तक उनमें से एक भी कम नहीं होती, यद्यपि बहुत बढ़ जाती हैं। तब मरते क्षण और जन्म की आकांक्षा पैदा होती है। क्योंकि वासना है, तो और जीवन चाहिए। और जीवन पुनर्जन्म बन जाता है; और जीवन को पाने की इच्छा पुनर्जन्म बन जाती है।

और कृष्ण कहते हैं, पुनर्जन्म ही दुख का घर है।

पुनर्जन्म होता है जीवन की आकांक्षा से; जीवन की आकांक्षा होती है, वासना को तृप्त करने के लिए समय की मांग से। तो अगर ठीक से समझें, तो पुनर्जन्म का सूत्र या दुख का सूत्र, वासना है, तृष्णा है, डिजायर है। अगर कोई भी वासना नहीं है, तो आप कहेंगे कि कल की अब मुझे कोई जरूरत न रही, देन टाइम इज़ नाट नीडेड।

जीसस से कोई पूछता है कि तुम्हारे मोक्ष में सबसे खास बात क्या होगी? शायद पूछने वाले ने सोचा होगा कि जीसस कहेंगे, प्रभु का दर्शन होगा, परम आनंद होगा, मुक्ति होगी, शांति होगी। ऐसा कुछ कहेंगे। लेकिन जीसस ने जो जवाब दिया है, वह बहुत हैरानी का है। जीसस ने कहा, देयर शैल बी टाइम नो लांगर–वहां समय नहीं होगा।

शायद ही सुनने वाले की समझ में आया हो! आपने भी अगर पूछा हो कि मोक्ष में क्या होगा, और अगर जीसस या कृष्ण जैसा व्यक्ति कहे, वहां समय नहीं होगा, तो आपकी भी समझ में नहीं पड़ेगा।

समय नहीं होगा, इसका अर्थ यही है कि वहां कोई वासना नहीं है, जिसके लिए समय की जरूरत पड़े। वासना नहीं होगी, समय नहीं होगा, तो वहां पुनर्जन्म नहीं होगा। वहां कल होगा ही नहीं। वहां सिर्फ आज ही होगा। शायद आज कहना भी ठीक नहीं है; अभी ही होगा; जस्ट दिस मोमेंट, बस यही क्षण होगा। और यह क्षण अनंत होगा। इस क्षण का कोई ओर-छोर नहीं होगा। यह क्षण कहीं समाप्त नहीं होगा, और कहीं प्रारंभ नहीं होगा। समय वहां नहीं होगा।

समय की जरूरत इसलिए है कि वासना की दौड़ के लिए स्थान चाहिए। वासना दौड़ती है समय में। वासना स्थान में नहीं दौड़ती, स्पेस में नहीं दौड़ती, टाइम में दौड़ती है। अगर आपके शरीर को दौड़ाना है, तो स्थान की जरूरत पड़ेगी, स्पेस की। लेकिन अगर आपके मन को दौड़ाना है, तो स्थान की कोई भी जरूरत नहीं; समय काफी है। इसलिए आप सपने में भी दौड़ सकते हैं। सपने में कोई स्पेस नहीं होती,

लेकिन टाइम होता है, समय होता है। सपने में भी दौड़ सकते हैं। आरामकुर्सी पर लेटकर आंख बंद करके भी अनंत-अनंत यात्राएं कर सकते हैं। वे यात्राएं वासना की यात्राएं हैं और समय में घटित होती हैं।

महावीर से कोई पूछता है कि जब समाधि उपलब्ध हो जाती है, तो हमारे भीतर से कौन-सी चीज गिर जाती है? तो महावीर कहते हैं, समय, टाइम। समय गिर जाता है। क्योंकि जिस व्यक्ति के भीतर समाधि फलित होती है, उस व्यक्ति के भीतर वासना की दौड़ नहीं रह जाती। और उस दौड़ का जो मार्ग है, वह गैर-अनिवार्य हो जाता है, वह गिर जाता है।

इसलिए समाधि की परिभाषा जगत में कहीं भी की गई हो, तो एक बात उस परिभाषा में अनिवार्य रूप से है। किसी देश में, किसी काल में, किसी महाजन ने परिभाषा की हो, परिभाषा में और बातें अलग हों, लेकिन एक बात हमेशा अनिवार्यरूप से समान है और वह यह है कि समाधि समयातीत है, कालातीत है, बियांड टाइम है।

पुनर्जन्म हमारी मांग है। हम कहते हैं, और जीवन चाहिए; क्योंकि बहुत कुछ अधूरा रह गया है, अनफुलफिल्ड, उसे पूरा करना है। जो मकान बनाना चाहा था, उसकी मंजिलें पूरी नहीं हो पाईं। और जो नाव चलाई थी किसी गंतव्य के लिए, उसने अभी किनारा ही छोड़ा है, दूसरा किनारा नहीं मिला। जो-जो सोचा था, कर लेंगे, वह सब अधूरा है, इनकंप्लीट है।

इस संबंध में एक बात आपको खयाल दिलाऊं, तो आसानी होगी समझ लेना कि यह वासना समय की मांग कैसे बनती है, और समय की मांग पुनर्जन्म कैसे बन जाता है, और पुनर्जन्म दुख का घर क्यों है!

दिनभर आप बहुत कुछ करते हैं; सांझ होते-होते सब कुछ अधूरा ही होता है; कभी पूरा नहीं होता। अगर कोई आपसे इसी समय पूछे कि मरने को तैयार हो? कोई काम करने की जरूरत तो नहीं है? तो आप कहेंगे, थोड़ा रुको। बहुत से काम अधूरे हैं, जरा पूरे कर लूं। शायद ही वह आदमी मिले, जो कहे कि सब पूरा है, मैं मरने को तैयार हूं। सब काम पूरा है, मैं मरने को तैयार हूं।

एक मित्र कल ही आए थे; सालभर पहले भी आए थे। सालभर पहले वे कहते थे कि मेरे बड़े लड़के की शादी मुझे करनी है; कम से कम एक लड़के की शादी कर लूं, फिर संन्यास लूं। मैंने उनसे कहा कि संन्यास से कोई बाधा नहीं पड़ती। लड़के की शादी मजे से करना। और संन्यासी पिता जितने आशीर्वाद दे सकेगा विवाह के क्षण में, संसारी पिता नहीं दे सकेगा। पर वे बोले, आप कहते हैं ठीक, लेकिन विवाह में और गैरिक वस्त्र पहनकर खड़ा होऊंगा, थोड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी। बस, सालभर रुक जाएं। एक लड़के का विवाह कर दूं, फिर चिंता नहीं बाकी लड़कों की। कम से कम एक का मुझसे निपट जाए।

वह विवाह हो गया। वे कल फिर आए थे। अब वे कहते हैं, पत्नी राजी नहीं है। जरा रुकें। मैं पत्नी को समझा-बुझा लूं। आखिर उसे दुख देने से भी क्या फायदा है! मैंने उनसे पूछा, कब तक समझा पाएंगे आप? कितना समय चाहिए? उन्होंने कहा, जैसे आसार हैं, उसे देखकर कम से कम सालभर तो लग ही जाएगा। मैंने उनसे कहा, मुझे कोई अड़चन नहीं है। आप ही रुकने को राजी हैं, तो मुझे क्या अड़चन हो सकती है! लेकिन ध्यान रखें, इस मन से जन्मों-जन्मों तक समय की मांग रहेगी और घटना नहीं घट सकेगी। क्योंकि सालभर पीछे आप कहते थे, बस, एक सवाल है। अब भी कहते हैं, एक सवाल है। लेकिन यह साल और सवाल पैदा कर देगी।

सवालों का अंत नहीं है। कामों का अंत नहीं है। समय चुक जाता है, वासना तो नहीं चुकती। समय तो चुक ही जाता है, कामना नहीं चुकती है। समय छोटा पड़ जाता है, कामना अनंत है।

बुद्ध ने कहा है, कामना दुष्पूर है। उसे तुम पूरा नहीं कर सकते। बुद्ध कहते थे, वह ऐसे बर्तन की तरह है, जो दोनों तरफ से खुला हो और तुम उसमें कुएं से पानी भरो। वह कभी भरेगा नहीं। इसलिए नहीं कि कुएं में पानी नहीं है। और इसलिए भी नहीं कि तुम्हारे भरने के प्रयास में कोई कमी है। और इसलिए भी नहीं कि जब कुएं में बर्तन डूबता है, तो पानी नहीं भरता है। सब हो जाता है। कुआं है, पानी है, बर्तन बिलकुल ठीक है। तुम्हारी ताकत है, कुएं में डालते हो, बर्तन पानी में डूबता है, भरा हुआ दिखाई पड़ता है। खींचते हो, बर्तन निकल आता है, पानी पीछे रह जाता है। वह दोनों तरफ से खुला हुआ है। दुष्पूर का यही अर्थ है। वासना को डालते हैं, वासना खाली लौट आती है। मेहनत व्यर्थ हो जाती है। जो पानी भरा हुआ दिखाई पड़ा था, वह धोखा सिद्ध होता है।

वे बोले, फिर भी एक वर्ष का मौका मुझे और दें। मैंने कहा, मैं मौका देने वाला कौन हूं! जब तुम्हीं मौका मांग रहे हो, तो परमात्मा तुम्हें मौका दिए चला जाएगा। उसने बहुत-बहुत जन्मों तक तुम्हें मौका दिया है। अधैर्य नहीं किया। आगे भी मौका देता रहेगा। और हर बार तुम यही करते रहे हो।

काम बाकी रह जाते हैं, कुछ न कुछ बाकी रह जाता है। और मन कहता है, बस इसे पूरा कर लो। लेकिन उसे पूरा करने में हम दस नई और वासनाएं पैदा कर लेते हैं। वे अधूरी रह जाती हैं। इस अधूरेपन की कोई सीमा नहीं आती। तो फिर अगले जन्म की मांग जरूरी हो जाती है।

मरते क्षण में भी जो अधूरा रह जाता है, उसी के कारण हमें दूसरे जन्म को स्वीकार करना पड़ता है। मरते क्षण में जो पूरा करके मर सकता है, उसका अगला जन्म नहीं होगा। क्योंकि उसे मांग ही नहीं रह जाएगी। जन्म का करिएगा क्या? उसका कोई उपयोग नहीं है। समय की मांग बंद हो जाए, तो अगला जन्म नहीं होता। लेकिन समय की मांग तो बनी रहती है।

और बहुत अजीब लोग हैं हम। एक तरफ कहते हैं कि समय बहुत कम है, और दूसरी तरफ कहते रहते हैं दिन-रात कि समय काटे नहीं कटता! एक तरफ कहते हैं कि समय बहुत थोड़ा है हाथ में, और दूसरी तरफ निरंतर रोते रहते हैं कि समय कैसे काटें? जरूर कुछ कारण होगा इस दुविधा का। दुविधा का कारण है।

समय तो निश्चित कम है, क्योंकि वासनाएं बहुत हैं। और सब चीजें तुलनात्मक होती हैं। जब हम कहते हैं कि समय कम है, तो उसका मतलब है किससे? वासनाओं से। जिसकी वासनाएं नहीं हैं, उसके पास तो समय बहुत है, उसका कोई अंत नहीं। और जिसके पास वासनाएं बहुत हैं, समय बहुत छोटा है। फिर भी वासनाओं वाला आदमी भी कहता है, समय काटे नहीं कटता, क्योंकि वासनाओं को पूरा करते-करते भी वह पाता है कि वासनाएं पूरी नहीं होतीं। वासनाएं पूरी नहीं होतीं। सब तरह कोशिश कर लेता है और कोई वासना पूरी होती नहीं दिखाई पड़ती। तब वह समय को भुलाने की कोशिश करता है। उसी को वह समय नहीं कटता कहता है। इतने मनोरंजन के साधन खोजने पड़ते हैं समय को भुलाने के लिए।

इधर वासना है, वह समय को चुका देती है। थोड़ा-बहुत समय बचता है, तो वासना से थका हुआ मन उसको भुलाने के लिए सिनेमागृह में बैठता है, चायघर में बैठता है, काफी हाउस में बैठता है, ताश खेलता है–हजार उपाय करता है। समय को हम इस भांति नष्ट करते हैं, और मरते वक्त फिर वही मांग कि हमें फिर समय चाहिए।

और अनंत है परमात्मा का विस्तार। हम जितना मांगते हैं, हमें मिलता चला जाता है। और हर जीवन में हम वही पुनरुक्त करते हैं, जो हमने पीछे किया था।

कृष्ण इसे दुख क्यों कहते हैं? दुख यही है कि जो हम पाना चाहते हैं, वह मिलता नहीं और मेहनत बहुत होती है। दुख नहीं होगा, तो क्या होगा! दुख का एक ही अर्थ है, जो मैं पाना चाहता था, वह नहीं मिला; और जो मैं नहीं पाना चाहता था, वह मिल गया है। दुख का और कोई अर्थ नहीं है।

बुद्ध कहते थे, दुख का अर्थ है, जिसे हम खोजते थे, उसे खोज न पाए; और जिसे बचाना चाहते थे, वह खो गया। जिसके लिए हम चले थे, वह मिला नहीं; और जो साथ लेकर हाथ में चले थे, वह भी उलटा खो गया! वासनाएं कोई पूरी नहीं होती हैं और जीवन पूरा चुक जाता है। हाथ में जो अवसर लेकर चले थे समय का, वह रिक्त हो जाता है; और जिसे पाने चले थे, उसकी कोई गंध भी नहीं मिलती कि वह कहां है। मृत्यु में यही दुख गहन हो जाता है।

दुख बहुत आयामी है।

एक आयाम तो यह है, जो मैंने कहा। दूसरा आयाम यह है, सब करते, सब पाते, चलते-दौड़ते वासनाओं के पीछे, हारते-जीतते, भीतर कहीं भी ऐसा नहीं लगता, कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि शांति का एक क्षण, विश्राम का एक पल, आनंद की एक छोटी-सी किरण भी कहीं अंकुरित होती हो भीतर। कहीं ऐसा नहीं लगता।

सदा ऐसा लगता है कि कल मिलेगा आनंद। आज तो दुख है, कल मिलेगा आनंद। यह कल बहुत खतरनाक है, यह सिर्फ आज को भुलाने का उपाय है। आज इतना दुख से भरा है कि कल की आशा में ही हम उसे भुला सकते हैं। और मजा यह है कि कल, बीते कल में भी हमने ऐसा ही किया था। और जिसे हम आज कह रहे हैं, वह बीते कल में कल था। और कल भी हमने यही कहा था कि आने वाले कल में आनंद मिलेगा, और आज भी वही कह रहे हैं, और आने वाले कल में भी हम वही कहेंगे। और हर जन्म में हमने यही कहा, अगले जन्म में, अगले जन्म में, आगे।

जो भी व्यक्ति आज को पोस्टपोन कर रहा है कल के लिए, वह अगले जन्म की तैयारी कर रहा है। अगर आप कहते हैं, कल करूंगा, तो आपको पुनर्जन्म लेना ही पड़ेगा। और अगर एक जन्म में नहीं कर पाए, तो आने वाले जन्म में भी क्या करिएगा? उसी को फिर पुनरुक्त करिएगा–वही बचपन, वही जवानी, वही बुढ़ापा, वे ही बीमारियां, वे ही रोग–वही सब होगा।

मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया है। कोई मित्र उसके घर ठहरा है और पूछता है नसरुद्दीन से कि नसरुद्दीन, अगर तुम्हें फिर से जन्म मिले, या ऐसा समझो कि तुम्हारी उम्र कोई जादूगर फिर से कम कर दे और तुम्हें बच्चा बना दे, तो क्या तुम वे ही भूलें फिर से करोगे जो तुमने इस जन्म में कीं, इस जीवन में कीं?

नसरुद्दीन ने कहा, वही करूंगा। लेकिन थोड़ा जल्दी शुरू करूंगा; अनुभव के कारण। वे ही भूलें करूंगा, लेकिन थोड़े जल्दी शुरू करूंगा। क्योंकि इस बार बड़ी देर हो गई। कुछ भी पूरा नहीं हो पाया। जरा जल्दी शुरू करूंगा, तो शायद पूरा हो जाए।

आपको हंसी आ सकती है नसरुद्दीन पर, लेकिन वही आदमी आपके भीतर बैठा हुआ है। अगर आपको भी अभी कोई कहे कि लौटा देते हैं वापस, तो आप समझते हैं, आप क्या करेंगे? आप फिर यही करेंगे। फिर-फिर यही हम करते ही रहे हैं। शायद अनुभव के कारण थोड़ा जल्दी शुरू करें, ताकि अंत में पूरा हो जाए, समय काफी मिल जाए। और कोई ज्यादा अंतर नहीं पड़ेगा।

नसरुद्दीन मर रहा है। फांसी पर लटकाने के पहले ही पुरोहित उससे कहता है, माफी मांग ले परमात्मा से, पश्चात्ताप कर ले। रिपेंट! नसरुद्दीन कहता है, पश्चात्ताप जरूर मेरे मन में बहुत है, लेकिन मेरे और आपके विचार में जरा-सा भेद है। शायद आप सोच रहे हैं, मैं उन पापों के लिए पश्चात्ताप करूं, जो मैंने किए। और मैं उन पापों का पश्चात्ताप कर रहा हूं, जो मैं नहीं कर पाया। पश्चात्ताप मेरे मन में भी है। लेकिन बड़ा दुख हो रहा है कि जब फांसी ही लगनी थी, तो वे पाप भी और कर लेता, जो छोड़े। और जब इतने पापों के लिए जो कुछ होगा, थोड़ा और दंड मिलता, और क्या होने वाला था! फांसी से ज्यादा और क्या हो सकता है?

ऐसा ही है मन। मरते क्षण में भी आप उन पापों के लिए पछताते रहेंगे, जो आप नहीं कर पाए। फिर पुनर्जन्म की यात्रा शुरू होगी। क्योंकि आप ही मांग रहे हैं। और ध्यान रहे, परमात्मा वही दे देता है, जो आप मांगते हैं।

सदा ही हम वही नहीं मांगते, जो हमारे हित में है। अक्सर तो हम वही मांगते हैं, जो हमारे हित में नहीं है। क्योंकि हम जो भी सोचते-विचारते हैं, वह आत्मघाती है, सुसाइडल है।

मरते वक्त शायद ही कोई मांगता हो कि अब मुझे और कुछ नहीं मांगना है। मांग जारी रहती है। आखिरी क्षण, डूबते हुए मौत में भी मांग जारी रहती है। वही मांग बीज बन जाती है। दैट डिजायर बिकम्स दि सीड। वही बीज बन जाती है और फिर नए जीवन का अंकुर फूटना शुरू हो जाता है।

इस बीज से दुख क्यों मिलता है? और यह नया जन्म क्यों दुख ले आता है? क्षणभंगुर होने के कारण।

कृष्ण कहते हैं, क्षणभंगुर पुनर्जन्म को...।

इस जगत में जो भी हम पा सकते हैं, वह क्षणभंगुर है, क्षणभर हाथ में होगा। पानी में जैसे बबूला उठ आए हवा का, बस, वैसा होगा। जब देखेंगे उसे, तो सूरज की किरणें उस पर इंद्रधनुष फैला रही होंगी। और जब हाथ से छुएंगे, तो वह फूट जाएगा। सोचा होगा, इंद्रधनुष को पकड़ लें हाथ में। नहीं मन में आता कि इंद्रधनुष को ले आएं और घर के बैठकखाने में लगा दें?

लेकिन जब इंद्रधनुष के पास पहुंचेंगे, तो वहां कुछ भी न मिलेगा। वहां कुछ है ही नहीं। वह जो इतना सुंदर धनुष खिंचा हुआ दिखता है आकाश के ओर-छोर, अगर जाएं उसके पास, तो वहां कुछ भी नहीं है। केवल पानी के बिंदु, पानी की बूंदें और बूंदों से गुजरती हुई सूरज की किरणों का जाल है। पास पहुंचकर कुछ भी नहीं है वहां।

ठीक पूरे जीवन यही इंद्रधनुष की खोज है। और जब पहुंचते हैं पास, तो पाते हैं, कुछ हाथ नहीं लगा। और हाथ जो लगता है, वह केवल टूटा हुआ इंद्रधनुष है, पानी की बूंदें हैं। न वहां रंग हैं, न वहां सौंदर्य है, न वहां कुछ और है। खाली हाथ रह जाता है।

क्षणभंगुर सब कुछ है इस जगत में। एक क्षण होना है उसका, और उस क्षण में हम उसे पाने निकलते हैं। जब तक हम पाने के करीब पहुंचते हैं, वह क्षण बीत चुका होता है। दुख हाथ लगता है। असफलता, विषाद, फ्रस्ट्रेशन हाथ लगता है। और इस जगत में कोई भी चीज क्षणभंगुर से ज्यादा नहीं हो सकती।

बुद्ध कहते थे--जब भी कोई उनके पास आता, तो बुद्ध कहते थे जाते वक्त उससे--कि ध्यान रखना, तुम जो मुझसे मिलने आए थे, वही तुम वापस नहीं लौट रहे हो। वह आदमी चकित होता। वह कहता, मैं वही हूं। आप कैसी बात कर रहे हैं! मैं ही आया था घड़ीभर पहले। आपसे बात की। अब वापस लौट रहा हूं।

बुद्ध कहते, भ्रांति में हो तुम। इस जगत में सभी कुछ क्षणभंगुर है। क्षणभर पहले जिस मन को लेकर तुम आए थे, अब वह कहां है? वह जा चुका। सब बह चुका है। जिस शरीर को लेकर तुम आए थे, वह भी एक बहाव है।

प्रतिपल आदमी का शरीर बह रहा है नदी की तरह। मन बह रहा है नदी की तरह। और जो नहीं बह रहा है, उसका हमें कोई भी पता नहीं है। जो बह रहा है, उसी में हम बह रहे हैं। और पकड़ रहे हैं लहरों को, बबूलों को। लहर और बबूले हाथ में आते हैं और टूट जाते हैं। क्षणभर को दिखाई पड़ता है कुछ, दौड़ते हैं, खो जाता है। दुख हाथ में लगता है।

क्षणभंगुरता अस्तित्व का स्वभाव है। यहां कोई भी चीज थिर नहीं है। यद्यपि हम कोशिश करते हैं निरंतर कि सब कुछ थिर हो जाए। अगर मैं आपसे प्रेम करूं, तो मैं कहूंगा कि यह मेरा प्रेम शाश्वत है, सदा रहेगा। सभी प्रेमी कहते हैं। और कोई चीज इस जगत में शाश्वत नहीं है। मजा तो यह है कि जितनी देर लगेगी यह बात कहने में कि यह प्रेम शाश्वत है और सदा रहेगा, और चांदत्तारे मिट जाएं, लेकिन यह प्रेम नहीं मिटेगा--शायद इतना कहने में जितनी देर लगी, उतने में ही मिट गया हो।

लेकिन कोशिश चलती है कि प्रेम को हम थिर बना लें, इटरनल बना लें। फिर दुख लगता है। क्योंकि जो थिर नहीं है, वह थिर नहीं हो सकता। जो क्षणभंगुर है, वह क्षणभंगुर रहेगा। वह उसका अंतर-स्वभाव है।

इस जगत की प्रत्येक वस्तु का स्वभाव क्षणभंगुर है। जवान रहना चाहें सदा, न रह पाएंगे। प्रसन्न रहना चाहें सदा, न रह पाएंगे। मजा तो यह है कि अगर दुखी भी रहना चाहें सदा, तो न रह पाएंगे। दुख भी क्षणभंगुर है। वह भी बदलता रहेगा। वह भी बदलता रहेगा। यहां सभी कुछ बदलता हुआ है, फ्लक्स है।

हेराक्लतु यूनान का बहुत विचारशील मनीषी कहता था, यू कैन नाट स्टेप ट्वाइस इन दि सेम रिवर--एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। क्योंकि जब तक उतरे, नदी बह गई। दुबारा कैसे उतरिएगा? सच तो यह है कि हेराक्लतु मुझे मिल जाए, तो उससे कहूं कि यू कैन नाट स्टेप इन दि सेम रिवर ईवेन वंस--एक बार भी नहीं उतर सकते हो एक ही नदी में। क्योंकि पैर जब नदी की ऊपर की सतह छूता है, तो नीचे की नदी भागी जा रही है। पैर जब नीचे जाता है, ऊपर की सतह भाग गई!

एक ही पर्त, एक फीट पानी की पर्त को भी एक साथ नहीं छुआ जा सकता। सब भागा जा रहा है। और पूरा जीवन नदी की तरह है। इस भागने में हम स्थायी घर बनाने की कामना करते हैं। दुख बनेगा, घर नहीं बनेगा; दुख का घर बनेगा।

हमारा सारा दुख इस बात से पैदा होता है कि हम, थिर जो नहीं है, उसको सब जगह थिर कर लेना चाहते हैं। कहते हैं, मेरा प्रेम थिर रहेगा। मां कहती है कि मेरा बेटा है; यह प्रेम सदा रहेगा। लेकिन कल एक नई लड़की को लेकर बेटा घर लौट आता है और पता चलता है, मां उस बेटे की आंखों में अब दिखाई ही नहीं पड़ती! धक्का लगता है। दुख आता है।

लेकिन दुख के लिए बेटा जिम्मेवार नहीं है। दुख के लिए मां की वह कामना जिम्मेवार है, जो सोचती थी कि प्रेम थिर रहेगा। इस बेटे ने जब उसके आंचल में सिर रखकर मुस्कुराया था और प्रेम से उसे देखा था, वह अभी भी उसी को थिर रखने की कोशिश में लगी है। वह वासना अब दुख देगी।

आज जिस पत्नी को लेकर यह घर में चला आया है, उसकी उमंग का कोई अंत नहीं है, उसके पैर जमीन से नहीं लगते हैं। क्योंकि आज वह रानी हो गई है। और इस युवक ने उसे कहा है कि तुझसे ज्यादा सुंदर और कोई भी नहीं है। और मैं मर जाऊं, लेकिन सोच भी नहीं सकता कि कभी मेरे प्रेम में क्षणभर की भी, कणभर की भी कमी होगी। लेकिन कल वही पाएगी कि उसके साथ चलते रास्ते पर किसी और स्त्री पर उसकी आंख गई है। और उस क्षण में वह उसे भूल ही गया है कि वह पास भी है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है अपनी पत्नी के साथ। अभी सात ही दिन हुए हैं विवाह हुए। और एक सुंदर युवती उसे दिखाई पड़ती है, और उसकी आंखें टकटकी लगाकर रह जाती हैं। उसकी पत्नी उसे बीच-बीच में हिलाती है, जैसा कि सभी पत्नियां पतियों को हिलाती रहती हैं। क्या कर रहे हो? भूल गए क्या कि अब तुम विवाहित हो! नसरुद्दीन ने कहा, ऐसे वक्त में तो बहुत ज्यादा याद आता है कि अब मैं विवाहित हूं! भूल नहीं गया हूं। ऐसे क्षण में ही काफी याद आता है कि नाउ आई एम मैरिड!

अभी सात दिन पहले इस आदमी ने क्या कहा था? नहीं, इसका कोई कसूर नहीं है। कुछ भी थिर नहीं है इस जगत में। कहे हुए वचन थिर नहीं, दिए गए वायदे थिर नहीं, क्योंकि देने वाला आदमी ही थिर नहीं है।

ईसाइयों का एक संप्रदाय है, क्वेकर। क्वेकर किसी को प्रामिस नहीं देते; वे किसी को वचन नहीं देते। क्योंकि वे कहते हैं, वचन देने वाला ही जब थिर नहीं है, तो वचन हम क्या दें! क्वेकर अदालत में कसम नहीं खाते; ओथ नहीं लेते। अदालत में क्वेकर कसम नहीं खाता कि मैं कसम खाता हूं कि सच ही बोलूंगा। क्योंकि क्वेकर कहते हैं, जिसने कसम खाई, वह बचेगा क्षणभर बाद?

सब बहा जा रहा है। इस बहाव में हम सब कोशिश में लगे हैं ठहर जाने की, ठहर जाएं! बस, दुख पैदा होगा। तंबू गाड़ रहे हैं बहती हुई नदी की धार पर। फंसेंगे मुसीबत में। तंबू में डूबेंगे खुद और। खूंटियां नहीं गाड़ी जातीं पानी पर और न तंबू खड़े किए जाते हैं। और स्थिर तंबू, शाश्वत तंबू खड़े करने की कोशिश चलती है, तो दुख आता है।

दुख, क्षणभंगुर जीवन के स्वभाव में शाश्वत को बनाने की चेष्टा का फल है। अनित्य है जो, उसमें नित्य को खड़ा करने की जो वासना है, वही दुख बन जाती है। लेकिन जो क्षण को क्षण जैसा जान ले, उसके दुखी होने का फिर कोई कारण नहीं। क्योंकि वह आकांक्षा ही नहीं करता उसकी, जो विपरीत है।

कृष्ण कहते हैं, वे जो परम सिद्धि को प्राप्त होते महात्माजन, मुझे प्राप्त होकर क्षणभंगुर पुनर्जन्म को उपलब्ध नहीं होते।

क्योंकि जिसने भी प्रभु को जाना–प्रभु को अर्थात शाश्वत को, नित्य को, इटरनल को, वह जो सदा है–वह फिर क्षणभंगुर की कामना नहीं करता। जिसे ठोस लोहे के महल मिल गए हों, वह ताश के पत्तों के घरों में रहने की कोशिश नहीं करता।

मैं सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं। ऐसे तो लोहे के ठोस घर भी ताश के ही घर हैं। समय का ही फासला है। ताश का घर, हवा का एक झोंका आता है, और गिर जाता है। लोहे के घर लाख-करोड़ झोंके आएंगे, तब गिरेगा। क्वांटिटी का फर्क है, क्वालिटी का कोई फर्क नहीं है। चाहे रेत का घर बनाएं और चाहे सीमेंट-कांक्रीट का; रेत का घर एकाध झोंके में गिर जाएगा, सीमेंट-कांक्रीट का घर गिरने में जरा ज्यादा देर लेगा। बस, देर का ही फर्क है, टाइम का ही फर्क है। वह भी गिर जाएगा। क्योंकि सीमेंट-कांक्रीट भी रेत से ज्यादा और कुछ भी नहीं है।

लेकिन जिसने एक कण भी अनुभव कर लिया हो उसका, जो शाश्वत है, उसके लिए सारा जगत उसी क्षण स्वप्नवत हो जाता है। फिर उसमें उसकी कामना नहीं रह जाती है।

बुद्ध को जिस दिन अनुभव हुआ समाधि का, उनके मुंह से जो पहला वचन निकला, वह यह था कि हे मेरे मन, अब मैं तुझे विश्राम देने को तैयार हूं, क्योंकि अब मुझे और जीवन के घर बनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। नाउ आई कैन रिटायर यू। हे मेरे मन, अब तुम्हें मैं छुट्टी दे सकता हूं, क्योंकि अब तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।

मन तो राज है; बनाता है भवन। बुद्ध कहते हैं, अब कोई जरूरत नहीं रही और नए घर बनाने की जीवन के। अब मैंने उसे जान लिया, जो शाश्वत घर है–दि इटरनल होम।

उसकी प्रतीति हो, उसी को कृष्ण कहते हैं, मुझे पाकर वे महात्माजन फिर क्षणभंगुर पुनर्जन्म की वासना नहीं करते। और वासना नहीं, तो पुनर्जन्म की पुनरुक्ति नहीं। क्योंकि हे अर्जुन, ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावृत्ति वाले हैं, रिपिटीटिव हैं।

यह बहुत मजे का वचन है। इसे हम अपनी तरफ से समझें, तो आसानी हो जाएगी। क्या आपको पता है, सभी वासनाएं रिपिटीटिव हैं? आप बहुत-सी वासनाएं नहीं कर रहे हैं, एक-एक वासना को हजार-हजार बार दोहरा रहे हैं। और बड़ा मजा यह है कि हर बार दोहराकर कहते हैं, कुछ नहीं पाया। और चौबीस घंटेभर बाद फिर दोहराने को तैयार खड़े हैं। बड़े अजीब हैं!

अपनी भी याद नहीं रहती कि चौबीस घंटे पहले क्या कहा था! कितनी बार आपने क्रोध किया है? और हर क्रोध के बाद कितनी बार आप पछताए हैं? शायद क्रोध से ज्यादा पछताए होंगे। क्योंकि आदमी एक दफे क्रोध करता है, तो पीछे पांच-सात दफे पछताता है। लेकिन यह पछताना क्रोध के आने में रुकावट नहीं बनती। बल्कि जो जानते हैं, वे कहते हैं, यह पछतावा फिर से क्रोध करने की तैयारी है।

यह ऐसे ही है, जैसे मैं वृक्ष की एक शाखा को अपने हाथ में खींचकर छोड़ दूं, तो वह ठीक से एकदम अपनी जगह पर नहीं पहुंचेगी। जब मैं उसे छोड़ूंगा, तब वह अपनी जगह से आगे निकल जाएगी, दूसरी एक्सट्रीम पर। अगर मैं वृक्ष की शाखा को खींचकर छोड़ूं, तो वह ठीक उसी जगह नहीं पहुंच जाएगी, जहां से मैं उसे खींच लाया था। जब मैं उसे छोड़ूंगा, तो वह अपनी जगह से और आगे निकल जाएगी उतनी ही दूर, जितनी दूर मैं इस तरफ खींच लाया था। क्यों?

वह अपनी जगह पर लौटने की तैयारी कर रही है। फिर वापस आएगी। फिर थोड़ी दूर इस तरफ आएगी, फिर वापस जाएगी। फिर थोड़ी दूर उस तरफ जाएगी। इस तरह कंपते-कंपते, कंपते-कंपते वह वापस अपनी जगह पर पहुंच जाएगी।

यह जो कंपन है, यह कंपन मैंने उसे खींचकर जो ताकत अपने हाथ की दे दी थी, उसको फेंकने के लिए है; अपने से बाहर फेंकने के लिए है–जस्ट ट्रेंबलिंग। यह उस ऊर्जा को बाहर फेंक रही है वह शाखा, जो मेरे हाथ ने खींचकर तनाव के द्वारा उसे दे दी थी, ताकि वह अपनी जगह पर पहुंच जाए।

जब आप क्रोध में तन जाते हैं, तत्काल आपको पश्चात्ताप की अति पर जाना पड़ता है। यह सिर्फ अपनी जगह पर वापस लौटने के लिए है, दि स्टेटस-को। वह जो पहली स्थिति थी क्रोध के पहले आपके मन की, उस तक आने के लिए। क्रोध कर लिया, एक सीमा में खिंच गए। अब पश्चात्ताप कर लिया, अब दूसरी तरफ चले गए। फिर क्रोध-पश्चात्ताप दोनों के बीच डोलते-डोलते अपनी जगह वापस आ गए। नाउ यू

कैन बी एंग्री अगेन--अब आप फिर से क्रोध कर सकते हैं। क्योंकि आपने पुरानी स्थिति पा ली, जहां आप क्रोध के पहले थे। उस स्थान पर आप पुनः पहुंच गए।

आप शायद सोचते होंगे, पश्चात्ताप इसलिए करते हैं, ताकि दुबारा क्रोध न करें, तो आप गलती में हैं; आपको जीवन के सत्यों का कोई भी पता नहीं है। पश्चात्ताप आदमी इसीलिए करता है, ताकि फिर क्रोध कर सके। यह बहुत उलटा लगेगा। लेकिन आपका अनुभव भी यही कहेगा।

तो मैं तो आपसे कहूंगा, अगर क्रोध से मुक्त होना हो, तो अब की बार क्रोध करना, पश्चात्ताप मत करना। फिर देखें, क्रोध दुबारा आता है कि नहीं! अगर पश्चात्ताप से बच गए, तो फिर क्रोध को दोहरा न सकेंगे, क्योंकि क्रोध के लिए पुरानी स्थिति उपलब्ध नहीं होगी।

लेकिन पश्चात्ताप से बचना उतना ही मुश्किल है, जितना क्रोध से बचना मुश्किल है। दोनों अनकांशस हैं, दोनों अचेतन हैं। आप कहते हैं, क्या करें, क्रोध आ ही गया! फिर ऐसे ही, क्या करें, पश्चात्ताप आ ही गया! दोनों एक साथ चलते रहेंगे।

लेकिन क्रोध करके आपने कुछ पाया है? कुछ मिला? कोई रत्न हाथ लगा? कहेंगे, कुछ भी नहीं पाया; सिर्फ राख हाथ लगती है; और अपना ही पतित मन हाथ लगता है। गङ्ढे में गिर गए। अपने ही हाथ से कीचड़ से भर गए। ऐसा हो जाता है।

लेकिन दुबारा फिर क्रोध क्यों करते हैं? क्योंकि वासना रिपिटीटिव है। चौबीस घंटे में फिर भूल जाते हैं। फिर वासना मांग करती है। कामवासना से भरता है चित्त।

अगर वैज्ञानिक हिसाब से सोचें, तो एक आदमी साधारणतः अपने जीवन में चार हजार बार संभोग करता है। साधारणतः। यह साधारण आदमी की बात कर रहा हूं, असाधारण का हिसाब लगाना मुश्किल है। बिलकुल कामन आदमी, साधारण आदमी चार हजार बार अपने जीवन में संभोग करता है। और चार हजार बार करने के बाद भी, नहीं करना चाहता, ऐसा नहीं है। नहीं कर पाता, यह दूसरी बात है। करना तो चाहता ही है।

मुल्ला ने आखिरी-आखिरी उम्र में, सत्तर साल में फिर से शादी करने का विचार किया। बेटों ने समझाया, बेटों के बेटों ने समझाया कि अब ऐसा मत करिए। और बड़ी कठिनाई यह थी कि जिससे शादी करने का तय किया, वह केवल बीस बरस की लड़की थी। तो सबने कहा, ऐसा मत करिए। पर वासना को रोको अगर, तो और क्रुद्ध होकर, और उफान खाकर उबलती है। मुल्ला कहने लगा, मेरे घर के, इनको मैंने पैदा किया और ये मेरे दुश्मन हो गए! तुमसे मैं ज्यादा जानता हूं।

आखिर कोई रास्ता नहीं था। बच्चे ही थे घर में। सभी उससे तो कम उम्र ही थे। उसके किसी मित्र को खोजा, बूढ़े आदमी को खोजा। वह गांव का धर्मगुरु था। उसे लाए। उस धर्मगुरु ने नसरुद्दीन से कहा, नसरुद्दीन, थोड़ा तो सोचो। अपना ही सोचो, दूसरे का मत सोचो। यह सत्तर साल की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी करना खतरनाक हो सकता है। मृत्यु भी हो सकती है। नसरुद्दीन ने कहा, तो फिर दूसरी कर लेंगे!

उसने समझा कि लड़की की मृत्यु! उसने कहा, फिर दूसरी कर लेंगे। इसमें इतनी चिंता की क्या बात है? वह बूढ़ा समझा रहा था कि तुम मर सकते हो, इस उपद्रव में मत फंसो। नसरुद्दीन बोला, तो दूसरी कर लेंगे! सत्तर साल में भी नहीं जाती वह बात।

अमेरिका का, कुछ दिनों पहले, एक बहुत बड़ा, सुप्रीम कोर्ट का प्रधान न्यायाधीश था, जज लिन्डसे। वह जब नब्बे साल का हो गया, तो निकल रहा था एक रास्ते से अपने मित्र के साथ। वह मित्र भी कोई अस्सी साल का था। एक सुंदर कुमारी रास्ते से निकली, लिन्डसे खड़ा हो गया। नब्बे साल का बूढ़ा आदमी। उसने लड़की को गौर से देखा और अपने साथी से कहा, मन होता है, काश मैं फिर से सत्तर साल का हो सकता! कहा, काश मैं फिर से सत्तर साल का हो सकता।

उसका मित्र थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि सत्तर साल के? तो लिन्डसे ने कहा, सत्तर साल का जब तक मैं था, तब तक मेरे शरीर में वासना भलीभांति दौड़ रही थी। अब सब राख रह गई है।

नब्बे साल का आदमी भी सत्तर साल का होना चाहता है! नब्बे साल के आदमी के लिए सत्तर साल भी जवानी ही मालूम पड़ेगी।

यह जो हमारा चित्त है पुनरुक्ति की मांग करने वाला, यही चित्त पुनर्जन्म को मांगता। और यही चित्त फिर पुनर्जन्म में फिर वही मांगता है, जो वह पीछे अनेक दफे मांग चुका है।

महावीर के पास कोई भी साधक आता, तो वे उससे कहते थे, इसके पहले कि मैं तुझे साधना में उतारूं, तेरे पिछले जन्मों की याददाश्त में उतारना जरूरी है। वह साधक कहता, उससे क्या लेना-देना? महावीर कहते, उसके बिना तू कभी समाधि को नहीं उपलब्ध हो सकेगा।

तो महावीर उसे पहले उसके पिछले जन्मों की याददाश्त में ले जाते। और याददाश्त करते-करते ही, पिछले जन्मों में उतरते-उतरते ही वह आदमी ट्रांसफार्म हो जाता, रूपांतरित हो जाता। महावीर उससे कहते कि बोल, क्या तूने देखा? तो वह कहता कि अब कुछ छोड़ने को बचा नहीं, क्योंकि सब मैं अनेक बार कर चुका हूं और फिर वही मांग कर रहा हूं। और इतनी बार करके जब नहीं पाया, तो अब भी करके पा नहीं सकूंगा। नहीं, मन अब मेरा खाली है। अब मैं ध्यान के लिए तत्पर हूं।

तो महावीर ने अनिवार्य कर दिया था हर साधक के लिए, पहले जाति-स्मरण–रिमेंबरिंग आफ पास्ट लाइव्स–और फिर ध्यान।

महावीर की जगत को जो सबसे बड़ी देन है, वह जाति-स्मरण है, अहिंसा नहीं। अहिंसा बहुत पुरानी बात है। सदा से लोग कहते रहे हैं। उसमें कुछ महावीर का नया नहीं है। पर महावीर की जो मौलिक, ओरिजिनल कांट्रिब्यूशन है मनुष्य को, वह है जाति-स्मरण की प्रक्रिया, पिछले जन्म की याददाश्त।

और एक बार पिछले जन्मों की याददाश्त आ जाए, तो आप खुद ही कहेंगे, यह मैं क्या कर रहा हूं? एक जन्म में चार हजार दफे संभोग किया; और हजारों जन्म हो चुके, करोड़ों बार संभोग किया; और अब तक कुछ पाया नहीं। अब फिर आज संभोग करना है? फिर आज संभोग में उतरना है? क्या फिर भी उतर पाएंगे?

कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ कहा नहीं जा सकता। शायद मन कहे कि पता नहीं, अब तक न हुआ हो अनुभव आनंद का, एकाध बार और। कह सकता है मन कि क्या पता, अब तक न हुआ हो, एकाध बार और। लेकिन मुश्किल हो जाएगा कहना। अगर इतना याद आ जाए, तो मुश्किल हो जाएगा।

जीवन पुनरुक्ति है। इसलिए पूरब ने जीवन को एक वर्तुल, चक्र की तरह पाया है। वह जो भारत के ध्वज पर अशोक चक्र है, वह पता नहीं नेहरूजी ने चुन तो लिया, उन्हें पता भी था कि नहीं कि वह संसार का चित्र है। संसार को हमने एक व्हील, एक गाड़ी के चक्के की तरह समझा है। और इसलिए समझा है कि गाड़ी के चक्के में जो आरा अभी ऊपर दिखाई पड़ रहा है, जो स्पोक ऊपर दिखाई पड़ रहा है, वह थोड़ी देर में नीचे चला जाएगा, और फिर ऊपर आ जाएगा। वे ही आरे बार-बार घूमते रहेंगे। वे ही वासनाएं बार-बार चक्के कि तरह घूमती रहेंगी। वे ही वृत्तियां बार-बार पुनरुक्त होती रहेंगी।

जीवन एक चक्र है। संसार शब्द का अर्थ ही होता है, दि व्हील, चक्र, जो घूमता रहता है। उसमें कुछ भी नया नहीं है। इस संसार में कुछ भी नया नहीं है, क्योंकि इस संसार की पूरी व्यवस्था ही पुनरुक्ति की है, रिपीटीशन की है। लेकिन हर बार ऐसा लगता है कि कुछ नया हो रहा है।

जब कोई नया युवक प्रेम में पड़ता है, तो आपको पता है, वह सोच सकता है कि पहले भी किसी ने प्रेम किया होगा जमीन पर? कभी नहीं। पहली दफा प्रेम घट रहा है! और जब पहली दफे कोई कवि कोई कविता गुनगुनाता है, तो वह मान सकता है कि कोई और भी कवि हुआ होगा कभी? नहीं मान सकता। यही नहीं मानने के लिए तो बेचारा कहता है कि पुराने काव्य में क्या रखा है! नए काव्य की बात ही और है। यह काव्य ही और है।

जब कोई नया विचारक एकाध सूझ की बात करता है, तो शायद सोचता है, बड़ा मौलिक, बहुत ओरिजिनल बात कह रहा है। वही भूल; वही भूल। जब कोई क्रांतिकारी खड़े होकर कहता है कि दुनिया को बदल देंगे; नई दुनिया चाहिए; तो उसे पता नहीं कि यह बात हजारों दफे आदमी कह चुका है।

मैंने तो सुना है, अदम और ईव, जब पहली दफा इदन के बगीचे से परमात्मा ने उनको निकाला, तो दरवाजे पर उन्होंने जो पहला शब्द कहा, वह यह कहा कि नाउ वी आर पासिंग थ्रू ए रेवोल्यूशन–हम एक क्रांति से गुजर रहे हैं। पहले आदमी ने जो पहली बात कही अपनी पत्नी से, वह यह थी कि अब हम एक बड़ी क्रांति से...। और सच, इससे बड़ी क्रांति क्या हो सकती है, स्वर्ग के दरवाजे से निकाला जाना!

लेकिन क्रांतिकारी सोचता है कि मुझसे पहले कोई क्रांतिकारी नहीं हुआ। सभी क्रांतिकारी ऐसा ही सोचते रहे हैं। क्रांति से पुरानी चीज दुनिया में खोजनी मुश्किल है, दि ओल्डेस्ट। और मौलिक होने का दावा इतना सनातन है कि सिर्फ नासमझ कर सकते हैं। समझदार कोई मौलिक होने का दावा नहीं कर सकता।

कुछ भी नया नहीं है। लेकिन जब नया आरा ऊपर आता है, तो बड़ा नया मालूम पड़ता है। हो सकता है, हमने दूसरे आरे देखे ही न हों। और यह भी हो सकता है कि हमने देखे भी हों, तो हम भूल गए हों; हमारी स्मृति बड़ी कमजोर है।

वोल्तेयर की किसी मामले में बहुत बदनामी हो गई थी फ्रांस में। तो वोल्तेयर के मित्रों ने कहा कि कुछ उपाय करो। इस बदनामी को मिटाने का कुछ इंतजाम करो। कोई वक्तव्य दो। वोल्तेयर ने कहा, पंद्रह दिन हो गए बदनामी हुए, लोग अब तक भूल भी चुके होंगे। मेरे वक्तव्य से नाहक फिर याद आ जाएगी! जाने दें।

यही है सच। स्मृति ही कितनी है!

एक आदमी मेरे पास आए। बहुत विचारशील हैं, सुशिक्षित हैं। एक राज्य के शिक्षा मंत्री हैं। मुझसे उन्होंने कहा कि मुझे न परमात्मा की तलाश है, न किसी आत्मा की खोज, न मुझे मोक्ष चाहिए। मैं आपके पास सिर्फ इसलिए आया हूं कि मुझे नींद नहीं आती। अगर मुझे नींद आ जाए, तो मैं आपका परम ऋणी रहूंगा। बस मुझे इतना ही कुछ ध्यान करवा दें कि मुझे नींद आने लगे।

मैंने कहा, यह तो बहुत ही आसान है। नींद आने से ज्यादा आसान और क्या बात हो सकती है! सब भांति सोए हुए आदमी को नींद लगवा देना कोई कठिन बात है। जगाना मुश्किल है! आप तो ऐसे काम के लिए आए, जो हो जाएगा। पर मैंने कहा कि ठीक कह रहे हैं, आपको कुछ और नहीं, सिर्फ नींद चाहिए? उन्होंने कहा, बस, इसी पर मेरे प्राण अटके हैं। ऐसा हो जाता है रात जागते-जागते कई दफे कि सिर फोड़ लूं, मर जाऊं। यह क्या कर रहा हूं! सब सो रहे हैं और मैं जग रहा हूं!

और बड़ा मजा यह है कि जगने वाले को तकलीफ इससे जरा कम होती है कि वह जग रहा है, इससे जरा ज्यादा होती है कि सब सो रहे हैं! अगर सब जग रहे हों...।

मैंने उन्हें कहा, तो एक बहुत छोटा-सा प्रयोग कर लें। इतना छोटा-सा प्रयोग कर लें रात सोते वक्त। अब तक आपने सोने की कोशिश की है और नींद नहीं आई। आज से आप जगने की कोशिश करें, सोने की नहीं। उन्होंने कहा, इससे क्या होगा! वैसे ही तो नींद नहीं आती, और जगने की कोशिश! मैंने कहा कि मैं सिर्फ आपके गणित को उलटा कर रहा हूं। आप अब तक सोने की कोशिश करते रहे और नींद नहीं आई। मैं कहता हूं, आप जगने की कोशिश करें। नींद न आ पाए, इसका खयाल रखें। जैसे ही नींद आए, पानी छिड़कें, उठकर खड़े हो जाएं, झटका मारें, व्यायाम करें; लेकिन नींद न आने दें।

वे तीसरे-चौथे दिन मेरे पास आए। कहने लगे, क्या गजब कर दिया! ऐसी नींद आ रही है, कि घोड़े बेचकर सो रहे हैं। लेकिन सिर्फ नींद आ रही है, और कुछ भी नहीं हो रहा! उन्होंने मुझसे कहा, सिर्फ नींद आ रही है, और कुछ भी नहीं हो रहा! मैंने उनसे कहा, चार दिन पहले आप कहते थे, न मुझे ईश्वर चाहिए, न मोक्ष, न आत्मा। सिर्फ नींद आ जाए, सब कुछ आ गया। और अब आप ही चार दिन बाद मुझसे कह रहे हैं कि सिर्फ नींद आ रही है और कुछ नहीं हो रहा है!

आदमी की स्मृति इतनी कमजोर है। कुछ भरोसा नहीं कि आप जो अभी जान रहे हैं, क्षणभर बाद भी जान सकेंगे! भूल जाएंगे। इसलिए हमें नया मालूम पड़ता है कि देखो, यह कितनी नई बात है।

अगर कृष्णमूर्ति कहते हैं कि कोई गुरु नहीं, तो लगता है, बहुत नई बात है। सभी गुरुओं ने सदा यही कहा है। असल में इस दुनिया में कोई आदमी गुरु हो ही नहीं सकता, जिसको इतना भी पता न हो कि बिना गुरु के ज्ञान हो सकता है। गुरु को तो पता होता ही है। शिष्य को पता नहीं होता। उसकी बात अलग है। उसको कहने से भी पता नहीं होता। उसको कहे चले जाओ। शिष्य से अगर कहो कि गुरु बनाने की कोई जरूरत नहीं। ज्यादा कहो, तो वह तुम्हीं को गुरु बना लेता है कि ठीक है, आप ही हमारे गुरु हुए और यही हमारा सिद्धांत हुआ कि गुरु बनाने की कोई जरूरत नहीं।

कृष्णमूर्ति के पीछे ऐसे ही लोग इकट्ठे हो गए हैं। वे कहते हैं कि बिलकुल ठीक। चालीस साल से हम आपको ही सुनते हैं। आप बिलकुल ठीक कहते हैं। गुरु की बिलकुल जरूरत नहीं। तो चालीस साल से इस बेचारे का पीछा क्यों कर रहे हो!

इस जगत में कुछ भी नया नहीं है। मौलिक का दावा निपट अज्ञान है। लेकिन वक्त लग जाता है; वक्त लग जाता है। पक्षी हैं, जो एक ही मौसम में मर जाते हैं। कुछ कीड़े हैं, पतंगे हैं, जो वसंत में पैदा होते हैं और दुबारा वसंत नहीं देखते, मर जाते हैं। लेकिन उनके अंडे पड़े रहते हैं। दुबारा वसंत आता है, उन अंडों में से फिर पतंगे निकलते हैं। उड़ते हैं फूलों के पास और सोचते हैं कि जगत में, जीवन में, अस्तित्व में, पहली दफा वसंत आया है। फिर मर जाते हैं, फिर अंडे छोड़ जाते हैं। फिर वसंत आता है, फिर उनके बच्चे उड़ते हैं, और फिर वही बात कहते हैं, जो सदा-सदा कही गई है–वसंत पहली बार आया है; ऐसा वसंत कभी नहीं आया।

आदमी की स्मृति कमजोर। समय का वर्तुल बड़ा। आदमी चुक जाता है, आरे घूमते रहते हैं। यहां कुछ भी नया नहीं है, सब पुराना दोहर रहा है। सब पुराना दोहर रहा है। सब पुराना लौट-लौटकर आ जाता है।

कृष्ण कहते हैं, ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक रिपिटीटिव हैं, पुनरावर्ती हैं। वापस लौट-लौटकर वही-वही होता रहता है, वही-वही होता रहता है।

नीत्शे बहुत अदभुत बात कहता था इस संबंध में, किसी ने उसकी सुनी नहीं। मानने जैसी भी नहीं; थोड़ी घबड़ाने जैसी भी है। लेकिन भारतीय प्रतिभा उसकी बात को समझ सकती है। नीत्शे कहता था, ऐसा भी नहीं है कि पहले कोई दूसरे लोग हुए हैं; हम ही लोग! और ठीक ऐसा ही जगत हम बार-बार दोहराते रहे हैं; हम ही लोग! अगर नीत्शे को समझना हो, तो ऐसा समझें। यह सभा इस जमीन पर आज जो हो रही, आज ही नहीं हो रही। नीत्शे कहता था, यह सभा बहुत बार इन्हीं लोगों को लेकर, इसी बोलने वाले को लेकर, इन्हीं सुनने वालों को लेकर बहुत बार हो चुकी है।

घबड़ाने वाली है यह बात, घबड़ाने वाली बात है। लेकिन जगत इतना रिपिटीटिव है कि हो सकता है, नीत्शे भी सही हो। इसमें कोई अड़चन नहीं है। चीजें इतनी दोहरती हैं बार-बार, तो यह हो सकता है कि हम बहुत बार यही लोग, इसी भांति, इसी जमीन के टुकड़े पर बहुत बार मिल चुके हों। याददाश्त कमजोर है। फिर दुबारा मिलते हैं, और लगता है, फिर सब नया हो रहा है।

बुद्ध ने कहा है कि मैं और भी पहले बहुत बार इन्हीं बातों को तुमसे कहा हूं। क्राइस्ट ने कहा है, मैं कोई पहला नहीं हूं, जो इन बातों को कहने आया हूं। मुझसे पहले और लोग भी यही कह चुके हैं। क्राइस्ट ने कहा है, मैं कोई नई बात कहने नहीं आया, आइ हैव कम टु फुलफिल दि प्रोफेसीज आफ दि ओल्ड। वे जो पुराने वक्तव्य हैं, घोषणाएं हैं, उन्हीं को पूरा करने आया हूं। मोहम्मद ने भी कहा है, मैं नया नहीं हूं। मुझसे पहले और लोग आए हैं। उसमें एक इशारा तो बुद्ध की तरफ है। क्योंकि कहा है कि वट वृक्ष के नीचे बैठकर भी एक आदमी ने ऐसी कुछ बातें कही हैं, बोधि वृक्ष के नीचे बैठकर ऐसी कुछ बातें कही हैं।

इस जगत में कुछ भी नया नहीं है। लेकिन सब नया मालूम पड़ता है, क्योंकि हमारे लिए पहली दफा दिखाई पड़ता है। यह हम भूल गए होते हैं, और पहली दफे दिखाई पड़ता हुआ मालूम पड़ता है।

ब्रह्मलोक तक, कृष्ण कहते हैं, सब लोक, ब्रह्मलोक तक...।

असल में जहां तक लोक हैं, जहां तक जगत की पर्तें हैं, चाहे हम उसे ब्रह्मलोक ही क्यों न कहें, अंतिम लोक, वहां तक भी पुनरुक्ति ही होती रहती है। फिर पुनरुक्ति कहां बंद होती है? उसे कहा है ज्ञानियों ने अलोक, नान-वर्ल्ड, नो वर्ल्ड। जहां तक जगत हैं, वहां तक लोक हैं, फिर अलोक है। वह अलोक में ही प्रवेश परमात्मा में प्रवेश है। वहां पुनरुक्ति नहीं है।

ध्यान रखें, यहां सब कुछ पुराना है; वहां सब कुछ नया। यहां सब कुछ पुराना है; वहां सब कुछ नया। यहां सब कुछ बासा है; वहां सब कुछ ताजा। यहां सब कुछ बूढ़ा है; वहां सब कुछ युवा, फ्रेश, ताजा। जैसे सुबह ओस की बूंद, सुबह-सुबह खिला हुआ फूल--बस, खिला ही रह जाए और कभी सांझ न आए, और कभी दोपहरी न हो, और फूल कभी मुरझाए न, और फूल कभी वापस धूल में न गिरे। बस, वह ताजगी ताजी ही रह जाए, वैसी ही युवा, वैसी ही युवा सदा-सदा के लिए। जैसे कोई गीत की कड़ी गूंजे, और गूंजती ही रहे, गूंजती ही रहे, गूंजती ही रहे; फिर कभी समाप्त न हो।

लेकिन यह तो वहीं हो सकता है, जहां कुछ भी कभी शुरू न हुआ हो। लोक में सभी कुछ पुनरुक्त होता है, पुराना है। लोक के पार परमात्मा में सभी कुछ नया है, कुछ भी पुनरुक्त नहीं होता। वहां सभी कुछ नया है, सभी कुछ ताजा है। इस ताजगी की, इस निर्दोष ताजगी की, इस कुंआरेपन की जो उपलब्धि है, वह आनंद है। और इस पुराने की, बासे की, पुनरुक्ति की, बार-बार इसी में सड़ने और घूमने की जो प्रतीति है, वह दुख है।

परंतु हे कुंतीपुत्र, मेरे को प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता।

परमात्मा को पा लेने के बाद पा लेने को बचता क्या है, जिसके लिए जन्म की और जीवन की जरूरत पड़े, समय की जरूरत पड़े!

हे अर्जुन, ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको हजार युग तक अवधि वाला और एक रात्रि जो है, वह भी हजार युग अवधि वाली, ऐसा जो पुरुष तत्व से जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं।

यह आज के लिए अंतिम सूत्र।

मैंने समय के बाबत थोड़ी बात आपसे कही। यहां समय के बाबत और भी कुछ बातें कृष्ण ने कहीं। और कहा कि इस काल के रहस्य को जो जान लेता है, वही जानने वाला है। यह काल का रहस्य क्या है? व्हाट इज़ दिस मिस्ट्री आफ टाइम? क्या है समय का राज? तो दोत्तीन बातें खयाल में लें।

एक, कभी आपने खयाल किया, कुर्सी पर बैठे-बैठे झपकी लग गई और आपने एक लंबा सपना देखा। लंबा--कि चालीस साल लग जाएं उस सपने के पूरे होने में। कि आप बच्चे थे, और बड़े हुए, और जवान हुए, और प्रेम में पड़े, और विवाह हुआ, और बच्चे हुए, और अब

आप अपने बच्चे की शादी करके बारात लिए जा रहे हैं, तभी बैंड-बाजे के शोर में नींद खुल गई। लेकिन घड़ी में देखते हैं, तो लगता है, केवल मिनटभर सोए थे। तो मिनटभर में यह चालीस साल का विस्तार कैसे देखा जा सका!

एक मिनट है बाहर के लिए जो, सपने के लिए चालीस साल हो सकता है। समय बड़ी अदभुत चीज है। बड़ी अदभुत चीज है। इसे छोड़ें।

आइंस्टीन कहता था कि जगत में सभी कुछ सापेक्ष है, समय भी। तो कई लोग उससे पूछ लेते थे कि सापेक्षता, रिलेटिविटी का क्या अर्थ है? तो आइंस्टीन का सिद्धांत तो बहुत दुरूह है। कहते हैं, जब वह जीवित था, तो दस-बारह लोग ही सारी जमीन पर उसके सिद्धांत को समझते थे। और ये दस-बारह भी इस मामले में राजी नहीं थे कि बाकी समझते हैं कि नहीं समझते! वह दुरूह है; गणित की गहनतम पहेली है।

लेकिन आम जन को भी समझाना पड़ता था आइंस्टीन को। तो वह कहता था, ऐसा समझो कि तुम अगर एक गरम आग से तपे हुए चूल्हे पर बिठा दिए जाओ, तो क्षणभर भी घंटों लंबा लगेगा। और अगर तुम्हारा बहुत दिन का बिछुड़ा हुआ प्रियजन तुम्हें मिल जाए और उसके हाथ में हाथ डालकर तुम बैठे रहो, तो घंटाभर भी क्षणभर जैसा लगेगा।

समय की प्रतीति चित्त पर निर्भर है। कभी आपने शायद खयाल न किया हो, दुख में समय बहुत लंबा मालूम पड़ता है। घर में कोई मर रहा है। बिस्तर पर पड़ा है। चिकित्सक कहते हैं, बस आखिरी रात है। बहुत लंबी लगती है रात। ऐसा लगता है, कभी समाप्त न होगी। लेकिन सुख की स्थिति हो, चित्त प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, तो रात ऐसे बीत जाती है कि जैसे समय ने कुछ बेईमानी की और घड़ी के कांटे को जल्दी घुमाया।

नहीं, घड़ी के कांटों को आपमें कोई उत्सुकता नहीं है, वे अपनी ही चाल से चलते चले जाते हैं। लेकिन चित्त के अनुसार समय लंबा और छोटा हो जाता है।

अगर आपने दिनभर बहुत-से काम किए, तो बाद में सोचने पर लगेगा कि दिन बहुत लंबा था, क्योंकि बहुत भरा हुआ मालूम पड़ेगा। इसलिए यात्रा के दिन बहुत लंबे मालूम पड़ते हैं। लेकिन आप दिनभर खाली बैठे रहे, तो खाली बैठते समय तो लंबा मालूम पड़ेगा, बाद में याद करने पर बहुत छोटा मालूम पड़ेगा। क्योंकि उसमें कोई घटनाएं नहीं हैं, जिनकी वजह से भरा हुआ मालूम पड़े।

यात्रा का दिन, नई-नई घटनाओं का दिन जब गुजरता है, तब तो छोटा लगता है; और जब पीछे याद करते हैं, तो लंबा लगता है। खाली दिन, गर्मी का दिन, उदास बैठे हैं घर में, कुछ काम-धाम नहीं, बेकार; काटते वक्त बहुत लंबा लगता। पीछे लौटकर याद करें, तो लगता है, बहुत छोटा है, क्योंकि उसमें कुछ भरावट नहीं है। चित्त पर निर्भर करता है कि समय लंबा है या छोटा।

कृष्ण यहां कह रहे हैं कि अगर तुझे अंदाज हो जाए, जैसा कि ज्ञानियों को पता चल जाता है, ब्रह्मा का दिन...।

ब्रह्मा का अर्थ है, इस सृष्टि और प्रलय के बीच जिस शक्ति के हाथ में नियंत्रण है। एक सृष्टि और एक प्रलय के बीच में जो नियंत्रण है जिस शक्ति के हाथ में, जो एक सृष्टि और एक प्रलय के बीच में अध्यक्ष है इस अस्तित्व का, उसके लिए एक दिन और एक रात का ही है मामला यह सिर्फ। उसके लिए ये चौबीस घंटे हैं। हमारे लिए युग-युग, हजार-हजार युग, अनंत-अनंत जन्म।

एक पतिंगा आप देखते हैं, वर्षा में पैदा हो जाता है। सांझ को पैदा होता है, रात आधी होते-होते मरकर सड़कों पर गिर जाता है। उतनी देर में सब कुछ हो गया, जो आप सत्तर साल में करेंगे। आपको पता नहीं होगा। उतनी देर में सब कुछ कर डाला उसने, जो आप सत्तर साल में करेंगे। इसलिए वह कोई गरीब नहीं है; बेचारा नहीं है। आप सत्तर साल में करेंगे, वह सात घंटे में कर लेता है। एक अर्थ में आपसे ज्यादा कुशल, शक्तिशाली मालूम पड़ता है! क्योंकि इस बीच वह प्रेम कर लेता है। रोमांस कर लेता है। गुनगुना लेता है गीत। कविताएं गा लेता है। विवाह कर लेता है। बच्चे पैदा कर जाता है। अंडे रख जाता है। बूढ़ा हो जाता है। मर जाता है।

अगर उसकी जिंदगी की घटनाएं और आपकी जिंदगी की घटनाएं देखी जाएं, तो सिर्फ फर्क इतना ही लगेगा कि जो काम उसने सात घंटे में किए, वे आपने सत्तर साल में किए। यह कोई बड़ी गौरव की बात मालूम नहीं पड़ती। सिर्फ इतना ही मालूम पड़ता है कि इनइफिशिएंसी आपमें ज्यादा है, कुशलता जरा कम है; समय ज्यादा ले लेते हैं।

और भी छोटे कीड़े हैं, जो क्षण में ही पैदा होते हैं, क्षण में ही मर जाते हैं। मगर सब काम पूरा कर जाते हैं। कोई काम अधूरा नहीं छोड़ जाते। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि समय कम हो, तो काम आदमी जल्दी और कुशलता से कर लेता है।

सुना है मैंने कि तीन अमेरिकी यात्री रोम आए थे घूमने, तो वे पोप से मिलने गए। तो पोप ने उनसे पूछा, कितनी देर रुकिएगा? तो पहले यात्री ने कहा, कोई तीन महीने रुकने का इरादा है, ताकि सब ठीक से अध्ययन कर सकूं। पोप ने कहा, थोड़ा-बहुत जरूर कर लोगे।

दूसरे ने कहा कि मैं तो--थोड़ा डरा वह, क्योंकि वह बहुत कम रुकने वाला था--उसने कहा, मैं तो केवल तीन सप्ताह रुकने आया हूं। तो पोप ने कहा, काफी अध्ययन कर लोगे। बड़ी बेचैनी हुई। तीसरे आदमी ने कहा कि मैं तो केवल तीन दिन ही रुकने आया हूं। पोप ने कहा, तुम पूरा अध्ययन कर लोगे।

क्योंकि समय कम हो, तो आदमी जल्दी करता है, तेजी। समय ज्यादा हो, धीमे-धीमे करता है। समय बहुत हो, तो जमीन पर सरकने लगता है। अगर उसको पता चल जाए कि मरना ही नहीं है, तो बिस्तर से निकलना मुश्किल हो जाए! मरना ही नहीं है, तो फिर न भी उठे; फिर ऐसी जल्दी भी क्या है उठने की! वह तो मरना है, इसलिए इतनी दौड़ है। वह मरना है, इसलिए इतनी दौड़ है।

इसलिए जो सोसाइटी, जो समाज जितना डेथ कांशस हो जाता है, उतनी दौड़ बढ़ जाती है। अगर आज अमेरिका में सर्वाधिक दौड़ है, तो उसका कारण है कि हाइड्रोजन बम की सर्वाधिक विभीषक चिंता अमेरिका के युवक को है, और किसी को नहीं है। उसे सबसे ज्यादा साफ हो गया है, क्योंकि उसके ही मुल्क ने हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम का पहला प्रयोग किया है। और उस युवक को भलीभांति पता हो गया है कि यह जिंदगी अब क्षणभर भी भरोसे की नहीं है। किसी भी दिन सब समाप्त हो जाएगा! तो फिर दौड़ो, और भोग लो, और जी लो; जितनी जल्दी में हो सके। तीन दिन हाथ में हैं; तीन सप्ताह भी नहीं, तीन महीने भी नहीं।

इसलिए अमेरिका में जो आज इतने जोर से हिप्पी आंदोलन खड़ा हुआ है, उस आंदोलन के पीछे हिरोशिमा और नागासाकी की छाया है। युवकों को पता है, हम किसी भी दिन झोंक दिए जाएंगे। पता भी नहीं चलेगा, नष्ट हो जाएंगे। प्रेम करना हो, तो कर लो अभी। खाना हो, पीना हो, कर लो अभी।

पश्चिम में जो दौड़ पैदा हुई है, उसका भी कारण सिर्फ एक है कि ईसाइयत ने एक ही जन्म के सिद्धांत को माना। अगर एक ही जन्म है, तो यह मौत आखिरी मौत है। अगर यह आखिरी मौत है, तो दौड़ो, और जल्दी करो, सब भोग लो।

अगर पूरब में विज्ञान पैदा नहीं हुआ, और इतनी दौड़ पैदा नहीं हुई, और जीवन शिथिल और शांत और धीमी गति से चला, तो उसका कारण पुनर्जन्म की धारणा है। हमें पता है कि यह मौत कोई आखिरी मौत नहीं; यह जन्म कोई पहला जन्म नहीं। यह होता ही रहेगा। इतनी जल्दी क्या है!

इसलिए आप जानकर हैरान होंगे, पूरब के पास टाइम कांशसनेस बिलकुल नहीं है। पश्चिम के पास टाइम कांशसनेस है। पश्चिम समय के प्रति बहुत सजग है; एक-एक सेकेंड की सजगता है। यहां! यहां अगर हम घड़ी हाथ पर बांध भी लेते हैं, तो वह शृंगार ज्यादा है, वह समय का बोध कम है। और पुरुष को तो थोड़ी-बहुत समय की जरूरत पड़ गई, ट्रेन पकड़नी है। स्त्रियां भी घड़ी बांधे हुए हैं चूड़ियों की भांति। अगर एकदम से उनसे पूछो कि घड़ी में कितने बजे हैं, तो पता नहीं चलता।

मैं तो एक दिन ट्रेन में बैठा था; सामने एक महिला बहुत सजी हुई, काफी सोना-वोना पहने बैठी थी। एयरकंडीशन में बैठी थी, तो धनपति के घर की ही होगी। बड़ी शानदार घड़ी उसने बांध रखी थी। मैंने उससे पूछा कि घड़ी में कितने बजे हैं? उसने कहा, आज ही आई है। और मुझे इसे देखने का ठीक अंदाज नहीं। आपकी घड़ी में बताइए कितने बजे हैं? वह बांधे हुए है बस!

समय का बोध पूरब को हो नहीं सकता, क्योंकि समय इतना लंबा है हमारे पास कि ठीक है, कोई जल्दी नहीं है। पश्चिम को समय की प्रतीति गहन हो गई, क्योंकि ईसाइयत ने कहा, बस एक ही जन्म है, और मामला इसके पीछे सब समाप्त हो जाएगा। जो भी करना है, अभी कर लो। त्वरा आ गई। जल्दी करो। फैसले का दिन निकट है!

कृष्ण कहते हैं अर्जुन से कि अगर तू ब्रह्मा के हिसाब से सोचे, तो बस एक दिन और एक रात। सुबह होती है सृष्टि; सांझ होते आधी हो जाती; रात होती, सुबह होते, पूरी हो जाती; प्रलय आ जाता। यह चौबीस घंटे का खेल है। एक चक्र है ब्रह्मा के लिए। इसमें कुछ भी नया नहीं है अर्जुन। ब्रह्मा के लिए सब एक वर्तुल है। वही आरा नीचे आ जाएगा और सब समाप्त हो जाएगा।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, समय के इस रहस्य को जो जान लेता है, वह तत्वविद है और ऐसे योगीजन परम गति को पाते हैं।

समय के इस रहस्य को जो जान लेता है! यह समय का रहस्य क्या हुआ? यह समय का रहस्य यह हुआ कि जानने वाली चेतना पर ही समय का फैलाव या सिकुड़ाव निर्भर है।

ब्रह्मा की चेतना के लिए इतना विराट आयोजन सिर्फ एक दिन और रात है। हमारे लिए जो घड़ी में बीतता हुआ एक सेकेंड है, वह किसी छोटे मकोड़े के लिए, किसी पतिंगे के लिए, किसी अमीबा के लिए, एक पूरा जीवन का वर्तुल है।

पर यह है क्या? और यह समय का इतना फैलाव और सिकुड़ाव, यह है क्या? और अगर यही है, यही समय का घूमता वर्तुल ही सब कुछ है, तो इसमें घूमते जाना समझदारी नहीं है। इस वर्तुल के बाहर निकलना समझदारी है। इस चक्र के बाहर होना समझदारी है। समय के बाहर होना बुद्धिमत्ता है। टु ट्रांसेंड टाइम, समय के पार हो जाना बुद्धिमत्ता है। क्योंकि जो समय के पार हो गया, वह सृष्टि और प्रलय के पार हो गया। जो समय के पार हो गया, वह जन्म और मृत्यु के पार हो गया। जो समय के पार हो गया, वह दुख और सुख के पार हो गया। जो समय के पार हो जाता है, वह उस अलोक को उपलब्ध हो जाता है, जहां से न कोई लौटना है, जहां से न कोई वापसी है, न कोई पुनरागमन है। जहां परम जीवन में प्रवेश, परम अस्तित्व में प्रवेश है; अनादि और अनंत।

काल के इस रहस्य को अगर जानना हो, तो ध्यान में थोड़ी गति करें, क्योंकि ध्यान काल के विपरीत है। ध्यान में जितनी गति होगी, उतने समय के बाहर हो जाएंगे।

इसलिए कभी तो ध्यान में ऐसा हो जाता है कि घंटों बीत गए और जागकर वह व्यक्ति कहता है कि क्या हुआ, कितना समय बीत गया! मुझे तो कुछ पता ही नहीं। मैं था, होश था, बेहोश नहीं था, लेकिन समय का मुझे कुछ पता नहीं है। घड़ी जैसे रुक गई, ठहर गई भीतर की।

ध्यान समय के बाहर उतरने की विधि है।

ये बातें मैंने आपसे कहीं, लेकिन ये बातें आपको पूरी तभी समझ में आ पाएंगी, जब ध्यान की थोड़ी-सी झलक और स्वाद आपको मिलना शुरू हो जाए। तो काल का रहस्य खयाल में आ जाता है, और काल के बाहर जाने की क्षमता भी आ जाती है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
सृष्टि और प्रलय का वर्तुल— अध्याय—8 (प्रवचन—सातवां)

अव्यक्तात् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।। 18।।
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।। 19।।
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।। 20।।
इसलिए काल के तत्व को जानने वाले यह भी जानते हैं कि संपूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में अव्यक्त से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में उस अव्यक्त में ही लय होते हैं।

और हे अर्जुन, वह ही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेशकाल में लय होता है और दिन के प्रवेशकाल में फिर उत्पन्न होता है।

परंतु उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव है, वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नहीं नष्ट होता है।

अस्तित्व की व्याख्या, कैसे यह अस्तित्व पैदा होता है और कैसे लीन होता है। इसके पहले कि हम कृष्ण के वचन पर विचार करें, कुछ और प्राथमिक बातें जान लेनी जरूरी हैं।

एक तो कि काल के तत्व को जो जान लेते हैं, वे ही आने वाली इस व्याख्या को समझ पाएंगे। काल के तत्व के संबंध में एक बहुत मौलिक बात स्मरण कर लेनी जरूरी है और वह यह है कि समय के भीतर जो भी प्रकट होता है, वह स्वप्नवत है, ड्रीमलाइक है।

इसे हम ऐसा समझें कि जैसे कोई व्यक्ति दर्पण में अपनी तस्वीर देखे, तो दर्पण में जो दिखाई पड़ता है, वह स्वप्नवत है। दर्पण में वस्तुतः होता नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। लेकिन दिखाई पूरा पड़ता है। दिखाई पड़ने में कोई कमी नहीं है। या जैसे कोई रात चांद निकला हो आकाश में और झील की शांत सतह में उसका प्रतिफलन बन जाए। कोई झील में झांककर देखे, तो चांद पूरा दिखाई पड़ता है, वैसे वहां है नहीं।

ठीक समय के भीतर भी प्रतिफलन ही उपलब्ध होते हैं। समय दर्पण है या पानी की झील है, उसमें जो हमें दिखाई पड़ता है, वह वास्तविक नहीं है, स्वप्नवत है। यही अर्थ है माया का, इलूजन का। लेकिन जब तक हमें उस सत्य का पता न हो जो दर्पण के बाहर है, तब तक हमें यह भी एहसास न हो सकेगा कि जो हम देख रहे हैं समय के भीतर, वह माया है।

सुना है मैंने, रमजान के उपवास के दिन हैं और मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते के किनारे से निकलता है। प्यास लगी है, तो उसने कुएं में झांककर देखा, देखा कि चांद कुएं में पड़ा है। सोचा उसने कि चांद यहां फंसा पड़ा है! उपवास के दिन हैं, और अगर चांद बाहर न निकाला गया, तो लोग उपवास कर-करके मर जाएंगे, उपवास का अंत कैसे आएगा?

भागा हुआ पास के गांव में गया, रस्सी लेकर आया। रस्सी को डाला कुएं में चांद को फंसाने के लिए और निकालने के लिए। फंस भी गया चांद। मुल्ला ने बड़ी ताकत लगाई। बड़ी मुश्किल में पड़ा; क्योंकि रस्सी उसकी कुएं में जाकर एक पत्थर से फंस गई थी। बहुत खींचा, फिर सोचा भी कि चांद जैसी चीज है, मुश्किल तो होगी ही। लेकिन हजारों-लाखों लोगों का सवाल है, मुझे मेहनत करके निकाल ही देना चाहिए। बहुत ताकत लगाई, तो रस्सी टूट गई। मुल्ला धड़ाम से कुएं के नीचे गिरा। घबराहट में आंखें बंद हो गईं। सिर लहूलुहान हो गया। जब आंख खुली, तो चांद आकाश में दिखाई पड़ा। उसने कहा कि चलो, कोई हर्ज नहीं। थोड़ी हमें मुश्किल भी हुई, तो कोई बात नहीं, लेकिन चांद मुक्त हो गया!

समय की झील में जो हमें दिखाई पड़ता है, वही संसार है। समय में पकड़ा हुआ जो हमें दिखाई पड़ता है, वही संसार है। लेकिन समय के बाहर हम देख ही नहीं पाते हैं। हम बिलकुल कुएं पर झुके खड़े हैं। और जो हमें कुएं में दिखाई पड़ता है, वही दिखाई पड़ता है। समय के मीडियम में, समय के माध्यम में जो झलकता है, उसे ही हम जानते हैं। और हम किसी चीज को जानते नहीं।

तो समय के तत्व को जो जान लेता है, वह यह भी जान लेता है, यह जगत सिर्फ एक माया है, यह जगत सिर्फ एक प्रतिबिंब है, यह जगत सिर्फ एक स्वप्न है। और जो समय से मुक्त हो जाता है, वह जगत से भी तत्क्षण मुक्त हो जाता है। या जो जगत से मुक्त हो जाता है, वह समय से मुक्त हो जाता है। अगर इसे हम और भी सूक्ष्म में कहें, तो कह सकते हैं, समय ही संसार है। समय के बाहर हो जाना संसार के बाहर हो जाना है।

लेकिन यह समय का तत्व बहुत अदभुत है। हम सभी अपनी कामना की गहनता के अनुसार अधिक या कम समय के भीतर हो सकते हैं। जितनी तीव्र वासना होती है, समय के भीतर उतना हमारा गहरा प्रवेश हो जाता है। जितनी क्षीण वासना होती है, उतना ही हम समय की परिधि पर आ जाते हैं।

सुना है मैंने कि एक ईसाई फकीर मरकर स्वर्ग पहुंचा। द्वार पर ही सेंट पीटर उसे मिले। तो उस फकीर ने कहा, मैंने बड़ी-बड़ी बातें स्वर्ग के संबंध में सुनी हैं। मैं सदा फकीर रहा; कौड़ी-कौड़ी मांगकर जीया। मैंने सुना है कि स्वर्ग की एक कौड़ी भी, एक पाई भी पृथ्वी के अरबों-खरबों रुपयों के बराबर होती है। सेंट पीटर ने कहा, तुमने ठीक ही सुना है। तो उस फकीर ने कहा, क्या कृपा करके एक छोटी-सी पाई मुझे उधार न दे सकेंगे!

फकीर ने सोचा कि एक पाई अगर अरबों-खरबों रुपयों के बराबर होती है और एक पाई देने से सेंट पीटर जैसा भला आदमी क्या इनकार करेगा। सेंट पीटर ने कहा, जरूर दूंगा। लेकिन एक क्षण ठहर जाओ।

दिन बीतने के करीब आ गया। फकीर द्वार पर बैठा रहा। सांझ होने लगी। उसने कहा, एक क्षण कितना लंबा होता है यहां? सेंट पीटर ने कहा, पृथ्वी के अरबों-खरबों बरसों के बराबर। क्योंकि जब पाई अरबों-खरबों के बराबर होगी, तो क्षण भी अरबों-खरबों बरसों के बराबर होगा। अनुपात वही होता है।

अनुपात वही होता है। एक आदमी के पास एक कौड़ी है और एक आदमी के पास एक करोड़ रुपए हैं, तो आप यह मत समझना कि करोड़ रुपए वाले की आसक्ति ज्यादा होगी और एक कौड़ी वाले की आसक्ति कम होगी। नहीं, इस भूल में मत पड़ना। आसक्ति का अनुपात वही होगा। एक कौड़ी पर भी उतनी ही होगी, करोड़ रुपए पर भी उतनी ही होगी।

इसे ऐसा समझें। एक आदमी एक घर से एक कौड़ी चुरा लाता है, और एक आदमी एक लाख रुपए चुरा लाता है। क्या लाख रुपए वाले की चोरी ज्यादा होगी? निश्चित ही जो रुपए गिनते हैं, वे कहेंगे, हां। लाख रुपए की चोरी लाख रुपए की चोरी है, और कौड़ी की चोरी कौड़ी की चोरी है।

लेकिन चोरी तो बराबर है। चोरी में कोई भेद पड़ता नहीं। कौड़ी की चोरी उतनी ही चोरी है, जितनी लाख की चोरी चोरी होती है। चोरी में कोई अंतर नहीं पड़ता। क्या चुराया, यह गौण है। चुराया, यही महत्वपूर्ण है। अनुपात वही होता है।

वासना में जो बहुत दौड़ते हैं वे भी, वासना में जो कम दौड़ते हैं वे भी, अनुपात तो बराबर होता है। अनुपात में फर्क नहीं पड़ता। लेकिन फिर भी, जो कम वासना में दौड़ते हैं, वे पानी की सतह के करीब होते हैं। और जो ज्यादा वासना में दौड़ते हैं, वे पानी की गहराइयों में होते हैं। कम वासना में दौड़ने वाला आदमी झटके से छलांग ले सकता है समय के बाहर। ज्यादा वासना में दौड़ने वाले को उतना ही कठिन हो जाता है। समय ही नहीं मिलता कि समय के बाहर निकल सके।

समय के तत्व को जो समझ लेता है, वह यह भी समझ लेता है कि अगर मुझे समय के बाहर होना है, तो मुझे वासना के बाहर हो जाना पड़ेगा। और अगर मुझे वासना के बाहर होना है या समय के बाहर होना है, तो क्या सूत्र होगा इसका? वे जो काल के तत्व को जान लेते हैं, किस सूत्र का प्रयोग करते हैं?

एक छोटा-सा सूत्र आपसे कहता हूं। वे इसी का प्रयोग करते हैं। वे क्षण में जीना शुरू करते हैं। समय में नहीं, क्षण में। नाट इन टाइम, बट इन दि मोमेंट। एक क्षण है अभी मेरे पास; और एक क्षण से ज्यादा किसी आदमी के पास कभी होता नहीं। कितना ही बड़ा आदमी हो, कितना ही छोटा आदमी हो, दीन हो, दरिद्र हो, सम्राट हो, कमजोर हो कि शक्तिशाली हो, अज्ञानी हो कि ज्ञानी हो, एक क्षण से ज्यादा किसी के हाथ में कभी इकट्ठा नहीं होता। जब एक क्षण सरक जाता है, तब दूसरा क्षण हाथ में आता है। एक क्षण से ज्यादा किसी के पास नहीं होता।

अगर कोई इस एक क्षण में ही जीना शुरू कर दे, आने वाले क्षण की वासना न करे, चिंता न करे, आकांक्षा न करे; बीते हुए क्षण को भूल जाए, छोड़ दे, स्मृति के बाहर कर दे; इस क्षण में ही ठहर जाए–तो ऐसे आदमी को वासना में जाने का उपाय नहीं होगा। क्योंकि वासना इसी क्षण में नहीं हो सकती।

इसी क्षण में तो केवल प्रार्थना ही हो सकती है। इसी क्षण में तो केवल ध्यान ही हो सकता है। इसी क्षण में तृष्णा नहीं हो सकती। तृष्णा के लिए एक क्षण से ज्यादा चाहिए। फैलाव के लिए, विस्तार के लिए भविष्य चाहिए। और भविष्य के फैलाव के लिए अतीत में जड़ें और स्मृति चाहिए। अगर अतीत भी नहीं, भविष्य भी नहीं, यही क्षण है, तो समय गिर गया और वासना भी गिर गई।

इसलिए ज्ञानी क्षण में जीना शुरू कर देता है, अभी और यहीं। और जैसे ही कोई अभी और यहीं जीता है, समय के बाहर हो जाता है। क्षण जो है, समय के बाहर होने का द्वार है।

इसे और तरह से भी समझ लें।

पिछले तीस वर्षों की वैज्ञानिक खोजों ने पदार्थ के अंतिम कण पर मनुष्य को पहुंचा दिया, एटम पर, अणु पर पहुंचा दिया, परम अणु पर पहुंचा दिया। फिर परम अणु का भी विभाजन हो गया और परम अणु का भी विभाजित हिस्सा इलेक्ट्रान हाथ में आ गया। लेकिन एक बड़ी अदभुत घटना घटी, परमाणु के टूटते ही पदार्थ खो जाता है। परमाणु के टूटते ही पदार्थ खो जाता है। और इधर बीस वर्षों में विज्ञान की जो बड़ी से बड़ी उपलब्धि है, वह यह है कि अब पदार्थ जगत में नहीं है।

तीन सौ वर्ष पहले जो विज्ञान सोचकर चला था कि परमात्मा जगत में नहीं है, कोई सोच भी नहीं सकता था...अगर आज पुराने वैज्ञानिकों को कब्रों से उखाड़ा जाए, न्यूटन को उखाड़ा जाए कब्र से या गैलीलियो को, तो वे विश्वास न कर सकेंगे कि यह विज्ञान ने कौन-सी उपलब्धि कर ली! सोचते थे कि ईश्वर खो जाएगा, आत्मा खो जाएगी। इस सदी के प्राथमिक समय में भी सभी वैज्ञानिक इस खयाल से भरे थे कि आत्मा-परमात्मा के बचने की कोई जगह नहीं। पदार्थ ही सत्य है, मैटर इज़ दि ओनली रियलिटी।

लेकिन इधर उन्नीस सौ पचास के करीब जो प्रतीति गहन होने लगी, वह यह है कि मैटर इज़ दि मोस्ट अनरियल थिंग, पदार्थ है ही नहीं। जैसे ही परमाणु टूटता है, पदार्थ खो जाता है और परमाणु के टूटते ही पदार्थ के बाहर प्रवेश हो जाता है, अपदार्थ में, नान-मैटीरियल में प्रवेश हो जाता है।

ठीक ऐसे ही समय का जो आखिरी टुकड़ा है, उसका नाम क्षण है, कहें कि वह समय का परमाणु है, क्षण। जो व्यक्ति क्षण में ठहर जाता है, वह समय के बाहर हो जाता है। जैसे परमाणु में जो व्यक्ति प्रवेश करता है, वह पदार्थ के बाहर हो जाता है, वैसे ही जो व्यक्ति क्षण में, समय के परमाणु में प्रवेश करता है, वह समय के बाहर हो जाता है।

विज्ञान ने पदार्थ की खोज करके परमाणु पाया और परमाणु के बाहर द्वार पाया, जहां से अपदार्थ में, अव्यक्त में, अनमैनिफेस्टेड में प्रवेश हो जाता है। ठीक ऐसे ही पूरब के धर्म ने, पूरब के धर्म के खोजियों ने, मिस्टिक्स ने समय की खोज की ज्यादा। क्योंकि उनके इरादे कुछ और थे; उनके इरादे उसको जानने के थे, जो इटरनल है, शाश्वत है, सनातन है। उन्होंने समय की खोज की और समय के आखिरी टुकड़े को खोजा, जिसका नाम उन्होंने क्षण दिया है। उसको कहें टाइम एटम, कहें समय का परमाणु। और जब वे समय के इस परमाणु के भीतर प्रविष्ट हुए, खड़े हुए, उन्होंने पाया, टाइम सिंपली डिसएपियर्स, समय खो जाता है। और फिर जो बचता है, वही शाश्वत, सनातन, नित्य है।

समय के रहस्य को जानने वाले के लिए कृष्ण कहते हैं, जो समय के, काल के इस तत्व को जान लेता है, इस क्षण के द्वार को पहचान लेता है और समय के बाहर होने की कला जिसे आ जाती है, वह संपूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में अव्यक्त से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में उसी अव्यक्त में लय होते हैं--इस तत्व का भी ज्ञाता हो जाता है।

यहां दोत्तीन बातें, जो कि मैंने आपसे अभी-अभी कहीं, वे खयाल में ले लें। कृष्ण कहते हैं, वह व्यक्ति जो समय को जान लेता है, वह इस सत्य को भी जान लेता है कि यह जगत कहां से पैदा होता है और कहां लीन होता है। इस जगत के पैदा होने के लिए कृष्ण ने कहा है, समस्त दृश्यमात्र भूत, सब मैटर, सब पदार्थ, ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में, ब्रह्मा के प्रथम मुहूर्त क्षण में, जब ब्रह्मा का दिन शुरू होता है...।

हमने कल समझा कि चौबीस घंटे हमारे जैसे हैं, बारह घंटे का दिन और बारह घंटे की रात भी मान लें, तो ब्रह्मा की जब सुबह होती है, ब्रह्ममुहूर्त! अभी भी हम सुबह के क्षण को ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं, सिर्फ इस याददाश्त में कि कभी हमें वास्तविक ब्रह्ममुहूर्त का भी पता चल जाएगा। जिसे हम ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं, वह ब्रह्ममुहूर्त नाम मात्र को है।

ब्रह्ममुहूर्त का अर्थ है, ब्रह्मा का वह क्षण, जब जगत शुरू होता है, जीवन प्रारंभ होता है, पदार्थ आविर्भूत होते हैं, व्यक्त होते हैं और लीला शुरू होती है। सुबह वह लीला शुरू होती है, सांझ होते-होते वह लीला अपने शिखर पर पहुंच जाती है। और जब भी कोई चीज शिखर पर पहुंचती है, तो उतरना शुरू हो जाती है। फिर रात ब्रह्मा की, और सब चीजें बिखरती जाती हैं, उतरती चली जाती हैं। और अंतिम क्षण में रात्रि के, जो जगत प्रकट हुआ था, वह पुनः अप्रकट में लीन हो जाता है। और फिर सुबह, और फिर सांझ, और फिर सुबह, ऐसा वर्तुलाकार ब्रह्मा का समय चलता रहता है।

ये पदार्थ अव्यक्त से उत्पन्न होते हैं। अव्यक्त का अर्थ है, दि अनमैनिफेस्टेड, जो प्रकट नहीं है। उससे प्रकट होता है सब। जो छिपा है, उससे प्रकट होता है सब। जो गुप्त है, उससे प्रकट होता है सब।

अभी विज्ञान की खोज भी इसके करीब पहुंची है। शायद इस वचन के समर्थन में शंकर जो नहीं कह सकते, रामानुज जो नहीं कह सकते, निंबार्क जो नहीं कह सकते, गीता के जो भी बड़े-बड़े चिंतक हुए वे नहीं कह सकते, वह शायद इस हमारी सदी का भौतिकविद, फिजिसिस्ट कह सकता है। आइंस्टीन कह सकता है कि यह वक्तव्य न केवल धर्म का वक्तव्य है, यह वक्तव्य विज्ञान का भी वक्तव्य है। क्योंकि परमाणु के विभाजन के बाद विज्ञान ने पाया कि वह जो प्रकट परमाणु था, अचानक अप्रकट में लीन हो जाता है।

इसके पहले तक कभी विज्ञान को खयाल नहीं था और यह इल्लाजिकल भी है। यह वक्तव्य बहुत अतार्किक है, तर्कहीन है। बुद्धिमत्ता इसका समर्थन न करेगी, बुद्धि इसके सहयोग में खड़ी न होगी। क्यों? क्योंकि व्यक्त अगर प्रकट होता है अव्यक्त से, तो इसका तो अर्थ हुआ कि शून्य से पूर्ण का जन्म होता है। इसका तो अर्थ हुआ कि जो नहीं है, उससे, जो है, वह निकल आता है। इसका तो अर्थ हुआ, जो कहीं नहीं पाया जाता, उससे भी, सारा जो सब जगह पाया जाता है, उसका फैलाव है। यह तो बहुत तर्क में बात आती नहीं। विचार इसको पकड़ नहीं पाता। यह तो ऐसा ही हुआ कहना कि आउट आफ नथिंग, ना-कुछ से, सब कुछ का जन्म है।

लेकिन परमाणु के विघटन ने इस गीता के वक्तव्य को वैज्ञानिक प्रामाणिकता भी दे दी। क्योंकि परमाणु के विघटन के बाद कोई उपाय न रहा। और जब किसी ने बहुत बड़े भौतिकविद प्लांक से पूछा कि यह तुम कैसी तर्कहीन बातें कर रहे हो! कि परमाणु के नीचे उतरते ही परमाणु का जो पदार्थ है, वह अपदार्थ हो जाता है, मैटर इम्मैटर हो जाता है, यह तुम कैसी तर्कहीन और अवैज्ञानिक बातें कर रहे हो! तो प्लांक का उत्तर बहुत अदभुत है।

प्लांक ने कहा, जब तक मुझे पता नहीं था, प्रयोग में जाना नहीं था, तब तक मैं भी यही कहता। अब मैं तुमसे इतना ही कहूंगा, हमारे वश के बाहर है। परमाणु का जो व्यवहार है, वह यही है कि उसके टूटते ही वह नीचे अव्यक्त में खो जाता है। अब अगर वह अतर्क है, तो हम अपने तर्क को बदल डालें, और कोई उपाय नहीं। नाउ लेट अस चेंज अवर होल लाजिक! लेकिन हम अस्तित्व को नहीं बदल सकते। अगर हमारे तर्क में बात नहीं बैठती है, तो भी अस्तित्व राजी नहीं होगा कि हमारे तर्क के अनुसार चले। हम अपने तर्क को ही बदल लें। और तो कोई उपाय नहीं है।

इसलिए पचास वर्षों में पिछले एक नए तर्क का जन्म हुआ है, पश्चिम में नए गणित का जन्म हुआ है, नई ज्यामिति का जन्म हुआ है, जिनको कि सुनकर पुराने ज्यामिति के विद्यार्थी को, पुराने गणित के विद्यार्थी को, पुराने तर्क के विद्यार्थी को कुछ भी समझ में नहीं आता कि यह क्या है!

आपमें से बहुत-से लोगों ने शिक्षा के समय में ज्यामेट्री पढ़ी होगी यूक्लिड की, लेकिन इधर निरंतर नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री महत्वपूर्ण होती जा रही है। यूक्लिड की सारी परिभाषाएं गलत हो गईं, क्योंकि अस्तित्व में उनसे कहीं मेल नहीं है।

यूक्लिड कहता है, दो समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलतीं। जो गैर, यूक्लिड के विपरीत खड़ी हुई ज्यामेट्री है, वह कहती है, दो समानांतर रेखाएं भी मिलती हैं। यूक्लिड कहता है, दो समानांतर रेखाएं कैसे मिल सकती हैं? वे बिलकुल समानांतर हैं, इसलिए कहीं भी बढ़ जाएं, समानांतर ही रहेंगी। मिलेंगी कैसे?

नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री कहती है, हम परिभाषाएं नहीं मानते। हम कहते हैं, दो समानांतर रेखाएं खींचो और बढ़ाते चले जाओ, अगर वे न मिलें, तो हम मान लेंगे।

अब बड़ी मुश्किल है, रेखाएं मिल जाती हैं। तो वे कहते हैं, हम यूक्लिड को मानें कि इन रेखाओं को मानें, जो मिल जाती हैं! इन रेखाओं को यूक्लिड का कोई भी पता नहीं है। या, नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री कहती है, कि अगर तुम जिद्द ही करते हो, तो उसका मतलब यह हुआ कि दो समानांतर रेखाएं खींची ही नहीं जा सकतीं। एक ही बात है। जो भी खींची जा सकती हैं, वे मिल जाती हैं। और जो खींची नहीं जा सकतीं, उनके मिलने न मिलने का पता कैसे चलेगा!

यूक्लिड कहता है कि हम सीधी रेखा उसे कहते हैं, जो दो बिंदुओं के बीच सबसे कम जगह में प्रवेश करती है। और यूक्लिड कहता है कि सीधी रेखा सीधी है। सीधी रेखा को किसी वर्तुल का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता है। इट कैन नाट बी सेग्मेंट आफ ए सर्किल। नान-यूक्लिड की ज्यामेट्री कहती है, तुम कोई सीधी रेखा खींचो; और हर सीधी रेखा को किसी बड़े वर्तुल का हिस्सा बनाया जा सकता है। क्योंकि नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री कहती है, जिस जमीन पर बैठकर तुम रेखा खींचते हो, वह गोल है। उस पर खींची गई कोई भी रेखा, अगर पूरी तरह दोनों तरफ बढ़ा दी जाए, तो जमीन को घेरकर वर्तुल बन जाएगी।

यूक्लिड का बिलकुल सफाया हो गया, उसको अब कोई जगह नहीं बची।

पुराना गणित कहता है, दो और दो मिलकर चार होते हैं। नया गणित कहता है कि दो और दो मिलकर चार कभी नहीं होते, कभी इंचभर इस तरफ होते हैं, कभी इंचभर उस तरफ होते हैं। क्योंकि दो और दो कभी बराबर नहीं होते। दो और दो बराबर कभी नहीं होते। आप कहेंगे, दो और दो तो बराबर होते हैं! नया गणित कहता है कि सिर्फ परिभाषा में। सिर्फ परिभाषा में।

कोई दो चीजें बराबर नहीं होतीं। कोई दो पत्थर बराबर नहीं होते। कोई दो पत्ते बराबर नहीं होते। अस्तित्व में दो चीजें एक्जेक्टली अलाइक एंड ईक्वल होती ही नहीं। कोई उपाय नहीं है दो चीजों को बराबर, ठीक बराबर करने का। थोड़ा-सा अंतर शेष रह ही जाता है। और वह अंतर जोड़ में फर्क करेगा। लेकिन दो और दो चार होते हैं। दो और दो चीजें अगर जोड़ी जाएं, तो कभी चार नहीं होतीं; कुछ कम या कुछ ज्यादा।

प्लांक ने कहा है कि हम अपने गणित को बदल लें, अपने तर्क को बदल लें; लेकिन अस्तित्व हमारे तर्क को मानकर चलने के लिए राजी नहीं है।

इधर बीस वर्षों ने खुद विज्ञान की आधारशिलाओं को बहुत ही हिला दिया है। एक नया शब्द विज्ञान में प्रवेश किया जो कभी भी नहीं था। हमेशा समझा जाता था, साइंस इज़ दि मोस्ट सर्टेन थिंग। किसी ने नहीं सोचा था कि अनसर्टेंटी, अनिश्चय विज्ञान का केंद्रीय शब्द बन जाएगा। इधर बन गया है। अनसर्टेंटी, अनिश्चय ही विज्ञान का केंद्रीय शब्द बन गया है। क्योंकि कुछ भी निश्चित नहीं मालूम पड़ता, सब डांवाडोल हो गया है। इस डांवाडोल होने में जो सबसे बड़ी घटना घटी है, यह वचन उसी घटना के लिए है।

कृष्ण कहते हैं, अव्यक्त से व्यक्त का जन्म होता है ब्रह्ममुहूर्त में, ब्रह्मा के पहले क्षण में। और फिर पुनः यह व्यक्त जब थक जाता, जीर्ण-शीर्ण हो जाता, जरा-जीर्ण हो जाता, वृद्ध हो जाता, तो पुनः लीन हो जाता है अव्यक्त में।

इसे हम अपने से समझें तो शायद आसान हो जाए।

सुबह आप उठते हैं ताजे, लेकिन कभी आपने खयाल किया, यह ताजगी कहां से आती है? निश्चित ही, रातभर आपने ताजगी के लिए कुछ भी नहीं किया; न कोई व्यायाम किया, न कोई भोजन लिया। रातभर अगर आपने कुछ भी किया, तो इतना ही किया कि अपने को सब करने से रोका। रातभर आप सोए रहे। सोने में आप पुनः अव्यक्त में गिर जाते हैं। व्यक्त से हट जाते हैं, अव्यक्त में गिर जाते हैं। उसी अव्यक्त से ताजगी लेकर सुबह पुनः उठ आते हैं। सांझ होते-होते फिर थक जाते हैं; दिन ढल जाता है, रात शुरू हो जाती है। फिर...।

इसलिए पुराने शास्त्र कहते हैं, निद्रा छोटी मृत्यु है, निद्रा आंशिक मृत्यु है; मृत्यु पूर्ण निद्रा है। रोज आदमी को मरना पड़ता है, इसीलिए सुबह वह पुनः जीवित हो पाता है। रात अंधेरे में डूब जाते हैं, सुबह फिर पुनरुज्जीवित होते हैं, ताजे, प्रफुल्लित; फिर काम में लग जाते हैं।

ठीक ब्रह्मा की यह पूरी सृष्टि भी दिनभर में थक जाती है, सांझ होने के करीब हो जाती है। फिर मृत्यु, फिर पुनर्जन्म। ठीक चौबीस घंटे के दिन की भांति ब्रह्मा का भी बड़ा वर्तुलाकार दिन घूमता रहता है।

इसलिए एक बात और बहुत मजे की है और वह यह कि सिर्फ पूरब के मुल्कों में और विशेषतया भारत में समय की एक धारणा विकसित की, जो सरकुलर है, वर्तुलाकार है। हम समय को हमेशा वर्तुल में सोचते रहे। पश्चिम में समय की धारणा लीनियर है, एक रेखा में, सीधी। पश्चिम को वर्तुल का खयाल ही अभी-अभी आना शुरू हुआ। नहीं तो पश्चिम सोचता है, एक रेखा में इतिहास चलता है। हम सोचते हैं कि रेखा में नहीं, गोल वर्तुल में चलता है।

इसलिए हम जानते हैं कि सब चीजें फिर लौटकर आ जाती हैं। अगर एक ही रेखा में चलता हो, तो चीजें लौटकर नहीं आ सकतीं। इसलिए पश्चिम ने इतिहास लिखा, पूरब ने कभी इतिहास नहीं लिखा। क्योंकि जब सभी चीजें बार-बार लौट आती हों, तो इतिहास की लिखने की व्यर्थ की झंझट में क्यों पड़ना? फिर-फिर यही होगा। फिर राम होंगे, फिर कृष्ण होंगे, फिर बुद्ध होंगे; चीजें वर्तुलाकार लौटती रहेंगी; तो क्या प्रयोजन है बार-बार लिखने से कि बुद्ध कब हुए, कैसे हुए, किस तिथि में हुए, किस समय में हुए!

ईसाइयत ने समय का नान-सर्कुलर दृष्टिकोण पकड़ा है, गैर-वर्तुल, रेखाबद्ध। इसलिए ईसा का जन्मदिन इतिहास की शुरुआत बन गया। वह ईवेंट बन गया, घटना बन गई। इसलिए उचित ही है कि सारी दुनिया में हम ईसा के जन्मदिन के हिसाब से समय को मापते हैं। हमारे पास ऐसा समय-माप नहीं है। और हमने जो समय-माप गढ़े भी हैं, वे भी ईसा की नकल में गढ़े हैं। और हमने बहुत दफे बहुत-से समय-माप शुरू किए, लेकिन हमारी चेतना से मेल नहीं पड़ा और वे छूट गए।

हमने पुराण तो लिखा है, इतिहास नहीं लिखा। पुराण का अर्थ है, वह जो सदा लौटता है, उसमें तिथियों के हिसाब की जरूरत नहीं, कथा का सार ही काफी है। इसलिए ईसाइयत कहती है कि जीसस इज़ दि फर्स्ट हिस्टारिक पर्सन। वे ठीक कहते हैं कि जीसस पहले ऐतिहासिक पुरुष हैं। वे कहते हैं, तुम्हारे सब पुरुष–कृष्ण हों, कि ऋषभ हों, कि राम हों, कि परशुराम हों–ये सब नान-हिस्टारिक हैं, ये सब गैर-ऐतिहासिक हैं।

इससे भारतीय मन को बड़ी पीड़ा होती है; लेकिन उसी मन को, जिसे भारत के रहस्यों का कोई पता नहीं है। इससे खुश होना चाहिए, यह पौराणिक है और पुराण इतिहास से ज्यादा गहन बात है।

इतिहास लेखा-जोखा है ऊपरी घटनाओं का; पुराण लेखा-जोखा है अंतरतम का। उसमें तिथियों का कोई मूल्य नहीं। उसमें, अखबार में जो घटनाएं छपती हैं, उनका कोई मूल्य नहीं। उसमें तो जो घटनाएं जीवन के अंतस्तल में, अस्तित्व के प्राणों में घटित होती हैं, केवल उनका लेखा-जोखा है।

इसलिए एक बहुत मजेदार घटना घट सकती है, वह सिर्फ भारत में घट सकती है। वह यह है कि वाल्मीकि ने राम के जन्मने के पहले रामायण लिखी। यह दुनिया में कहीं भी नहीं घट सकती। यह कैसे घट सकती है! क्योंकि इतिहास लिखने वाला तो इतिहास तभी लिखेगा, जब इतिहास घट जाए। कोई अखबार खबर छाप सकता है, जो अभी घटी न हो? अखबार तो खबर छाप सकता है, जो घट गई हो। इसलिए इतिहास केवल सड़ा हुआ कचरा है, जो हो चुका, जो बीत चुका। वह सिर्फ राख है मुर्दों की। इतिहास मरे का लेखा-जोखा है।

सिर्फ एक अनूठी घटना इस मुल्क में घटी है और वह यह कि वाल्मीकि ने राम के जन्म के पहले राम की कथा लिखी है। बड़ी अनूठी है और बड़ी बेबूझ है, एब्सर्ड है, तर्कसंगत नहीं है। कोई भी कहेगा, क्या पागलपन है! पहले कथा कैसे लिखी जा सकती है?

लिखी जा सकती है, अगर पुराण का खयाल हो। वाल्मीकि को अगर यह पता है कि राम जैसा व्यक्ति हर वर्तुलाकार अस्तित्व में पैदा होता है, राम जैसा व्यक्ति ब्रह्मा के हर दिन में एक बार पैदा होता ही है, तो यह कथा लिखी जा सकती है। यह राम जैसा व्यक्ति हजारों दफे पहले भी पैदा हो चुका है।

समझें ऐसा कि हमें पता है कि हर वर्ष, वर्ष के किसी काल में वर्षा आती है। एक बार जब वर्ष का वर्तुल घूमता है, तो वर्षा आती है। तो वर्षा आने के पहले जान लेने में कौन-सी कठिनाई है! जिसे पता हो कि आषाढ़ आएगा और आषाढ़ के पहले दिन आकाश में बादल घिरेंगे, भूखी-प्यासी पृथ्वी मांग करेगी और आकाश से उसकी प्यास को तृप्त करने के लिए पानी गिरेगा। इसमें कौन-सी कठिनाई है, जिसे पता हो पिछले वर्षों का, वर्षा के होने का!

लेकिन एक नया बच्चा पैदा हुआ है, जिसने अभी पहली वर्षा भी नहीं देखी। उसका पिता अगर उससे कहे कि बहुत शीघ्र वर्षा आएगी, आषाढ़ का पहला दिन करीब आता है। आकाश में काले बादल घिरेंगे, सब मौसम गीला, धुंधला हो जाएगा। फिर बूंदें गिरेंगी, जो पृथ्वी के लिए अमृत जैसी तृप्तिदायी होंगी। वृक्ष हरे हो उठेंगे, फूलों से लद जाएंगे। सारा जीवन हरा हो जाएगा।

तो वह बच्चा प्रतीक्षा करे। फिर आषाढ़ का पहला दिन आए और बादल घिरने लगें, तो वह पिता को कहे कि तुम कैसे अदभुत हो! ठीक वैसा ही हुआ जा रहा है।

इस पिता को सिर्फ इतना ही पता है कि वर्ष के वर्तुल में, चक्र में वर्षा एक बार आती है। ठीक प्रत्येक ब्रह्मा के काल में कितने लोग पैदा होते हैं!

जैन अनुभवियों को पता है कि ब्रह्मा के एक दिन में चौबीस तीर्थंकर पैदा होते हैं। एक-एक घंटे पर, इसलिए चौबीस। चौबीस घंटे में एक-एक घंटे पर एक-एक टीचर, एक-एक सदगुरु पैदा होता है। इसलिए चौबीस तीर्थंकर पैदा होते हैं।

ये हर वर्तुल में पैदा होते हैं। इनके नाम अलग होंगे, इनके इतिहास की रेखाएं थोड़ी-बहुत अलग होंगी। क्योंकि हर बार, हर आषाढ़ के पहले दिन पर आकाश में घिरे बादलों की रूप-रेखा एक-सी नहीं होती। कोई और होगा राम, कोई और होगा कृष्ण। लेकिन ऊपर का लेखा-जोखा अलग होगा, इतिहास अलग होगा, भीतर का जो सारभूत तत्व है, वह एक ही होगा। कभी वह दशरथ का पुत्र होगा, और कभी दशरथ का पुत्र नहीं होगा। लेकिन राम जब भी पैदा होगा, तो वह भीतर का जो रामपन है, दि एसेंशियल, वह जो सारभूत है, वह वही होगा।

वाल्मीकि उसी सारभूत राम की कथा लिखते थे। और बड़ी मधुर है यह बात कि राम फिर उस कथा के अनुसार जीवन का आचरण करते हैं। क्योंकि वाल्मीकि को सत्य तो होना ही चाहिए। वाल्मीकि के असत्य होने का कोई उपाय ही नहीं है। जो पुराण को जानते हैं, वे कभी असत्य नहीं होते; और जो इतिहास को जानते हैं, वे कितना ही जान लें, वे सदा ही असत्य होते हैं।

इतिहास कभी निर्णय नहीं कर पाता--यह बहुत मजे की बात है--हम पीछे का भी निर्णय नहीं कर पाते कि क्या हुआ। हमला पाकिस्तान ने किया हिंदुस्तान पर, कि हिंदुस्तान ने किया पाकिस्तान पर, वह कभी निर्णीत नहीं होता। वह कभी निर्णीत नहीं होता, कि चीन हमलावर था कि हम हमलावर थे। चीन के इतिहासविद लिखते रहेंगे कि हमने हमला किया और हमारे इतिहासज्ञ लिखते रहेंगे कि चीन ने हमला किया। और सदियों तक ये दोनों इतिहास चलते रहेंगे। और कभी तय होने वाला नहीं कि हमला किसने किया। इतिहास, जो घट चुका, वह भी तय नहीं होता।

और अभी पश्चिम का बहुत बड़ा विचारशील इतिहासविद टायनबी कहता है कि मैं इतना ही कह सकता हूं इतिहास के संबंध में कि ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही मान सकते हैं कि जिस पर भी हम सब सहमत हो जाते हैं, एक बात पर, वह सबसे कम असत्य होगी, बस। और सत्य होगी, इस पर नहीं हो सकते तय। कम से कम असत्य यह बात होगी, इस पर हम तय हो सकते हैं ज्यादा से ज्यादा। इस पर भी विवाद जारी रहेगा। इस पर भी निर्णय नहीं हो सकता।

एक तो यह स्थिति है और एक स्थिति वह है कि पहले लिखी जाती है कथा और राम का आचरण उसके अनुसार हो जाता है। और राम के आचरण में अगर थोड़ा-बहुत भेद भी रहा होगा, तो उस भेद को हटा दिया गया। उस भेद का कोई मूल्य नहीं है। राम उतने निर्णायक नहीं हैं, जितने निर्णायक वाल्मीकि हैं। क्योंकि राम की जो ऊपरी घटनाएं हैं, नान-एसेंशियल हैं, कि वह किसके घर में पैदा हुए, कि उन्होंने कितनी रोटी एक दिन खाईं, कि किससे क्या बात की, यह बेमानी है। उनका रामपन कैसे प्रकट हुआ, वही महत्वपूर्ण है।

पुराण का अर्थ यह है। अव्यक्त से व्यक्त का जो जन्म है, अगर वह वर्तुलाकार है, तो हम भविष्य के ज्ञाता हो सकते हैं। और अतीत के संबंध में भी हमारी निष्पत्ति सत्य हो सकती है। कम से कम असत्य नहीं, पूर्णतः सत्य हो सकती है।

लेकिन समय की इस वर्तुलाकार दृष्टि का अगर खयाल हो, तो दो बातें स्मरण रख लेनी चाहिए। वह यह कि जो भी शुरू होता है, वह समाप्त होता है। पश्चिम को खयाल ही नहीं है प्रलय का। पश्चिम में खयाल है क्रिएशन का। ईश्वर ने जगत को बनाया। लेकिन पश्चिम यह सोच ही नहीं सकता कि वही ईश्वर इस जगत को मिटाएगा भी। क्योंकि यह मिटाना, बनाने वाले के साथ संगत नहीं मालूम पड़ता, इनकंसिस्टेंट मालूम पड़ता है। पश्चिम सोच सकता है कि पिता है ईश्वर जगत का, लेकिन यह नहीं सोच सकता कि वही विध्वंसक और हत्यारा भी होगा।

हम सोच सके। सच तो यह है कि हमसे ज्यादा हिम्मतवर सोचने वाले लोग जमीन पर फिर नहीं हुए। यह बड़ी हिम्मत की बात है यह सोचना कि जिसने बनाया है इस जगत को, वही इसे विनाश में ले जाएगा। क्योंकि हमें एक सत्य दिखाई पड़ गया कि जो भी चीज बनती है, वह मिटती है। और जो बनाने वाला है, वही मिटाने वाला भी है। और मिटने और बनने में हमने विरोध नहीं देखा, एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से देखे। सुबह और सांझ में हमने विरोध नहीं देखा। सुबह जिसे उगते देखा, सांझ उसे डूबते देखा। वही सूरज सांझ को डूबता है, जो सुबह उगा था।

कभी आपने खयाल किया कि जिस सूरज के उगने से सुबह जन्मती है, उसी सूरज के डूबने से रात का अंधेरा उतरता है। वह एक ही सूरज दोनों काम करता है दो छोरों पर।

तो ब्रह्मा के मुहूर्त क्षण में तो सृजन होता है और ब्रह्मा के अंतिम मुहूर्त में विनाश होता है, सब पुनः खो जाता है। और फिर सब ताजा और नया होकर फिर जन्मता है। और यह जन्म की प्रक्रिया अंतहीन चलती रहती है।

अभी ज्योतिष की नवीनतम खोजों ने बताया कि जगत स्थिर नहीं है, ठहरा हुआ नहीं है, एक्सपैंडिंग है, फैलता हुआ है, विस्तार कर रहा है। यह आपके खयाल में एकदम से नहीं पकड़ेगा। जैसे कि कोई बच्चा अपने रबर के गुब्बारे में, फुग्गे में हवा भर रहा हो; और फुग्गा बड़ा होता जाए, और बड़ा होता जाए, और बड़ा होता जाए, ऐसा ही यह अस्तित्व रोज बड़ा हो रहा है; रोज फैलता जा रहा है। और छोटी-मोटी गति से नहीं, बड़ी तीव्र गति से। एक सेकेंड में लाखों मील का फैलाव हो जाता है। हर तारा दूसरे तारे से दूर भागा जा रहा है। रात को जो आप तारे देखते हैं, जहां आप उन्हें आज देखते हैं, कल आप उन्हें वहीं नहीं देखेंगे। वे दूर हटते जा रहे हैं।

पुरानी कथाओं में यह बात है कि कभी जमाना था कि तारे बिलकुल आदमी के मकान के छप्परों के निकट थे। वह पहले तो कथा थी, लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वह कथा कभी सच रही होगी। चाहे आदमी न रहा हो, छप्पर न रहे हों, लेकिन कभी तारे इतने करीब जरूर रहे होंगे। कभी ऐसा जरूर रहा होगा कि हवा का जो गुब्बारा है, बिलकुल बंद था, हवा उसमें थी ही नहीं, सब सिकुड़ा हुआ पड़ा था।

तो यह हो सकता है कि यह सारा विराट शून्य रहा हो और जरा-सी जगह में सब तारे इकट्ठे रहे हों। फिर वे फैलते चले गए हैं, बड़े होते चले गए हैं और रोज बढ़ते जा रहे हैं। तो पश्चिम में एक सवाल रहा है ज्योतिष के सामने कि आखिर ये कहां तक फैलेंगे?

फैलने का आखिरी अंत एक्सप्लोजन ही हो सकता है। अगर बच्चा गुब्बारे को फुलाए ही चला जाए, तो एक सीमा आ जाएगी, जिसके आगे रबर नहीं फूल सकेगी और गुब्बारा फूटेगा। उसी को हमने प्रलय कहा है। और हमने ब्रह्मांड कहा है अस्तित्व को। ब्रह्मांड का अर्थ ही होता है, दैट व्हिच इज़ एक्सपैंडिंग कांसटेंटली। ब्रह्मांड शब्द का ही यही अर्थ होता है। ब्रह्म का अर्थ होता है, विस्तार। विस्तार और ब्रह्म एक ही चीज से बने हैं। हम कहते हैं, वृहत, विस्तीर्ण, वे सब ब्रह्म से ही बने हैं। ब्रह्म का अर्थ होता है, जो फैलता ही चला जाता है, जो रुकता ही नहीं, फैलता ही चला जाता है। ब्रह्मांड का अर्थ है, जो सदा फैलता चला जाता है।

लेकिन जो भी चीज सदा फैलती रहेगी, एक दिन विस्फोट को उपलब्ध होगी। और वह घड़ी आ जाएगी, जहां सब टूटकर बिखर जाएगा। वही प्रलय का दिन है।

बच्चा कब तक बढ़ता रहेगा? कभी आपने खयाल किया कि बच्चा बढ़कर आखिर में करता क्या है? बच्चा बढ़-बढ़कर बस बूढ़ा ही होता है। और क्या करेगा? बच्चा बढ़-बढ़कर बस बूढ़ा ही होता है। और जब मां अपने बच्चे को बड़ा कर रही है, तो उसे कल्पना भी नहीं होती कि वह उसको बूढ़ा कर रही है। बूढ़ा ही कर रही है, कुछ और उपाय नहीं है। हर मां अपने बच्चे को बूढ़ा कर रही है। जो सहायता पहुंचा रही है, वह सब उसको बुढ़ापे की तरफ ले जा रही है। और हर मां अपने बच्चे को बचाकर पहुंचाएगी कहां? मौत के सिवाय कोई जगह तो है नहीं, जहां पहुंच जाए। बचाओ, सम्हालो और मौत की तरफ ले जाओ।

लेकिन मृत्यु से हम बचकर चलते हैं। हम सोचते ही नहीं उसको, हम सोचते नहीं कि जन्म मृत्यु की शुरुआत है। हम सोचते ही नहीं कि प्रारंभ अंत है। हम सोचते ही नहीं कि फैलना फूटने की तैयारी है।

मुल्ला नसरुद्दीन यात्रा के लिए गया है, धर्मतीर्थ। साथ में एक शिष्य को भी ले लिया है, शागिर्द को, वह उसकी रास्ते में सेवा भी करता है। लेकिन मुल्ला बड़ा परेशान है उसकी एक हरकत से। जब भी वह खाना खाता है, तो बीच-बीच में शरीर को काफी हिलाता है। फिर हिलाकर फिर खाना खाता है। फिर शरीर को हिलाता है, फिर खाना खाता है। दो-चार दिन मुल्ला ने बरदाश्त किया। फिर मुल्ला ने कहा कि तू यह क्या करता है! यह करता क्या है बार-बार?

तो उस युवक ने कहा कि बात ऐसी है मुल्ला, कि हिलाकर मैं खाने को जरा ठीक जगह बिठा देता हूं। जगह थोड़ी ज्यादा हो जाती है, फिर मैं खा लेता हूं। मुल्ला ने उसको खींचकर एक चांटा रसीद किया और कहा, नालायक, बदतमीज! तूने मुझे पहले क्यों न बताया? पांच दिन, न मालूम कितना भोजन छूट गया। यह तो मुझे भी शक होता था कि जितना मैं खा रहा हूं, यह खाने की सीमा नहीं है। यह तो मुझे भी पता है कि खाने की आखिरी सीमा फूट जाना है। लेकिन यह तरकीब मुझे पता न थी।

खाने की आखिरी सीमा फूट जाना है, दि बर्स्ट! फैलने की आखिरी सीमा फूट जाना है, दि बर्स्ट। जो बहुत फैलेगा, जल्दी फूट जाएगा। जो जल्दी फैलना चाहेगा, उतनी जल्दी फूट जाएगा। जो बहुत जल्दी बढ़ना चाहेगा, वह जल्दी मर जाएगा। क्योंकि जल्दी बढ़ने का और कोई मतलब नहीं होता, सिर्फ जल्दी मर जाना। जो जल्दी करेगा किसी चीज को पाने की, उतनी ही जल्दी खो देगा, क्योंकि पाने का अंत खोना है।

लेकिन ये दो विरोधी बातें हमें एक साथ दिखाई नहीं पड़तीं, कृष्ण को दिखाई पड़ती हैं। वे कहते हैं, वह अव्यक्त से जो पैदा होता है और फैलता है, वह ब्रह्मा का दिन। फिर अव्यक्त में सिकुड़ने लगता है, वह रात। और फिर अव्यक्त में लीन हो जाता, वह प्रलय है। और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में अव्यक्त में ही सब कुछ लय हो जाता।

और हे अर्जुन, वह ही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृति के वश में हुआ, रात्रि के प्रवेशकाल में लय होता और दिन के प्रवेशकाल में फिर उत्पन्न होता है।

जैसे एक व्यक्ति के लिए मैंने कहा कि वह अपनी ही वासना के कारण, अपनी वासना के वश में हुआ, या वासना के कारण अवश हुआ, अपने वश के बाहर हुआ, फिर मरते क्षण में कामना करता है, फिर-फिर जन्म पाऊं। फिर जन्म जाता है। फिर दौड़ता है, सुबह और रात, और फिर मरता है।

ठीक ऐसे ही यह पूरा ब्रह्मांड भी कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, यह पूरा ब्रह्मांड भी, यह समस्त भूत समुदाय, यह जो कुछ भी दिखाई पड़ता है सब, इसको अगर हम इकट्ठा लें, तो यह भी वासना के वश में हुआ, कामना से प्रेरित हुआ, अपने वश के बाहर हुआ, आकांक्षा में ग्रस्त हुआ, फिर-फिर पैदा होता है, फिर-फिर लय को उपलब्ध होता है। फिर होती है सृष्टि, फिर होता है प्रलय। और यह खेल इस भांति चलता रहता है।

परंतु अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात विलक्षण जो सनातन अव्यक्त है, वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है।

कृष्ण उत्तर दे रहे हैं अर्जुन के प्रश्नों का। उस उत्तर में वे कह रहे हैं कि यह तो नष्ट होता ही रहता है। यह बहुत विचार की बात है। वे अर्जुन से कह रहे हैं कि तू इसकी फिक्र करता है कि सामने जो आदमी खड़े हैं, मर जाएंगे? ये बहुत बार मर चुके, ये फिर जन्म लेंगे, ये फिर मरते रहेंगे। यह मरना और जन्म लेना प्रकृति का हिस्सा है। और इन आदमियों की तो बात ही छोड़, यह पूरी प्रकृति भी न मालूम कितनी दफे बन चुकी है और न मालूम कितनी दफे मिट चुकी है। अनंत है यह प्रक्रिया। यह सब होता ही रहा है। बनता ही रहता है, मिटता ही रहता है। वासना बनाती है, फिर वासना ही मिटा देती है। तू इसकी चिंता में मत पड़। और तू इसकी चिंता को धर्म मत समझ। तू यह मत सोच कि मैं इनको मारने से बच जाऊंगा, तो ये मरेंगे नहीं।

कृष्ण कहते हैं, तू सिर्फ निमित्त है, मृत्यु तो होकर ही रहेगी। तू अपने को कर्ता मत मान। तू मारने वाला है, ऐसा भी मत मान। और तू भाग जाएगा, तो तू बचाने वाला है, ऐसा भी मत मान। तू कर्ता नहीं है। इनकी मृत्यु इनकी जन्म की घड़ी में ही लिखी है। ये जिस दिन जन्मे, उसी दिन मृत्यु को साथ लेकर जन्मे हैं। मृत्यु इनके भीतर ही बड़ी हो रही है। तू शायद निमित्त बनेगा इनकी मृत्यु के प्रकट होने का। तू नहीं बनेगा, तो कोई और बनेगा। कोई भी नहीं बनेगा, तो भी मृत्यु घटित होगी। मृत्यु से बचने का उपाय नहीं, क्योंकि ये जन्म गए। जो जन्म गया, वह मरेगा ही। और इनकी तो बात ही छोड़ तू, यह जो पूरा ब्रह्मांड तुझे दिखाई पड़ता है, यह भी बनता और बिखरता रहता है। आदमी ही पैदा नहीं होता, तारे भी पैदा होते रहते और बिखरते रहते हैं। तारे ही पैदा नहीं होते और बिखरते रहते, यह पूरा अस्तित्व भी फैलता और सिकुड़ता है, बनता और मिटता है, व्यक्त होता और अव्यक्त होता रहता है। तू इस चिंता में मत पड़।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे उसकी भी खबर देता हूं, उस अव्यक्त से भी परे...जिस अव्यक्त से यह ब्रह्मांड पैदा होता है, अदृश्य से, अगोचर से यह ब्रह्मांड पैदा होता है, वह भी अव्यक्त पूरा अव्यक्त नहीं है।

यह बहुत सूक्ष्म दर्शन की बात है, बारीक है, नाजुक भी।

कृष्ण कहते हैं, जिसे मैंने अभी अव्यक्त कहा एक क्षण पहले, अनमैनिफेस्टेड, वह भी पूर्ण अव्यक्त नहीं है, क्योंकि मैनिफेस्ट तो हो ही जाता है, प्रकट तो हो ही जाता है।

बीज है, बीज में वृक्ष अव्यक्त है, माना। लेकिन बीज को जमीन में गाड़ो, तो वृक्ष निकल आता है। तो बीज अव्यक्त था जरूर, लेकिन व्यक्त होने को आतुर था। बीज के भीतर भी आतुरता थी प्रकट होने की। छिपी थी, दिखाई नहीं पड़ती थी, लेकिन थी, बिल्ट-इन थी कहीं। एक-एक पत्ता वृक्ष का छिपा था भीतर बीज के और आतुर था कि प्रकट हो जाऊं। पानी गिरे, कोई खाद डाल दे, कोई मिट्टी में दबा दे, टूट जाऊं, खिलूं, बड़ा हो जाऊं। और फिर एक बीज करोड़ बीज बन जाए। वे करोड़ बीज भी कहीं भीतर छिपे हैं।

तो बीज अव्यक्त है, अनमैनिफेस्ट है, लेकिन फिर व्यक्त तो हो ही जाता है। इसलिए इसे पूर्ण अव्यक्त नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्त हो ही जाता है, वह कोई ज्यादा अव्यक्त नहीं है।

एक सूफी फकीर हुआ है, बायजीद। एक धनपति उसके पीछे पड़ा है। रोज उसके पैर दाबता है और कहता है, राज बता दो। टेल मी दि सीक्रेट। तुम्हारे जीवन का राज बता दो। बायजीद उससे कहता है, जो राज है, अगर वह बता दिया जाए, तो राज कैसे रहेगा? सीक्रेट का

मतलब ही यह है कि जिसे मैं तुझे बताऊंगा नहीं। जिसे मैंने कभी किसी को नहीं बताया। तभी तो वह राज है, अन्यथा फिर राज कैसे रहेगा?

लेकिन वह आदमी मानता ही नहीं। वर्ष बीतने को आ गया। वह है कि रोज पैर दबाए जाता है। वह कहता है बायजीद को कि बता दो राज। तो बायजीद ने एक दिन कहा कि तो ठीक है, आज बताए देता हूं, लेकिन एक शर्त रहेगी। क्या तुम मेरे राज को राज रखोगे? किसी को बताओगे नहीं? विल यू मेनटेन दि सीक्रेट ऐज सीक्रेट? कसम खाओ कि क्या तुम राज को राज रखोगे और किसी को बताओगे नहीं।

उस आदमी ने कहा, कसम परमात्मा की कि राज को राज रखूंगा और किसी को बताऊंगा नहीं। बायजीद ने कहा, शाबाश, अगर तू अपनी कसम रख सकता है, तो मैं भी अपनी कसम रखूंगा और राज को बताऊंगा नहीं। और अगर मैं ही तोड़ दूंगा, तो तेरा कैसे भरोसा करूं कि तू नहीं बताएगा!

तो जो प्रकट हो जाए, वह अप्रकट नाम मात्र को था, जस्ट फार दि नेम्स सेक। बीज नाम मात्र को अप्रकट है। इतनी तो तैयारी दिखा रहा है प्रकट होने की। ऐसा आतुर है। नाम मात्र को अव्यक्त है।

तो अभी जिस अव्यक्त की बात कही, कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, वह अव्यक्त माना है। लेकिन नाम मात्र को, क्योंकि व्यक्त हो जाता है। माना कि अदृश्य है, लेकिन दृश्य हो जाता है।

तो जिस अदृश्य में दृश्य छिपा हो, वह बहुत अदृश्य हो नहीं सकता। हमें दिखाई न पड़ता हो, यह और बात है। हमारी आंखें कमजोर होंगी, हमारी आंखें न पकड़ पाती होंगी, लेकिन वह बिलकुल अव्यक्त नहीं कहा जा सकता। इन दोनों के पार, इस अव्यक्त के भी पार, बियांड दिस अनमैनिफेस्ट, वह ब्रह्म है। वह अव्यक्त से भी अति परे। बियांड दि बियांड, अव्यक्त से भी अति परे। उसके भी पार, पार के भी पार, अतिक्रमण का भी अतिक्रमण करता हुआ वह ब्रह्म है, जो सनातन अव्यक्त है। जो सनातन अव्यक्त है, इटरनली अनमैनिफेस्ट। यह तो टेंपररी अनमैनिफेस्ट है, अस्थायी रूप से अव्यक्त है, फिर व्यक्त हो जाता है, फिर अव्यक्त हो जाता है।

लेकिन एक ऐसा अव्यक्त भाव भी है, एक ऐसा अव्यक्त अस्तित्व भी है, एक ऐसा अव्यक्त होना भी है, जो कभी व्यक्त न हुआ है, न होगा, न हो सकता है। वह अव्यक्त के भी परे है। वही ईश्वर, वही ब्रह्म, वही परमात्मा, वही मोक्ष--या जो भी नाम हम देना चाहें, दें--वही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है। क्यों? क्योंकि उसका कभी कोई सृजन नहीं हुआ, वह नष्ट नहीं हो सकता। उसकी कभी सुबह नहीं हुई, उसकी सांझ नहीं हो सकती। उसकी कभी सृष्टि नहीं हुई, तो उसकी कभी प्रलय नहीं हो सकती है।

अगर तू जानना ही चाहता है अमृत को और अगर तू जानना ही चाहता है कि कैसे मैं लोगों की मृत्यु से बचूं और कैसे मैं मृत्यु से बचूं, विनाश से बचूं, तो अर्जुन से कृष्ण ने कहा, तू उसे जान ले, जो अव्यक्त के भी पार है।

हमारे भीतर भी तीन पर्तें हैं। एक व्यक्त, जो हमारा शरीर है। एक अव्यक्त, जो हमारा मन है। और एक अव्यक्त के भी पार अव्यक्त, जो हमारी आत्मा है। मन में कुछ भी हो, तो आज नहीं कल व्यक्त हो जाता है। शरीर तो व्यक्त है ही। उसमें कुछ अव्यक्त नहीं है, वह व्यक्त है ही। लेकिन मन में जो कुछ हो, वह आज नहीं कल व्यक्त हो जाता है, बीज की तरह। और मन के ही अव्यक्त से शरीर का व्यक्त पैदा होता है। इसलिए जब हम मरते हैं, तो शरीर तो छूट जाता है, लेकिन मन नहीं छूटता। मन को हम साथ ले जाते हैं, वह बीज है, कैप्सूल है, बंद है, हमारे साथ चला जाता है। फिर नए शरीर को बना लेता है।

यह आप जानकर हैरान होंगे कि आप अगर मरते हुए आदमी के मन को पहचानने की क्षमता रखते हों, तो मरते क्षण में उसके मन के अध्ययन से यह तय किया जा सकता है कि वह किस भांति अगला जन्म लेगा, कैसा उसका व्यक्तित्व होगा, क्या उसके व्यक्तित्व का ढंग होगा। यह भी जाना जा सकता है कि वह सुंदर होगा, कुरूप होगा, बहुत अति वासना से ग्रस्त होगा, कि कम वासना से ग्रस्त होगा--यह सब जाना जा सकता है। मरते क्षण में मन सिकुड़कर बीज बन जाता है। उस बीज में बिल्ट-इन, भीतर छिप जाती है पूरी प्रक्रिया नए शरीर को ग्रहण करने की।

इसलिए इस जगत में कुरूप अकारण ही कुरूप पैदा नहीं होते, और न सुंदर अकारण सुंदर पैदा होते हैं। इस जगत में हम जो कुछ भी लेकर पैदा होते हैं, वह हमारे मन के साथ लाया हुआ बीज है। उस बीज के अनुसार ही हम निर्मित होते हैं। उस बीज के अनुसार ही ब्लूप्रिंट, नक्शा हमारे मन में छिपा है। वह हमारे शरीर को निर्मित करता है, बनाता है।

यह जो शरीर आज बनकर खड़ा होता है, योग की गहनता को जानने वाले निरंतर जानते रहे हैं कि मरते क्षण में आदमी के बीज को देखा जा सकता है, कि अब यह कहां यात्रा करेगा, कैसे यात्रा करेगा, क्या इसका फल होगा।

अभी वैज्ञानिक भी कहते हैं--उन्हें मरने का तो पता नहीं पीछे का--वे कहते हैं, जब मां के पेट में पहला अणु जन्मता है, तब उसका अध्ययन करके हम बता सकते हैं बहुत-सी बातें, कि इस आदमी की आंखों का रंग क्या होगा, इसकी ऊंचाई क्या होगी, इसके बाल कैसे

होंगे, यह कितनी उम्र का हो सकेगा, इसकी बुद्धि कैसी होगी, इसका स्वास्थ्य कैसा होगा। बहुत कुछ हम मां के पेट में, जन्म का जो पहला क्षण है, मुहूर्त का, जब पहला अंडा निर्मित होता है, तब उस अंडे के अध्ययन से बहुत कुछ कह सकते हैं कि क्या-क्या होगा।

यह दूसरे छोर से बात को पकड़ा जाना है। लेकिन आज जो मां के पेट में पहला अणु बना है, वह सिर्फ मां और पिता के देह-कणों से मिलकर नहीं बन गया है, उसमें एक नया तत्व भी प्रविष्ट हुआ है, वह अव्यक्त मन है। मां का अणु भी व्यक्त है, पिता का अणु भी व्यक्त है। वे तो व्यक्त हैं, उनसे तो देह बनेगी; लेकिन उन दोनों के बीच एक तीसरा तत्व भी प्रवेश कर गया है।

इसीलिए एक ही मां-बाप बच्चों को जन्म देते हैं और सभी बच्चे भिन्न होते हैं। उसका और कोई कारण नहीं है। क्योंकि उनका व्यक्त तो सबका एक है, लेकिन अव्यक्त जो मन प्रवेश करता है, वह सबका अलग-अलग है। वे सब अपनी-अपनी यात्राएं लेकर साथ आ रहे हैं। वे सब भिन्न हो जाते हैं।

इस जगत की भिन्नता हमारे अव्यक्त मन की भिन्नता है। फिर वह रोज-रोज प्रकट होनी शुरू होगी। फिर जैसे बच्चा बड़ा होता है, मन शरीर में फैलने लगता है और प्रकट होने लगता है। फिर जो फूल लगते हैं या कांटे लगते हैं, जो कुछ भी लगता है, वह मन से आता है और फैलता चला जाता है। लेकिन इन दोनों के पार–व्यक्त शरीर और अव्यक्त मन के पार–अव्यक्त से भी परे, अति परे आत्मा है।

यह व्यक्ति के अणु को हम समझ लें, तो ठीक ऐसा ही विराट अस्तित्व का अणु, महाअणु भी है। व्यक्ति को परमाणु कहें, अस्तित्व को महाअणु कहें। यह क्षुद्रतम है, वह विराटतम है, लेकिन इन दोनों की व्यवस्था बिलकुल एक जैसी है। इसलिए पुराने शास्त्र कहते हैं, जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में है, फैला हुआ है सिर्फ विराट बड़ा रूप होकर।

कृष्ण ने कहा कि अगर तुझे सच में ही विनाश की संभावनाओं के पार हो जाना है, तो तू उस ब्रह्म की खोज कर, जो न कभी पैदा होता है और न कभी मरता है; जो न कभी प्रकट होता है और न कभी अप्रकट होता है; जो न बनता है, न बिगड़ता है; जो न संगृहीत होता है, न बिखरता है; जो बस है, जस्ट इज़। जो सिर्फ है; जिसकी सुबह नहीं, सांझ नहीं; आना नहीं, जाना नहीं; जो बस है, उसकी तू खोज कर।

उसकी खोज कहां से हो सकती है? एक खोज तो यह है कि हम गीता पढ़ लें और हमें पता चल जाए। काश, इतना सरल होता, तो गीता इतने लोग पढ़ चुके हैं कि इस जगत में ज्ञानी ज्यादा होते और अज्ञानी कम। अगर यह इतना सरल होता मामला कि हम पढ़ लें सिद्धांत को, समझ लें बिलकुल–और इंटलेक्चुअल अंडरस्टैंडिंग, बौद्धिक समझ बिलकुल पूरी हो जाए, तो भी कुछ नहीं होता। कभी-कभी समझ, कोरी समझ, बड़ी नासमझी की होती है। सब समझ लेते हैं शब्दों को, सिद्धांतों को, फिर भी हाथ के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता है। वह तो तभी पड़ेगा, जब इस समझ का अनुभव हो।

और इस विराट में उतरना तो बहुत कठिन है। इस विराट में उतरने वाले लोग हैं। और जब कोई इस विराट में उतर जाता है, तब उसकी हैसियत कृष्ण, बुद्ध और महावीर जैसी हो जाती है। लेकिन विराट में उतरना तो अति कठिन है, पहले तो अपने परमाणु में ही उतर जाएं, वही काफी है। अपने ही भीतर जरा उसे खोज लें, जो अव्यक्त से भी अव्यक्त है। लेकिन वह तो बहुत दूर, हमें अपने शरीर का ही पूरा पता नहीं है, जो व्यक्त है। वह तो बहुत दूर, जो व्यक्त है, मैनिफेस्ट है, हमें उस शरीर का भी पूरा पता नहीं है।

आपको अपने शरीर का भी पूरा पता नहीं है, अगर मैं ऐसा कहूं, तो आप कहेंगे, कैसी अजीब बात कर रहे हैं! नहीं, आपको बिलकुल पता नहीं है। इस शरीर में भी इतने राज छिपे हैं, उनका हमें कोई पता नहीं। इन्हीं राजों की खोज योग और तंत्र और समस्त धर्म करते रहे हैं–इन्हीं राजों की खोज। इस शरीर में कुंडलिनी जैसी शक्ति छिपी है, लेकिन उसका हमें कभी कोई पता नहीं। उसकी झलक भी नहीं मिली। वह इसी शरीर में छिपी है। व्यक्त का हिस्सा है, अव्यक्त का नहीं; बिलकुल व्यक्त है। लेकिन हम कभी उस पर पहुंचे ही नहीं।

जैसे हमारे ही घर में खजाना गड़ा हो और हमें कुछ पता न हो और हम दूसरों के घरों के सामने भीख मांग रहे हों। और हमारे घर में खजाना गड़ा हो और हम भीख मांगते-मांगते मर जाएं। लेकिन गड़े होने से खजाना खजाना नहीं होता। जब तक वह प्रकट न हो जाए, तब तक खजाने का कोई प्रयोजन नहीं है।

हमारे शरीर में अदभुत शक्तियां छिपी हैं। उन शक्तियों का हमें पता नहीं है। जिस व्यक्ति को इस विराट यात्रा पर निकलना है, पहले उसे अपने शरीर के भीतर छिपी हुई शक्तियों से परिचित होना पड़ता है। क्योंकि उन छिपी हुई शक्तियों के सहारे वह अपनी मन की छिपी हुई शक्तियों को खोजने में समर्थ हो जाता है। और मन में तो बहुत कुछ छिपा है, जिसका हमें बिलकुल भी पता नहीं। मन की हम सतह पर ही जीते हैं। उसकी अनंत गहराइयां हैं, उनका हमें कोई भी पता नहीं है।

आपका मन आपके समस्त जन्मों की स्मृति अपने साथ लिए हुए अभी मौजूद है, यहीं। आपने जो कुछ भी किया है अनंत-अनंत काल में, उस सबकी स्मृति एनग्रेव्ड है; आपके भीतर मन के कोने में सब दबी पड़ी है। उसे आज भी खोला जा सकता है। और आपको जानना जरूरी नहीं है, कि आप किसी और से पूछने जाएं कि पुनर्जन्म होता है या नहीं, आपके भीतर ही आप उतर सकते हैं उन सीढ़ियों को, जहां से आपको पिछले जन्मों की याददाश्त आनी शुरू हो जाए; जहां से आप लौट पड़ें यात्रा पर और टाइम ट्रैक में वापस, समय की

धारा में उलटे लौट जाएं और पीछे के सारे दृश्य फिर से देखें। वे सब के सब मौजूद हैं। वे सब के सब मौजूद हैं। कोई भी स्मृति कभी खोती नहीं है मन में, लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है।

इस मन के पास अनूठी–अनूठी–शक्तियां हैं, लेकिन हम क्षुद्र चमत्कारों से दीवाने हो जाते हैं। एक आदमी हाथ उठा दे और राख आपके हाथ में दे दे, तो हम पागल हो जाते हैं कि मिरेकल हो गया, चमत्कार हो गया। यह ऐसे ही है कि जिसके घर में हीरे-जवाहरातों का ढेर लगा है, वह किसी के द्वार पर जाए, और एक आदमी उसे खीसे से निकालकर एक नया पैसा दे दे, और वह कहे, चमत्कार! बस, ये सब चमत्कार ऐसे ही हैं। आपको अपने मन की शक्ति का कोई पता नहीं कि मन क्या कर सकता है।

पतंजलि ने जिसे सिद्धियां कहा है, वे सब मन की छिपी हुई शक्तियां हैं। वे आठ शक्तियां मन की शक्तियां हैं। और मन अनमैनिफेस्ट, अव्यक्त है, बीज की भांति। वे सब प्रकट हो सकती हैं। हम तो उनके धुएं में एकदम अंधे हो जाते हैं। कभी किसी आदमी में छोटी-मोटी कोई शक्ति प्रकट हो जाती है, तो हम बिलकुल अंधे और पागल हो जाते हैं। कुछ मूल्य नहीं है उनका, क्योंकि मन से जो शक्तियां प्रकट होती हैं, वह संसार का हिस्सा है।

इसलिए पतंजलि ने अपने सिद्धियों के विवरण में स्पष्ट कहा कि इनका मैं वर्णन सिर्फ इसलिए करता हूं योग-सूत्र में, ताकि तुम्हें पता हो कि तुम्हारे भीतर क्या छिपा है। लेकिन न तो ये पाने योग्य हैं, न ये चाहने योग्य हैं; और जो इन्हें पाने और चाहने में लग जाता है, उसकी परम यात्रा में बाधा पड़ती है।

परम यात्रा तो अव्यक्त से भी अव्यक्त में जाना है, मन के भी पार। लेकिन मन की ये छिपी हुई शक्तियां अगर जगा ली जाएं और आदमी समझदार हो और इन शक्तियों के मोह में ग्रस्त न हो जाए–जो कि अति कठिन है–तो इन शक्तियों के द्वारा वह उस अव्यक्त की, अव्यक्त से भी जो अव्यक्त है, उसकी खोज पर निकल सकता है।

शक्तियों के दो उपयोग हो सकते हैं। या तो हम उस शक्ति से अपने क्षुद्र तल पर खड़े होकर कोई काम ले लें; और या उस शक्ति से कोई काम न लें, केवल जिस तल पर वह शक्ति है, उसके पार जाने के लिए धक्का ले लें।

मुझे दस रुपए मिल जाएं, तो इन दस रुपयों से मैं अपनी किसी वासना को भी तृप्त कर सकता हूं। और ये रुपए खो जाते हैं। और मेरी वासना दो दिन बाद फिर वापस अपनी जगह लौट आएगी। इसलिए रुपए मिले या न मिले, बराबर हो गए। मैं इन दस रुपयों से दस घंटे के लिए बाहर के जगत की चिंता से भी मुक्त हो सकता हूं कि अब मुझे दस घंटों के लिए भूख-प्यास की फिक्र न करनी पड़ेगी। अब ये दस रुपए मेरे पास हैं, अब मुझे शरीर की दस घंटे तक चिंता नहीं करनी है; मैं दस घंटे तक शरीर को अब भूल सकता हूं। और इन दस रुपयों का सहारा लेकर कोई आदमी दस घंटे के ध्यान में चला जाए, तो ध्यान से जो मिलेगा, वह दस रुपयों से अनंतगुना ज्यादा है, उसका कोई हिसाब नहीं। और जो मिलेगा, वह कभी खोता नहीं।

अब दस रुपए का हम दोनों उपयोग कर सकते हैं। क्षुद्र वासना में करेंगे, तो वासना पुनरुक्ति वाली है, वह कल फिर खड़ी हो जाएगी, दस रुपयों को खाकर फिर खड़ी हो जाएगी।

मैं कल ही एक कहानी कह रहा था। कहानी एक वास्तविक घटना है। स्विटजरलैंड में एक आदमी को, एक गरीब दर्जी को दस लाख रुपए की लाटरी मिल गई। दूसरे महायुद्ध के पहले की घटना है, बहुत अदभुत घटना बनी। दस लाख की लाटरी मिल गई। सांझ को वह अपनी दुकान पर कपड़े सी कर दुकान बंद करने की तैयारी में था कि लाटरी की खबर देने वाले अधिकारी आए। उन्होंने जांच-पड़ताल की और पक्का पाया कि यही आदमी है। उस दर्जी को उन्होंने कहा कि तुम्हें दस लाख की लाटरी मिल गई, भगवान को धन्यवाद दो।

उसने कहा, धन्यवाद तो पीछे दूंगा! पहले उसने चाबी लगाकर दरवाजा बंद किया और चाबी सामने के कुएं में फेंक दी। उसने कहा कि अब खत्म; यह दर्जी की दुकान बंद। अब इससे कोई लेना-देना नहीं।

एक साल में उस आदमी को पहचान नहीं सकते थे कि वह क्या हो गया। वह बिलकुल करीब-करीब पागल, रुग्ण, सब कुछ हो गया, जो हो सकता था। रुपया, जो नासमझ के हाथ में करता है, वह सब कर दिया। शराब पी, वेश्याओं के पास भटका। शायद ही सोया सालभर। सब तरह बर्बाद हो गया और दस लाख रुपए भी उसने सालभर में बर्बाद कर दिए। सालभर बाद एक पैसा उसके पास नहीं था। वापस आकर अपनी दुकान का ताला तुड़वाकर फिर दुकान पर बैठा। एक साल में दस साल बूढ़ा हो गया। सब तरफ जीर्ण-जर्जर हो गया।

लेकिन बड़ा मजा जो हुआ वह यह कि एक साल बाद फिर उसे लाटरी मिल गई। फिर दस लाख रुपए की लाटरी, जो कि मुश्किल से होता है कि एक आदमी को दो बार लाटरी मिल जाए। और जब अधिकारी उसके सामने आया, तो उसने अपनी आंखें उठाईं–चश्मा लग गया था सालभर में–चश्मे से गौर से देखा, वही आदमी! दर्जी ने कहा कि फिर क्या वही झंझट लेकर आ गए? उसने कहा कि हम भी चकित हैं! झंझट कह रहे हो? दस लाख की लाटरी फिर तुम्हें मिल गई! उस अधिकारी ने कहा, भगवान को धन्यवाद दो।

उसने कहा, धन्यवाद पीछे दूंगा, पहले लाटरी के कागजात कहां हैं? कागजात लेकर उसने कुएं में फेंक दिए। उसने कहा कि अब दुबारा उस नर्क में जाने की बिलकुल इच्छा नहीं। सालभर में दस लाख ने जो नर्क दिया, अब दुबारा नहीं! इस जन्म में तो बिलकुल नहीं! अगले जन्म में भूल जाऊं, फिर दूसरी बात है। और अपनी दुकान पर बेचारा फिर अपने कपड़े काटने में लग गया। वह अधिकारी अवाक खड़ा है!

क्या हुआ? लेकिन इतनी समझ बहुत कम लोगों में होती है। शायद एक आदमी को दो दफे लाटरी मिलना इतना दुर्लभ नहीं है, लेकिन इतनी समझ आदमी में होनी बड़ी दुर्लभ है।

शक्ति मिलती है, हम उसे और निर्बल होने के काम में लाते हैं। बड़े मजे की बात है! शक्ति मिलती है, तो हम दुर्बल होने के काम में लाते हैं उसे। और जो समझदार हैं, वे दुर्बल भी होते हैं, तो दुर्बलता को भी शक्ति की खोज बना लेते हैं।

मन में अव्यक्त शक्तियां छिपी हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति ध्यान में उतरना शुरू होता है, मन की अव्यक्त शक्तियां प्रकट होने लगती हैं। और तभी खतरे शुरू हो जाते हैं।

एक महिला मेरे पास काम कर रही थी। एक छोटी-सी घटना एक ध्यान के शिविर में उसे घटी। ध्यान गहरा हुआ, थोड़ा ही गहरा हुआ। ध्यान से लौटते वक्त साथ में किसी महिला के कंधे पर उसने हाथ रख लिया चलते वक्त। उस महिला की कमर में दर्द था। उसके हाथ रखते ही दर्द विदा हो गया। बस उतनी-सी घटना, और वह स्त्री पागल हो गई। पागल इस अर्थ में कि अब वह इसी काम में लगी हुई है कि इसकी बीमारी ठीक कर देनी है, उसकी बीमारी ठीक कर देनी है। ध्यान-व्यान समाप्त हो गया! उसने मेरे पास आना बंद कर दिया। उसने सोचा, मामला समाप्त हो गया, बात खत्म हो गई; पा ली सिद्धि।

अभी आ रहा था, उसके आठ दिन पहले उस महिला ने एक मित्र को भेजा और पुछवाया कि मैं तो बहुत परेशान हो गई हूं, कहीं मेरी शक्ति तो नहीं खो रही है यह इलाज करने में? और अब मेरे फिर से ध्यान का क्या हो?

हम सब के साथ ऐसा होता है। जरा-सा कुछ मिल जाए कि हम पागल हो जाते हैं। मन के अव्यक्त स्रोत से शक्ति जगती है, उस वक्त बहुत सावधान होने की जरूरत है। क्योंकि उस शक्ति का उपयोग हो सकता है या तो शरीर की वासनाओं के लिए, तब आप वापस गिर पड़ेंगे; या उसका उपयोग हो सकता है उस परम अव्यक्त की यात्रा के लिए ईंधन की तरह, पेट्रोल की तरह। उस शक्ति पर आप सवार हो जाएं, परम अव्यक्त की यात्रा पर निकल जाएं।

वह अव्यक्त, परम अव्यक्त, दि अल्टिमेट अनमैनिफेस्ट आपके भीतर इस क्षण भी उतना ही मौजूद है, जितना कभी था और कभी होगा।

और जब तक आप अपने शरीर में होते हैं, तब तक दूसरा आदमी आपसे अलग है, सब शरीर आपसे अलग हैं। शरीर के तल पर सब अलग हैं। जब आप मन के करीब आते हैं, तो कभी-कभी मन के साथ दूसरे से तालमेल भी बैठ जाता है और एकता भी अनुभव होती है। कभी कोई किसी के प्रेम में गिर जाता है। प्रेम में गिरने का केवल एक अर्थ है कि दोनों के मन ने कहीं एकता का सूत्र खोज लिया।

शरीर के तल पर कोई एकता कभी नहीं हो पाती। मन के तल पर कभी-कभी एकता सध जाती है। लेकिन जो मन के भी पार उतर जाते हैं, वहां अनेकता नहीं रह जाती; वहां एकता सधी ही हुई है।

इसे हम ऐसा समझें कि मैं एक सर्किल खींचूं, एक वर्तुल खींचूं, उसके बीच में सेंटर पर एक निशान बना दूं। फिर वर्तुल की परिधि से एक रेखा खींचूं केंद्र की तरफ, फिर दूसरी रेखा खींचूं, फिर तीसरी रेखा खींचूं। ये तीनों रेखाएं परिधि पर फासले पर होंगी और जैसे-जैसे केंद्र की तरफ चलेंगी, पास होने लगेंगी। और जब केंद्र पर पहुंचेंगी, तो एक हो जाएंगी। जो परिधि पर बिलकुल भिन्न-भिन्न था, वही केंद्र पर एक हो जाता है।

जो लोग शरीर से बंधे हैं, वे इस जगत को अणुओं की तरह देखेंगे अलग-अलग, आईलैंड की तरह। जो लोग थोड़ा मन में समर्थ हो जाते हैं--कवि हैं, चित्रकार हैं, संगीतज्ञ हैं--वे इस जगत में एकता का स्वर खोजने लगते हैं। लेकिन जो बिंदु पर, केंद्र पर आ जाते हैं, परम केंद्र पर आ जाते हैं, उनके लिए अनेकता ऐसे ही तिरोहित हो जाती है, जैसे प्रकाश जल जाए और अंधेरा खो जाए; सुबह का सूरज निकल आए और रात कहीं खोजे से न मिले।

उस परम अव्यक्त में सब एक है, अद्वैत है। अर्ध अव्यक्त में कभी-कभी एकता की झलक मिल जाती है। पूर्ण व्यक्त में एकता का कोई उपाय नहीं, सभी कुछ अनेक है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
अक्षर ब्रह्म और अंतर्यात्रा— अध्याय—8 (प्रवचन—आठवां)

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।21।।
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।22।।
और जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है उस ही अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परम गति कहते हैं, तथा जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं, वह मेरा परम धाम है।

और हे पार्थ, जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं और जिस परमात्मा से यह सब जगत परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।

गति संसार का स्वभाव है। ठहरना नहीं और चलते ही रहना, ऐसा संसार का स्वरूप है। यहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है; जो ठहरा हुआ मालूम होता है, वह भी ठहरा हुआ नहीं है। जो चलता हुआ मालूम होता है, वह तो चलता हुआ है ही; जो ठहरा हुआ मालूम होता है, वह भी चलता हुआ है। पत्थर ठहरे हुए मालूम पड़ते हैं, मकानों की दीवालें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं, लेकिन अब विज्ञान कहता है, वे सब भी चलती हुई हैं। और यह गति बहुआयामी है, मल्टी-डायमेंशनल है। इसे हम थोड़ा समझें, तो परम गति का हमें खयाल आ सके कि वह क्या है।

दीवाल दिखती है ठोस, जरा भी चलती हुई नहीं, लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं, दीवाल का अणु-अणु चल रहा है। अगर दीवाल के हम परमाणुओं को देखें, तो सब परमाणु गतिमान हैं। और प्रत्येक परमाणु के भीतर जो और छोटे खंड हैं, इलेक्ट्रांस, वे बड़ी तीव्र गति से चक्कर काट रहे हैं। हमें दीवाल थिर दिखाई पड़ती है, क्योंकि हमारी आंखें उतनी सूक्ष्म गति को पकड़ने में असमर्थ हैं। गति जितनी तीव्र हो जाती है, उतनी ही हमारी आंख पकड़ने में मुश्किल हो जाती है।

जैसे एक बिजली का पंखा बहुत जोर से चलता है, तो आपको पता नहीं चलता है कि उसमें तीन पंखुड?ियां हैं, चार पंखुड़ियां हैं या दो पंखुड़ियां हैं। अगर पंखा और भी तेजी से चले, तो आपको यह भी पता नहीं चलेगा कि पंखे में पंखुड़ियां हैं। ऐसा ही पता चलेगा कि गोल टीन का घेरा ही घूम रहा है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पंखे की गति इतनी बढ़ाई जा सकती है कि आप उसके पार हाथ न डाल सकें, और इतनी भी बढ़ाई जा सकती है कि आप उसके ऊपर बैठे रहें और नीचे जो पंखा चल रहा है, वह आपको थिर मालूम पड़े। इतनी तेजी से घूम सकता है कि दो पंखुड़ियों के बीच की जो खाली जगह है, जब तक आपको उस खाली जगह का पता चले, उसके पहले ही दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जाए, तो आपको कभी भी पता नहीं चलेगा। पता चलने में समय चाहिए। और अगर तीव्रता से घूमती हो गति और हमारी पकड़ने की क्षमता कम पड़ती हो, तो गति का पता नहीं चलता।

पत्थर भी चल रहे हैं, उनका अणु-अणु घूम रहा है। दीवालें भी चल रही हैं, उनका अणु-अणु घूम रहा है। उतनी ही तेज गति से उनका अणु घूम रहा है, जितनी तेज गति से आकाश में चांदत्तारे घूम रहे हैं। इस जगत में कुछ भी थिर नहीं है।

एडिंग्टन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जीवनभर पदार्थों की खोज करने के बाद एक शब्द मुझे ऐसा मिला है मनुष्य की भाषा में, जो कि नितांत ही झूठ है, और वह शब्द है, रेस्ट, ठहराव। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। इसलिए जब भी हम कहते हैं किसी चीज को एट रेस्ट, तो हम गलत ही कहते हैं। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई हो नहीं सकती है। इस जगत में होने के लिए चलना ही नियम है।

मैंने कहा, बहुआयामी है यह गति। आप यहां बैठे हुए मालूम पड़ रहे हैं। निश्चित ही, आप बिलकुल बैठे हुए हैं, चल नहीं रहे हैं। लेकिन जिस पृथ्वी पर आप बैठे हैं, वह बड़ी तेजी से भागी जा रही है। उस पृथ्वी की दोहरी गति है। आप बैठे हुए हैं जिस पृथ्वी पर, वह पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है। और अपनी कील पर ही नहीं घूम रही, कील पर घूमती हुई वह सूर्य का चक्कर भी लगा रही है। दोहरी गति है उसकी। और जिस सूर्य का वह चक्कर लगा रही है, वह सूर्य भी अपनी कील पर घूम रहा है इस पृथ्वी को लिए। और अपने सब ग्रहों को लेकर वह सूर्य भी किसी महासूर्य का परिभ्रमण कर रहा है।

ऐसा मल्टी-डायमेंशनल, गति के भीतर गति है, और गति के भीतर गति है। शायद जिस महासूर्य का यह सूर्य चक्कर लगा रहा है, और अनेक सूर्य चक्कर लगाते होंगे, वह सूर्य भी अपनी कील पर घूमकर और किसी महान से महान सूर्य के चक्कर पर निकला होगा। परिभ्रमण, पर्तों-पर्तों में, जीवन का स्वभाव है।

इस परिभ्रमणशील जीवन में शांति असंभव है। इस गति से भरे हुए, भागते हुए जगत में कोई विश्राम संभव नहीं है। और जब आप विश्राम भी कर रहे होते हैं अपने बिस्तर पर लेटकर, तब आपका खून पूरी गति लगा रहा है। आपके कण-कण शरीर के गति कर रहे हैं। आपका हृदय धड़कन कर रहा है; आपकी श्वास गति कर रही है; आपका मन स्वप्नों में परिभ्रमण कर रहा है। जब आप बिस्तर पर विश्राम कर रहे हैं, तब भी कहीं कोई आपके भीतर विश्राम की जगह नहीं है। इस जगत में होते हुए विश्राम नहीं है।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, और जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसा कहा गया है, उस अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परम गति कहते हैं। और अर्जुन, अगर तू उस परम गति को उपलब्ध होना चाहता है, जहां विश्राम स्वभाव है...।

इस जगत में तो श्रम ही स्वभाव है, अशांति ही परिणाम है। इस जगत में रहते हुए, इस जगत की कील पर घूमते हुए, न कोई विश्राम को उपलब्ध हो सकता है, न कोई विश्रांति को। यदि कोई विश्रांति की खोज में जाना ही चाहे, तो उसे अपनी चेतना का तल ही बदलना पड़ेगा। परिधि से हटाकर केंद्र पर, संसार से हटाकर ब्रह्म पर, उसे अपनी चेतना का पूरा रूपांतरण कर लेना होगा।

वह जो अक्षर नाम से कहा है, उस अक्षर नामक अव्यक्त भाव को ही परम गति कहते हैं।

यहां दो बातें समझ लेनी चाहिए। अक्षर का अर्थ है, जो कभी क्षीण नहीं होता, क्षरता नहीं। जैसा है, वैसा ही है। कणभर जिसमें कभी कोई रूपांतरण नहीं होता, जो अपने स्वभाव से जरा भी च्युत नहीं होता। अच्युत है, ठहरा हुआ है।

देखा है रास्ते पर चलती हुई बैलगाड़ी को। चाक चलता है, लेकिन कील ठहरी रहती है। और बड़ा मजा तो यह है--और इस मजे के राज को जान लेना, जीवन के बड़े राज को जान लेना है--कि जिस कील पर चाक घूमता है, वह कील जरा भी नहीं घूमती है, वह खड़ी ही रहती है। चाक हजारों मील की यात्रा कर लेता है, कील अपनी जगह को छोड़ती ही नहीं। और मजा इसलिए कहता हूं कि अगर यह कील न हो, तो यह चाक जरा भी घूम नहीं सकता। इस ठहरी हुई कील के कारण ही, इसके आधार पर ही चाक घूमता है।

संसार का अस्तित्व असंभव है, अगर इस संसार के भीतर गहन में, इसकी गहराइयों में, कहीं कोई अव्यक्त, कहीं कोई अक्षर कील मौजूद न हो। यह पूर्वीय मनीषा की खोजों में से एक गहनतम खोज है। क्योंकि पाया हमने कि जहां भी परिवर्तन है, वहां परिवर्तन के आधार में कोई अपरिवर्तित चाहिए। और जहां भी गति है, वहां गति के मूल में कोई अगति चाहिए। और जहां सब चीजें चल रही हों, वहां उनके चलने के लिए भी कोई अचल चाहिए। इस गत्यात्मक जगत में गति-शून्य कोई कील चाहिए।

उस कील को ही कृष्ण अक्षर कह रहे हैं। वे कहते हैं, वह जो अक्षर है, अव्यक्त है, वह भाव ही परम गति है।

लेकिन इस अक्षर तक पहुंचने के लिए हम कौन-सी यात्रा करें? इस अव्यक्त भाव को, जो गहन में छिपा है, निगूढ़ है, इस तक हम कैसे पहुंचें? क्योंकि हमारे पहुंचने का कोई भी उपाय अगर परिधि पर हुआ और चाक के सहारे हुआ, तो हम कभी भी इस कील तक नहीं पहुंच पाएंगे।

ऐसा समझें कि एक बड़ा चाक है, उस पर आप बैठे हुए हैं। और आप चाक पर घूमते रहें, हजारों-हजारों चक्कर लगाएं, तो भी आप केंद्र पर नहीं पहुंचेंगे। यद्यपि चाक केंद्र पर ही घूमता है, कील पर ही घूमता है, फिर भी आप कील पर नहीं पहुंचेंगे चाक पर घूमते हुए। आपको चाक छोड़कर कील की तरफ सरकना होगा। आपको धीरे-धीरे चाक से हट जाना होगा। परिधि से हटना होगा, केंद्र की तरफ सरकना होगा। और जिस दिन आप चाक को बिलकुल छोड़ देंगे, उसी क्षण आप कील को, अक्षर को उपलब्ध हो जाएंगे।

संसार में हम कितनी ही यात्राएं करें, उस अक्षर को हम न खोज पाएंगे। कोई चाहे तो जाए हिमालय, केदार और बद्री, और कोई चाहे तो जाए कैलाश। कोई चाहे तो मक्का और मदीना, कोई काशी, कोई गिरनार, जिसे जहां जाना हो, भटकता रहे। संसार में कहीं भी कोई ऐसी जगह नहीं है, जहां से आप कील पर पहुंच जाएंगे। संसार की कोई भी यात्रा तीर्थयात्रा होने वाली नहीं है। जहां पहुंचने के लिए पैरों की जरूरत पड़ती हो, वह परम धाम नहीं है। और जहां पहुंचने के लिए शरीर को साधन बनाना पड़ता हो, वह परिधि ही होगी, वह केंद्र नहीं होगा। जहां जाने के लिए बाहर ही गति करनी पड़ती हो, वह अंतरतम नहीं है। बाहर चलकर हम बाहर ही पहुंचेंगे। संसार में यात्रा करके हम संसार में ही खड़े रहेंगे। पैरों से चलकर हम वहीं पहुंच सकते हैं, जहां पैर पहुंचा सकते हैं।

उस परम गति अक्षर को पाने के लिए तो हमें अपने भीतर एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जिसमें पैरों की कोई जरूरत नहीं पड़ती। एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जिसमें हमें बाहर नहीं, भीतर की तरफ जाना पड़ता है। एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जिसमें इंद्रियों का उपयोग नहीं होता, इंद्रियों का अनुपयोग होता है। एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जहां मन का सहारा लेना नहीं पड़ता, मन का सहारा छोड़ना पड़ता है। एक ऐसी यात्रा, जिसमें हम चाक के घूमते हुए रूप को छोड़कर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे कील की तरफ सरकते जाते हैं और एक दिन वहां पहुंच जाते हैं, जहां चाक नहीं है, कील ही है।

वह कील प्रत्येक के भीतर है, क्योंकि प्रत्येक भी एक छोटा घूमता हुआ चाक है। जैसा मैंने कहा कि मल्टी-डायमेंशनल है गति। पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है और साथ ही सूर्य का चक्कर भी लगा रही है। ठीक हममें से प्रत्येक व्यक्ति संसार के चारों तरफ घूम रहा है और हमारे भीतर भी कील पर हमारे शरीर का चाक घूम रहा है। हमारी कील पर हमारे मन का चाक घूम रहा है। हमारी कील पर हमारी वासनाओं का चाक घूम रहा है। हमारी कील पर हमारी तृष्णा, हमारी कामना, हमारा क्रोध, हमारा लोभ, उन सबके चाक पर्त दर पर्त घूमते चले जा रहे हैं। चाक के भीतर चाक हैं, वे घूमते चले जा रहे हैं। जिस व्यक्ति को अक्षर को पाना है, उसे धीरे-धीरे एक-एक घूमते चाक को छोड़कर भीतर सरकना है।

सबसे ज्यादा कठिनाई हमारे भीतर सरकने में विचार के चक्र की है। क्योंकि विचार इतनी तीव्रता से घूम रहा है और न मालूम अज्ञान के किस गहन क्षण में हमने मान रखा है कि हम विचार ही हैं, तो शरीर से अपनी भिन्नता को समझ लेने में तो बहुत कठिनाई नहीं होती, लेकिन विचार से अपनी भिन्नता को समझने में बहुत कठिनाई होती है।

इसलिए अगर किसी आदमी का शरीर बीमार हो और हम कहें कि तुम्हारा शरीर बीमार है, तो वह नाराज नहीं होता। लेकिन किसी आदमी का दिमाग खराब हो और हम कहें कि तुम्हारा दिमाग खराब है, तो वह आदमी नाराज हो जाता है। क्योंकि शरीर से तो एक फासला हमको लगता ही है। शरीर बीमार भी हो, तो भी मैं स्वस्थ हो सकता हूं। लेकिन अगर मन बीमार हो, तो मैं ही बीमार हो गया।

इसलिए बीमार तो मान लेता है कि आप ठीक कह रहे हैं; पागल कभी नहीं मानता कि आप ठीक कह रहे हैं। अगर पागल से कहो कि पागल हो, तो पागल सब तरह के उपाय करेगा कि मैं पागल नहीं हूं। बीमार ऐसे उपाय नहीं करता। क्योंकि बीमार समझता है कि शरीर बीमार है, मैं बीमार नहीं हूं। सिर्फ ज्ञानियों से अगर कोई कह दे कि पागल हो, तो वे परेशान नहीं होते, क्योंकि मन से भी उनकी दूरी स्थापित हो जाती है। अन्यथा किसी के भी मन को जरा-सी चोट, शरीर को लगी चोट से ज्यादा गहरी मालूम पड़ती है। किसी का पैर काट डालें, तो इतनी तकलीफ नहीं होती; किसी के एक विचार का खंडन कर दें, तो पीड़ा ज्यादा होती है।

आदमी अपने विचार के लिए मरने को, कुर्बान होने को तैयार होता है। फांसी लग जाए, उसकी तैयारी है; लेकिन मेरा विचार नहीं छोड़ सकता हूं। क्यों? क्योंकि विचार के साथ हमने बहुत गहरा तादात्म्य बनाया है। असल में हमें ऐसा लगता है कि शरीर बाहर की पर्त है और विचार मेरे भीतर का केंद्र है।

यह झूठ है। विचार भी मेरे भीतर का केंद्र नहीं है, विचार भी बाहर की ही एक पर्त है। मेरे भीतर का केंद्र तो अक्षर है। विचार तो अक्षर नहीं है। विचार तो अभी है और क्षणभर बाद बदल जाता है। सुबह जो था, दोपहर नहीं होता। दोपहर जो था, वह सांझ नहीं होता। इसलिए अगर आप विचार के लिए थोड़ी देर रुक जाएं, तो हो सकता है, वह काम करने की आपको कभी जरूरत ही न पड़े।

बर्नार्ड शा कहता था कि जब मेरी टेबल पर बहुत चिट्ठी-पत्रियां इकट्ठी हो जाती हैं, पंद्रह-पंद्रह दिन बीत जाते हैं और सैकड़ों पत्र इकट्ठे हो जाते हैं और जवाब देना मुश्किल होता है, तब मैं थोड़ी-सी शराब पी लेता हूं और सब काम निपट जाता है।

तो एक मित्र ने उससे पूछा कि क्या शराब पीकर फिर तुममें इतनी ताकत आ जाती है कि तुम सारे पत्रों के उत्तर दे देते हो? बर्नार्ड शा ने कहा, नहीं। शराब पीकर मैं उस हालत में हो जाता हूं कि पत्रों की फिक्र ही छूट जाती है, उत्तर देने की जरूरत ही नहीं रहती। और दो-चार दिन, आठ दिन, दस दिन, पंद्रह दिन, जब इतनी देर हो जाती है, तो फिर पत्र अपना जवाब खुद ही दे लेते हैं, फिर मुझे उनके देने की और जरूरत नहीं रह जाती। पंद्रह दिन तक जिस पत्र का जवाब न दिया हो, उसका जवाब लिखने वाले को मिल ही गया होता है।

बर्नार्ड शा को कोई अपना एक नाटक दिखाने ले गया था, कोई एक लेखक, जिसका नाटक प्रदर्शित हो रहा था। बर्नार्ड शा पूरे नाटक में सोया रहा। लेखक बहुत परेशान था! बर्नार्ड शा की स्तुति का एक शब्द भी मिल जाए, तो वह धन्य हो जाता, लेकिन पूरे वक्त बर्नार्ड शा सोता रहा। दो-चार दफा उसने जगाने की भी कोशिश की, फिर सोचा कि कहीं जगाने से वह और उलटा नाराज न हो जाए।

जब नाटक पूरा हुआ, बर्नार्ड शा ने कहा कि बड़ा आनंद हुआ। उस लेखक ने कहा, लेकिन मैं आशा करके लाया था कि आप दो शब्द मेरे नाटक के संबंध में कहेंगे, कोई मत व्यक्त करेंगे, आप पूरे समय सोए रहे! बर्नार्ड शा ने कहा, सोया रहना भी एक प्रकार का मत व्यक्त करना है, ए सार्ट आफ ओपीनियन। और जो मैंने कहा कि बड़ा आनंद आया, वह इसीलिए कहा कि दोत्तीन रात से मैं बिलकुल सोया नहीं था। तुम्हारे नाटक ने ऐसी गहरी नींद ला दी कि मन बड़ा तृप्त हो गया!

पंद्रह दिन अगर पत्र का उत्तर न दें, तो उत्तर नकारात्मक है, ऐसा लिखने वाले को मिल ही जाता है। बर्नार्ड शा कहता था, पंद्रह दिन तक हिम्मत जुटानी पड़ती है न देने की, फिर विचार इतना पुराना पड़ जाता है और समय इतना व्यतीत हो जाता है कि कोई प्रेरणा भी नहीं रह जाती है भीतर।

इसीलिए ज्ञानियों ने कहा है, अगर बुरा विचार उठे, तो थोड़ी देर रुक जाना, क्योंकि उतनी देर रुकने में वह विचार ही जा चुका होगा। अगर हत्याएं करने वाले लोग दो क्षण भी रुक जाएं, तो हत्याएं नहीं हों। आत्महत्याएं करने वाले लोग एक क्षण के लिए ठहर जाएं, तो

आत्महत्या न हो। इसलिए ज्ञानियों ने यह भी कहा है कि जब अच्छा विचार उठे, तो तत्काल उसे पूरा कर लेना, एक क्षण मत रुकना, क्योंकि एक क्षण रुकने पर वह भी बदल जाएगा।

विचार इतनी तेजी से बदल रहा है, फिर भी हम विचार को अपना स्वभाव मान लेते हैं। स्वभाव का तो अर्थ ही होता है, जो बदले नहीं। क्या आपको पता है, बचपन के आपके विचारों का क्या हुआ? क्या आपको पता है, आपके जवानी के विचारों का क्या हुआ? कहां खो गए? किस रास्ते पर पड़े रह गए? आज उनका कोई भी पता नहीं है। और कल जो बात बहुत महत्वपूर्ण मालूम होती थी, क्या आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण मालूम होती है? कल जिसके लिए जान दे सकते थे, क्या आज भी उसके लिए जान देना उचित मालूम पड़ेगा?

सब बदल रहा है। विचार भी इतनी तेजी से घूम रहे हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं, लेकिन फिर भी हम विचारों से अपने को एक मान लेते हैं, क्योंकि हम कभी विचारों के भीतर और प्रवेश नहीं किए। जो विचार के भी भीतर प्रवेश करेगा, निर्विचार को पाएगा, वही उस अक्षर को अपने भीतर अनुभव कर पाता है, उस कील को, जिस पर विचार का चाक घूमता है, शरीर का चाक घूमता है, वासना का चाक घूमता है; और फिर बड़े संसार का चाक, और फिर और बृहत ब्रह्मांड का चाक।

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर वह कील है। उस कील को पा लेने से कृष्ण कहते हैं, परम गति उपलब्ध होती है। अक्षर को, अव्यक्त को पा लेना, परम गति को पा लेना है। तथा जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं, वही मेरा परम धाम है।

जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे वापस नहीं आते! एक ऐसी जगह है चेतना के विकास की, जिसे हम प्वाइंट आफ नो रिटर्न कहें, जहां से कोई पीछे वापस नहीं लौटता।

हम पानी को गरम करते हैं, निन्यानबे डिग्री तक भी पानी गरम हो जाए, तो भी पीछे वापस लौट सकता है। लेकिन सौ डिग्री तक गरम होकर भाप बन जाए, तो फिर पीछे वापस नहीं लौट पाएगा। सौ डिग्री पार कर ले, तो भाप बनकर आकाश में उड़ जाएगा।

अब यह बड़े मजे की बात है! पानी की गति नीचे की तरफ है, भाप की गति ऊपर की तरफ है। अगर पानी को बहा दें, तो गड्ढे की तलाश करेगा। अगर भाप को छोड़ दें, तो आकाश की खोज करेगी, जितने ऊपर जा सके। और एक बिंदु है सौ डिग्री का, सौ डिग्री तापमान पर पानी भाप बन जाता है। उसके स्वभाव में एक मौलिक परिवर्तन होता है, गुणात्मक, कि वह नीचे की तरफ जाना छोड़कर ऊपर की तरफ जाना शुरू कर देता है। लेकिन अगर निन्यानबे डिग्री तक गरम किया हो और फिर पानी को वैसी ही गरमी पर छोड़ दें, तो पानी वापस लौट जाएगा--अट्ठानबे, सत्तानबे, नब्बे--नीचे गिर जाएगा और पानी पानी ही रहेगा।

अब यह भी मजे की बात है कि शून्य डिग्री पर ठंडा पानी भी नीचे की तरफ बहेगा, निन्यानबे डिग्री पर गरम पानी भी नीचे की ही तरफ बहेगा। लेकिन एक डिग्री और, सौ डिग्री, और पानी ऊपर की तरफ यात्रा शुरू कर देता है। पानी पानी ही नहीं रह जाता, भाप हो जाता है; विराट आकाश में खोने के लिए तैयार हो जाता है।

मनुष्य की चेतना की भी ऐसी एक स्थिति है, एक सौ डिग्री का बिंदु है, उस डिग्री के पहले आदमी कितना ही ऊंचा चेतना को ले जाए, बार-बार गिरता रहता है। आप भी कई बार स्वर्ग के इतने करीब मालूम पड़ते हैं कि एक कदम और, और भीतर प्रवेश कर जाएंगे। लेकिन जब तक आप यह सोचते हैं, पाते हैं कि आप काफी दूर हट चुके, स्वर्ग काफी फासले पर है।

हममें से सभी लोग कभी-कभी निन्यानबे डिग्री तक भी पहुंच जाते हैं। कभी किसी प्रार्थना के क्षण में, कभी किसी पूजा के भाव में, कभी किसी प्रेम की स्थिति में, कभी किसी संगीत को सुनकर, कभी किसी सुगंध के सहारे, कभी किसी सौंदर्य के निकट, कभी हम निन्यानबे डिग्री तक भी पहुंच जाते हैं और ऐसा लगता है कि बस...। लेकिन फिर वापस गिर जाते हैं।

आपने शायद अनुभव किया हो, कविता पढ़ते हैं किसी कवि की और ऐसा लगता है कि यह आदमी कितना निकट नहीं पहुंच गया होगा सत्य के! और फिर एक दिन वही आदमी चाय की दुकान में चाय पीता और बीड़ी फूंकता मिल जाता है। और आप एकदम हैरान हो जाते हैं कि यही वह आदमी है, जिसने इतनी अदभुत कविता लिखी! क्या यही वह आदमी है, जिससे ऐसी पंक्तियों का जन्म हुआ? क्या यही वह आदमी है, जिसके भाव ने इतनी गहराई और ऊंचाई को स्पर्श किया? यह आदमी कैसे हो सकता है!

नहीं, यह आदमी नहीं है। यह निन्यानबे डिग्री पर किसी क्षण में रहा होगा। इसने आकाश का खुला रूप देखा, तारों में झांककर देखा, आंखें मिलाईं इसने बड़ी ऊंचाइयों से, लेकिन अब यह वापस अपनी जगह लौट आया है।

कूलरिज ने, मरने के बाद पता चला, कि कोई चालीस हजार कविताएं अधूरी छोड़ी हैं। मित्र तो जानते थे और कूलरिज से कहते थे कि इन कविताओं को पूरा कर दो। इतनी कविताएं अधूरी क्यों कर रखी हैं? किसी कविता में सात कड़ी हैं, तो आठवीं कड़ी नहीं है। बस, एक कड़ी खाली है। एक कड़ी पूरी हो जाती, तो शायद एक महान कविता का जन्म होता!

लेकिन कूलरिज कहता था, सात कड़ी होते-होते मैं तो वापस लौट गया। वह आठवीं कड़ी आई ही नहीं और मैं वापस जमीन पर लौट आया। अब अगर मैं चाहूं, तो आठवीं कड़ी जोड़ सकता हूं। लेकिन वह कड़ी उस ऊंचाई की न होगी, जिस ऊंचाई की सात कड़ियां हैं। और मैं भलीभांति जानता हूं कि वही कड़ी इस कविता की नाव को डुबाने वाली सिद्ध होगी। इसलिए मैं प्रतीक्षा करूंगा, किसी दिन फिर उस निन्यानबे डिग्री पर चित्त होगा, और अगर कोई कड़ी उतर आई, तो जोड़ दूंगा, अन्यथा मैं नहीं जोड़ पाऊंगा।

इसलिए जगत के समस्त महान चित्रकार, कवि और संगीतज्ञ निरंतर ऐसा अनुभव करते हैं कि जब उनसे काव्य का, चित्र का जन्म होता है, तो वे मौजूद नहीं होते; कोई और! कोई और ही उनके भीतर से बोल जाता है, कोई और ही उनके भीतर से गा जाता है, कोई और ही उनकी अंगुलियों में थिरकता है और उनके सितार को बजा जाता है। यह कोई और नहीं है, यह उनका ही एक ऊंचा उठा हुआ रूप है, जिसकी उन्हें स्वयं भी खबर नहीं। लेकिन वापस गिर जाते हैं।

काव्य और धर्म में यही अंतर है, आर्ट और रिलीजन में यही अंतर है। काव्य निन्यानबे डिग्री के इस पार गिर जाता है। धर्म सिर्फ एक डिग्री और ऊपर छलांग लेता है और सौ डिग्री के पार हो जाता है। इसलिए काव्य बहुत बार धर्म के निकट पहुंचता है, और धर्म से बहुत बार महाकाव्य का जन्म होता है।

इसलिए हमने पुराने दिनों में एक और शब्द खोजा हुआ था, जिसका अर्थ कवि ही होता है, वह शब्द है, ऋषि। ऋषि का अर्थ कवि ही होता है, लेकिन एक भिन्न गुण के साथ। ऋषि हम उस कवि को कहते हैं, जो उस जगह से गा रहा है, जहां से वापस लौटना असंभव है, प्वाइंट आफ नो रिटर्न। वह भी गीत को ही जन्म देता है।

उपनिषद महाकाव्य हैं। गीता स्वयं महाकाव्य है। लेकिन कृष्ण उस जगह से इस गीत को जन्म देते हैं–इसलिए उसका नाम है, भगवत्गीता; गीत भगवान का, गीत भागवत चैतन्य का–उस जगह से इस गीत को जन्म मिलता है, जहां से लौटना संभव नहीं है।

फिर भगवत्गीता के न मालूम कितनी भाषाओं में रूपांतरण हुए हैं, लेकिन अब तक एक भी ऋषि उपलब्ध नहीं हुआ उसके रूपांतरण के लिए। कवियों ने रूपांतरण किए हैं। फासला ज्यादा नहीं है। फासला ज्यादा नहीं है। कभी-कभी तो कोई कवि बिलकुल कृष्ण के करीब पहुंच जाता है। अगर कृष्ण एक सौ डिग्री के पार से बोल रहे हैं, तो कभी-कभी कोई कवि ठीक निन्यानबे डिग्री के पास से बोलता है। एक डिग्री का फासला कोई बड़ा फासला नहीं है, लेकिन उससे बड़ा कोई फासला नहीं है। वहां एक डिग्री भी बहुत कीमती है।

कितना ही बड़ा कवि, कितनी ही बड़ी कविता को जन्म दे, वह ऋषि नहीं हो पाता, क्योंकि वापस-वापस गिर जाता है। और जब कविता को जन्म देने वाला ही वापस गिर जाता हो, तो कविता में डाले गए जो अर्थ हैं, वे ऊर्ध्वगामी नहीं हो सकते; वे नीचे की तरफ ही बहने वाले होते हैं, चाहे कितनी ही ऊंचाई की डिग्री क्यों न रही हो।

इसलिए बड़े से बड़ा काव्य भी नीचे की तरफ ही बहता हुआ मालूम पड़ता है। चाहे कालिदास का हो, तो भी नीचे की तरफ ही बहता हुआ मालूम पड़ता है। बड़े से बड़ा काव्य भी मनुष्य की कामवासना की तरफ ही बहता हुआ मालूम पड़ता है।

ऋषि हमने उसे कहा है, जो चेतना की उस जगह से गीत को जन्म देता है या किसी भी चीज को जन्म देता है, जहां से लौटना संभव नहीं।

एक क्रिस्टलाइजेशन का, एक स्वयं के भीतर संगठित हो जाने का एक क्षण है, जिसके पार गिरना नहीं होता। इस जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते, वही मेरा परम धाम है, वही मेरा घर है। बाकी सब रास्ते के पड़ाव हैं, जहां आदमी ठहरता है क्षणभर और आगे बढ़ जाता है, मंजिल नहीं है। परमात्मा की मंजिल। और सबके भीतर परमात्मा छिपा है, उसी यात्रा पर, उसी परमात्मा की मंजिल के लिए। वह मंजिल कहां है?

कृष्ण कहते हैं, सनातन अव्यक्त, तो जो सदा से अप्रकट है, जो सदा से ही छिपा है, इटरनली हिडेन, जिसे कभी कोई खोल नहीं पाया, जिसे कभी कोई उघाड़ नहीं पाया, जिसके पर्दे कभी कोई गिरा नहीं पाया; उस सदा से, अनादि से, अनंत तक के लिए छिपे हुए को पा लेने वाला वापस नहीं लौटता। वही मेरा परम धाम है।

इसे जरा समझ लें।

अगर हम ऐसा कहें कि परमात्मा सदा से ही छिपा हुआ है, तो जिन जानने वालों ने परमात्मा की बात कही है, उन्होंने जानी कैसे?

तर्कशास्त्री निरंतर ही ऋषियों के संबंध में, मिस्टिक्स के संबंध में एक महत्वपूर्ण तर्क उठाते रहे हैं। तर्कशास्त्री सदा से ही कहते रहे हैं कि ये मिस्टिक्स जो हैं, उनके वक्तव्य नानसेंस हैं; उनके वक्तव्यों में अर्थ बिलकुल नहीं है। क्योंकि एक ओर वे कहते हैं, हम उसके संबंध में

कहने जा रहे हैं, जिसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। और हम उसकी तुम्हें खबर देते हैं, जिसकी खबर किसी को कभी नहीं मिली। और जो सदा से छिपा है, हम तुम्हारे सामने उसे प्रकट करते हैं।

कृष्ण ने थोड़ी देर ही पहले अर्जुन को कहा है कि मैं संक्षिप्त में उसके संबंध में तुझसे कहूंगा! और अब वे कहते हैं, वह है सनातन अव्यक्त!

जो सनातन अव्यक्त है, सदा से ही छिपा हुआ, कभी प्रकट नहीं हुआ, कृष्ण उसे प्रकट कैसे करेंगे? और कृष्ण उसके संबंध में अगर कुछ भी कह रहे हैं, तो वह प्रकट करना हो जाता है। यह कहना भी कि वह सनातन से अव्यक्त है, व्यक्त करने की बात हो गई। इतना कहना भी, उसके संबंध में कुछ कहना है। तर्क निरंतर रहस्यवादियों पर हंसता रहा है और कहता रहा है, तुम्हारे वक्तव्य पागलों के वक्तव्य हैं।

विट्गिंस्टीन ने अपनी बहुत अदभुत किताब टेक्टेटस में कहा है कि जिस संबंध में न कहा जा सके, उस संबंध में न कहना ही उचित है। जिस संबंध में न कहा जा सके, उस संबंध में न कहना ही उचित है, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड मस्ट नाट बी सेड। न कहा जा सके, तो मत ही कहो।

लेकिन अगर इतना भी कहा जा सकता है कि इस संबंध में मैं कुछ भी न कह सकूंगा, देन समथिंग हैज बीन सेड, तब कुछ कहा ही गया, तब कुछ कह ही दिया। और यह भी कहना ही है, प्रकट करना ही है।

तो रहस्यवादी बड़ी मुश्किल में हैं कि वे क्या करें! या तो वे कहना बंद कर दें; अगर वे सच में ही जानते हैं कि वह अव्यक्त है, प्रकट नहीं किया जा सकता, भाषा बोल नहीं सकती, वाणी के पार है, तो चुप हो जाएं।

लेकिन अगर वे चुप हो जाएं, तो इतना भी नहीं कह सकते कि वह अव्यक्त है। और फिर चुप हो जाना भी तो एक तरह का कहना होगा, ए सार्ट आफ सेइंग। चुप होना भी एक तरह का कहना ही होगा। वह भी खबर होगी, सूचना ही होगी। अगर बर्नार्ड शा का सो जाना एक मत है, तो परमात्मा के संबंध में चुप हो जाना एक वक्तव्य है। मौन हो जाना, फिर भी वाणी का ही उपयोग है, निषेधात्मक रूप से, निगेटिव ढंग से।

फिर ये रहस्यवादी क्या करें? चुप हों तो मुश्किल है, बोलें तो मुश्किल है। और साथ में उन्हें यह कहना ही है कि वह कभी भी उघाड़ा नहीं गया। वह सदा से ढंका है, और सदा ढंका ही रहेगा। ढंका होना ही उसका स्वभाव है।

अगर वह सदा से ढंका है, तो कृष्ण उसे कैसे उघाड़ते हैं? अगर वह सदा से ढंका है, तो बुद्ध उसे कैसे जानते हैं? यह बड़े मजे की बात है, इसे थोड़ा खयाल में ले लेना चाहिए।

अगर संसार में किसी ढंकी हुई चीज को उघाड़ना हो, तो उसी चीज को उघाड़ना पड़ता है। अगर एक वैज्ञानिक किसी वस्तु के संबंध में खोज करता है, तो उस वस्तु को तोड़ता है, फोड़ता है, उसके भीतर प्रवेश करता है, उसे उघाड़ता है। सब पर्दे निकालकर अलग कर देता है, भीतर प्रवेश करता है। अगर उसे आदमी के शरीर में पता लगाना है कि क्या बीमारी है, तो एक्स-रे से भीतर प्रवेश करता है; सब पर्दे तोड़ देता है, चीर-फाड़ करता है; मशीनों को भीतर ले जाता है, भीतर के चित्र लाता है; भीतर के संबंध में सब जानकारी पकड़ता है; सब पर्दे उघाड़ता है और भीतर की खोज करता है। यह पदार्थ की खोज का ढंग है।

परमात्मा की भी खोज होती है और वह कभी उघाड़ा नहीं जाता। उसकी खोज बड़ी उलटी है। जिसे परमात्मा को उघाड़ना हो, उसे अपने सब पर्दे तोड़ देने पड़ते हैं। अपने! उसे अपने सब पर्दे तोड़ देने पड़ते हैं, अपने भीतर कोई भी छिपावट नहीं रखनी पड़ती, अपने भीतर कोई राज नहीं रखना पड़ता, अपने भीतर कुछ भी अव्यक्त नहीं रखना पड़ता, सब भांति अपने को अभिव्यक्त कर देना पड़ता है, द्वार-दरवाजे खुले छोड़कर।

जो व्यक्ति अपने को बिलकुल उघाड़ा कर लेता है...। जैसे महावीर नग्न खड़े हो गए। वह नग्न खड़ा होना सिर्फ प्रतीक है इस बात का कि जिसे भी परमात्मा को जानना हो, जिसे भी उस अनउघड़े हुए को उघाड़ना हो, उसे अपने को बिलकुल उघाड़कर नग्न, वलनरेबल, सब तरह से खुला हुआ छोड़ देना चाहिए। जो व्यक्ति अपने को पूरी तरह उघाड़कर, सब द्वार-दरवाजे खोलकर, ओपन, खुला हुआ हो जाता है, आकाश की भांति, परमात्मा जो सनातन अव्यक्त है, उसके समक्ष--वह तो बचता ही नहीं इतने उघड़ेपन में--प्रकट हो जाता है। यह प्रकटीकरण बहुत और तरह का प्रकटीकरण है। क्योंकि इसमें परमात्मा को हम उघाड़ते ही नहीं, सिर्फ अपने को उघाड़ते हैं।

इसे हम ऐसा भी समझ लें कि ढंके हुए हम मनुष्य हैं, उघड़कर हम परमात्मा हो जाते हैं। ढंके हुए हम मनुष्य हैं, उघड़कर हम परमात्मा हो जाते हैं। कोई हमारे सामने नहीं आता, अचानक हम पाते हैं उघड़ते ही कि जिसे हम खोजते थे, वह तो मैं स्वयं हूं। जिस अक्षर की

तलाश थी, वह तो मेरे भीतर बैठा है। जिस कील के लिए हमने बैलगाड़ी पर बैठकर इतनी यात्रा की, उसी कील पर बैलगाड़ी का चाक चलता था।

मुल्ला नसरुद्दीन भागा जा रहा है अपने गधे पर बैठा हुआ गांव से, तेजी से। बड़ी तेजी में है, और कोड़े चला रहा है। बाजार में लोग उससे पूछते हैं कि नसरुद्दीन, कहां भागे जा रहे हो? वह कहता है, मेरा गधा खो गया। मैं जरा तेजी में हूं। मुझे रोको मत। कोई आदमी चिल्लाता है कि नसरुद्दीन, लेकिन तुम गधे पर सवार हो। नसरुद्दीन कहता है, तुमने अच्छा बता दिया। मैं इतनी तेजी में था कि मुझे खयाल ही न आता। इतनी तेजी में था खोज की कि मुझे खयाल ही न आता!

हम जिसे खोज रहे हैं, जानने वाले कहते हैं, हम उसे कभी न खोज पाएंगे, क्योंकि उस पर ही हम सवार हैं। लेकिन तेजी इतनी है कि हम अनंत-अनंत यात्रा कर लेंगे, और तेजी इतनी है कि हमें स्मरण भी न आएगा कि जिसके ऊपर सवार होकर हम खोज रहे हैं, वही हमारी खोज है, वही हमारा गंतव्य है। जिसे हम पाने चले हैं, उसे हम पाए ही हुए हैं। जिसके लिए हम हाथ फैला रहे हैं, वही हमारे हाथों में फैला हुआ है। और जिसके लिए हमने तृष्णा के जाल बोए, वही हमारी तृष्णाओं का तंतु है। और जिसके लिए हम भागे चले जा रहे हैं, दौड़ रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, वही है हमारे भीतर, जिसे हम परेशान किए दे रहे हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन बहुत चिंतित है। उसका चिकित्सक उससे कहता है, इतनी चिंता क्या? चिंता के कारण ही नसरुद्दीन तुम बूढ़े हुए जा रहे हो। नसरुद्दीन कहता है, यह मैं समझा। अब मैं आपको अपनी चिंता बता दूं। कहीं मैं बूढ़ा न हो जाऊं, इसी की मैं चिंता में लगा हूं। और तुम कहते हो कि चिंता के कारण ही तुम बूढ़े हुए जा रहे हो!

ऐसा ही विशियस सर्किल है, ऐसा ही दुष्चक्र है। चिंता के कारण आदमी बूढ़ा हुआ जा रहा है। बूढ़ा हुए जाने के कारण चिंता कर रहा है। अब इसे कहां से तोड़ना है!

किसे खोज रहे हैं आप? किसकी तलाश है? जो तलाश कर रहा है, वही उसी की तलाश है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को छोड़कर और कुछ भी नहीं खोज रहा है। लेकिन स्वयं को कैसे खोज सकेगा?

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन गया है अपने शराबघर में और उसने जाकर पूछा कि मैं पूछने आया हूं कि क्या शेख रहमान इधर अभी थोड़ी देर पहले आया था? शराबघर के मालिक ने कहा कि हां, घड़ीभर हुई, शेख रहमान यहां आया था। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि चलो इतना तो पता चला। अब मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या मैं भी उसके साथ था?

काफी पी गए हैं। वे पता लगाने आए हैं कि कहीं शराब तो नहीं पी ली! काफी पी गए हैं, अब पता लगाने आए हैं कि कहीं शराब तो नहीं पी ली। इतना खयाल है कि शेख रहमान के साथ थे। दूसरे का खयाल बेहोशी में बना रहता है, अपना भूल जाता है। शेख रहमान साथ था, इतना खयाल है। तो शेख रहमान अगर यहां आया हो, तो मैं भी आया होऊंगा। और अगर वह पीकर गया है, तो मैं भी पीकर गया हूं।

दूसरे से हम अपना हिसाब लगा रहे हैं। हम सब को अपना तो कोई खयाल नहीं है, दूसरे का हमें खयाल है। इसलिए हम दूसरे की तरफ बड़ी नजर रखते हैं। अगर चार आदमी आपको अच्छा आदमी कहने लगें, तो आप अचानक पाते हैं कि आप बड़े अच्छे आदमी हो गए। और चार आदमी आपको बुरा कहने लगें, आप अचानक पाते हैं, सब मिट्टी में मिल गया; बुरे आदमी हो गए! आप भी कुछ हैं? या ये चार आदमी जो कहते हैं, वही सब कुछ है?

इसलिए आदमी दूसरों से बहुत भयभीत रहता है कि कहीं कोई निंदा न कर दे, कहीं कोई बुराई न कर दे, कहीं कोई कुछ कह न दे कि सब बना-बनाया खेल मिट जाए। आदमी दूसरों की प्रशंसा करता रहता है, ताकि दूसरे उसकी प्रशंसा करते रहें। सिर्फ एक वजह से कि दूसरे के मत के अतिरिक्त हमारे पास और कोई संपदा नहीं है। दूसरे का ही हमें पता है। अपना हमें कोई भी पता नहीं है।

मनुष्य जिस दिन भी अपने भीतर प्रवेश करता है, उस दिन ही पाता है कि जिसे वह खोजता था, वह भीतर ही मौजूद है।

मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक आदमी हाजी हो गया है, हज की यात्रा करके लौट आया है, तीर्थयात्रा करके लौट आया है। सारा गांव इकट्ठा है। सिर्फ नसरुद्दीन को छोड़कर सारा गांव हाजी को देखने गया है। नसरुद्दीन की पत्नी कहती है कि नसरुद्दीन, तुम भी अपना यह अधर्म कब छोड़ोगे? ऐसे गांवभर में घूमते-फिरते हो, धूल खाते हो गली-गली की, और आज हाजी गांव में आया है, तो तुम घर बैठे हो, जब कि सारा गांव जा रहा है! नसरुद्दीन ने कहा कि इसमें कौन-सी प्रशंसा की बात है कि कोई आदमी हज हो आया? हां, अगर किसी दिन किसी आदमी के पास हज आ जाए, तो मुझे खबर करना।

आदमी तीर्थयात्रा पर चला जाए, लौट आए, इसमें कौन-सी बड़ी बात है! बहुत लोग आए और गए। किसी दिन तीर्थ किसी आदमी के पास आ जाए, मुझे खबर करना, मैं हाजिर हो जाऊंगा।

वह ठीक कह रहा है। ऐसी घटना भी घटती है, जब तीर्थ आदमी के भीतर आ जाता है। ऐसी भी घटना घटती है, जब भक्त भगवान को खोजने नहीं जाता और भगवान भक्त को खोजता आता है।

असल में ऐसी ही घटना घटती है। भक्त के खोजे भगवान कभी नहीं मिला और कभी मिल नहीं सकता है। भक्त को अगर पता ही होता कि भगवान कहां है, तो वह कभी का भगवान को खोज लिया होता। उसे कुछ भी पता नहीं है। भक्त क्या कर सकता है?

भक्त कहीं जाता नहीं। भक्त सिर्फ अपने को खोलता, उघाड़ता और नग्न करता है। भक्त सिर्फ अपने को उघाड़ता है। और जिस दिन भक्त पूरा उघड़ा होता है, नग्न पूर्ण रूप से, कोई वस्त्र नहीं उसके चित्त पर, उसकी चेतना पर कोई आवरण नहीं, निरावरण, उसी दिन भगवान उपलब्ध हो जाता है। भक्त कभी भी यात्रा करके भगवान तक नहीं पहुंचे हैं। जब भी कोई भक्त हो सका है भक्त, तब भगवान स्वयं यात्रा करके आ गया है।

यह जो घटना है, यह जो सनातन अव्यक्त को प्राप्त कर लेना है, कृष्ण कहते हैं, यही मेरा परम धाम है।

यह परम धाम प्रत्येक के भीतर है, यह वैकुंठ प्रत्येक के भीतर है, यह मोक्ष प्रत्येक के भीतर है। और इसे परम धाम इसलिए कहा है कृष्ण ने कि यह पड़ाव नहीं है। इस पर ठहरकर फिर आगे की यात्रा के लिए तैयारी नहीं करनी है। इस पर आकर सारी यात्राएं समाप्त हो जाती हैं।

सुना है मैंने, जापान में एक तीर्थयात्रा के बीच के पड़ाव पर, पहाड़ पर एक मंदिर है। और हजारों लोग वर्ष में एक दिन वहां की यात्रा करते हैं पैदल। वर्षों से एक फकीर बीच पहाड़ के रास्ते पर एक वृक्ष के नीचे पड़ा रहता था। हर वर्ष यात्री आते और जाते। कभी कोई उस फकीर से पूछ लेता कि तुम इस वृक्ष के नीचे यात्रा पर जाते हुए ठहरे हो या यात्रा से लौटते हुए ठहरे हो? तो वह फकीर हंसता और वह कहता कि न हम किसी यात्रा पर जाते हुए ठहरे हैं और न किसी यात्रा से आते हुए ठहरे हैं। स्वभावतः, लोग रुक जाते और पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? क्योंकि तुम जहां बैठे हो, यह तो केवल यात्रा का पड़ाव है, मंजिल तो आगे है!

तो वह फकीर कहता कि निश्चित ही, बाहर की यात्रा, जिस पर तुम निकले हो, उसके लिए यह एक पड़ाव है। लेकिन जहां मैं भीतर बैठा हूं, वह वह जगह है, जहां से न आगे जाया जा सकता है, न जहां से पीछे लौटा जा सकता है। आया तो मैं भी इसी तीर्थ की यात्रा के लिए था, लेकिन इस वृक्ष के नीचे बड़ी तीर्थयात्रा घटित हो गई, फिर आगे नहीं जा सका। इस वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे वह घटित हो गया, जिसने मुझे अपने ही भीतर पहुंचा दिया। अब मंजिल आ गई, अब कदम यहां रखने और कदम वहां रखने का भी कोई अर्थ नहीं रह गया है। अब मैं वहां हूं, जहां सदा था और जहां के लिए सदा से दौड़ता रहा।

परम धाम का अर्थ है, जिसके आगे अब कोई और यात्रा की तैयारी नहीं करनी है। और परम धाम का एक अर्थ और खयाल में ले लें, जो और भी जरूरी है।

परम धाम का यह अर्थ नहीं है कि जहां आप बहुत-सी यात्राएं करके पहुंच गए। अगर आप बहुत-सी यात्रा करके वहां पहुंचे हैं, तो वह परम धाम नहीं हो सकता, धाम ही हो सकता है। परम धाम तो वह है, जहां पहुंचकर पता चला कि जहां हम सदा से थे ही! यह थोड़ी-सी कठिन बात है। परम धाम वह है, जहां पहुंचकर पता चले कि हद हो गई, यहां तो हम सदा से थे ही!

बुद्ध को जब निर्वाण हुआ, बुद्ध को जब समाधि फलित हुई, तो बुद्ध सात दिन तक तो चुप बैठे रहे। कुछ सूझा ही नहीं। हिले-डुले भी नहीं। फिर लोग इकट्ठे होने लगे। उनकी कांति, उनकी आंखों की रोशनी, उनकी सुगंध जल्दी ही फैलने लगी। जब कोई फूल खिल जाए मनुष्य की चेतना में, तो फिर किसी को बुलाने नहीं जाना पड़ता, खबर पहुंचनी शुरू हो जाती है। लोग आने लगे। दूर-दूर तक खबर फैल गई कि कोई बुद्धत्व को प्राप्त हो गया। लोगों की भीड़ लग गई और लोग हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि हमें बताओ कि तुमने क्या पा लिया है? गौतम, हमें कहो कि तुमने क्या पा लिया है?

तो बुद्ध ने जो पहला वचन कहा, वह बहुत हैरानी का है। बुद्ध ने कहा, अगर तुम पूछते हो कि मैंने क्या पा लिया, तो तुम मुझे मुश्किल में डालते हो। क्योंकि मैंने वही पा लिया है, जो सदा से पाया ही हुआ था। लोग पूछने लगे कि पहेलियों में मत कहो। हम सीधे-सादे लोग हैं, हमें ठीक से समझाओ। तुम्हारी उपलब्धि क्या है? तो बुद्ध ने कहा, उपलब्धि के नाम पर कोई भी उपलब्धि नहीं है। मैंने खोया तो जरूर कुछ, पाया कुछ भी नहीं।

लोग बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा कि हमने तो सदा से सुना है कि जब ज्ञान होता है, तो कुछ मिलता है। आप कैसी बात करते हैं! तो बुद्ध ने कहा, मैंने अज्ञान तो खोया। अब मैं हैरान हूं कि मैंने उस अज्ञान को पा कैसे लिया था! उसे मैंने खोया। और जो ज्ञान मैंने पाया है, अब मैं तुमसे कैसे कहूं कि उसे मैंने पाया है, क्योंकि अब मैं जानता हूं कि वह सदा से ही मेरे पास था।

तो बुद्ध कहते कि ऐसा समझो कि किसी भिखारी के खीसे में हीरा पड़ा हो और वह भीख मांगता फिरे। फिर एक दिन अचानक वह खीसे में हाथ डाले, हीरा सामने आ जाए। तो क्या वह कहेगा कि मैंने हीरा पाया? वह हीरा तो बहुत दिन से उसके साथ ही था, सदा से उसके साथ ही था, सिर्फ उसे पता नहीं था।

परम धाम वह है, जो अभी भी हमारे साथ है और हमें पता नहीं। परम मंजिल वह है, जिसे हम अपने हृदय के कोने में लिए हुए चल रहे हैं, खोज रहे हैं। निरंतर जो मौजूद है और हमें पता नहीं। बस, पता नहीं है। इतना ही फर्क पड़ेगा पहुंचकर, जानकर, पता हो जाएगा; और कोई भी फर्क नहीं पड़ेगा।

बुद्ध ने अपने पिछले जन्म का स्मरण किया है और कहा है कि मेरे पिछले जन्म में, सुना मैंने--गौतम बुद्ध के जन्म के पहले जन्म में, जब वे बुद्ध नहीं हुए थे--तो बुद्ध ने कहा है कि मैंने सुना था अपने पिछले जन्म में कि कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, तो मैं उसके दर्शन करने को गया था। जब मैं उसके चरणों में झुका और मैंने सिर उसके पैरों में रखा, और जब मैं उठकर खड़ा हुआ, तो मैं चकित हो गया, क्योंकि अचानक उस बुद्धपुरुष ने अपना सिर मेरे चरणों में रख दिया।

मैं तो बहुत घबड़ा गया। और मैंने उन्हें उठाकर कहा कि मुझे क्षमा करें! मुझसे कुछ भूल हो गई? आप मेरे चरणों में सिर रखें, यह तो उलटा मुझ पर पाप हो गया। मुझसे पाप हो गया। अगर मुझे पता होता, तो मैं आपको पहले ही रोक लेता। मैं तो अज्ञानी हूं। मैंने आपके चरणों में सिर रखा, वह ठीक है। पर आपने मेरे चरणों में क्यों सिर रखा?

तो उस बुद्धपुरुष ने बुद्ध को कहा, उस ज्ञानी ने बुद्ध को कहा कि मुझे पता है मंजिल का, वह मुझे मिल भी गई, मुझे पता भी है, पर मुझ में और तुझ में ज्यादा फर्क नहीं है। मंजिल तो उतनी की उतनी तेरे भीतर भी मौजूद है, बस तुझे जरा पता नहीं। जो हीरा मेरे पास है, वही हीरा तेरे पास है। मुझे पता है, तुझे पता नहीं। लेकिन हीरे के होने में जरा फर्क नहीं है। तो मैं तुझे इसलिए नमस्कार करता हूं, ताकि तुझे याद रहे कि तेरे भीतर भी वह हीरा है कि बुद्धपुरुष तेरे चरणों में सिर रखे। और आज नहीं कल, जब तुझे पता चल जाएगा, तब तू मेरी बात समझ लेगा।

और जब एक जन्म के बाद बुद्ध को ज्ञान हुआ, तब उन्होंने जो पहले अपने हाथ जोड़कर किसी के चरणों में झुकाए, वे वे ही अज्ञात चरण थे, जो अब तो खोजे से मिल नहीं सकते थे। वे अज्ञात चरण, वह अज्ञात व्यक्ति, जिसने उनके चरणों में सिर रख दिया था। जानते हुए ज्ञानी ने अज्ञानी के चरण में सिर रख दिया था, सिर्फ इस आशा में कि आज नहीं कल इस अज्ञानी को भी पता तो चल ही जाएगा कि उसके भीतर भी ज्ञान का उतना ही सागर है, रत्तीभर भी कम नहीं।

परम धाम का अर्थ है, ऐसी मंजिल, जो हमें मिली ही है और फिर भी हमें पता नहीं।

और हे पार्थ, जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं और जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।

जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं!

निश्चित ही, भूतों के अंतर्गत परमात्मा नहीं है। पदार्थ के अंतर्गत परमात्मा नहीं है, लेकिन परमात्मा के अंतर्गत पदार्थ हैं। जैसे विराट आकाश सब पदार्थों को घेरे हुए है, ऐसा ही विराट परमात्म-चैतन्य समस्त आकाशों को भी घेरे हुए है। चेतना इस जगत में सर्वाधिक विस्तार है, सबसे बड़ा विस्तार है।

इस समय पश्चिम में एक क्रांति चलती है--खास कर नई पीढ़ी में, यंगर जेनरेशन में--और हजारों तरह के प्रयोग पश्चिम में किए जा रहे हैं। रासायनिक द्रव्यों को लेकर, केमिकल ड्रग्स को लेकर--एल एस डी है, मारिजुआना है, मैस्कलीन है, हशीश है, गांजा है, भांग है--इन सब पर बहुत प्रयोग चलते हैं। और उस प्रयोग के पीछे एक आशा काम करती है, एक अभिलाषा है कि किसी भांति चेतना विस्तीर्ण कैसे हो जाए, एक्सपेंशन आफ कांशसनेस। चेतना फैल कैसे जाए, बड़ी कैसे हो जाए, विस्तार कैसे हो जाए।

चाहे रासायनिक द्रव्यों से वह बात न हो सके, लेकिन आकांक्षा बड़ी प्राचीन है, बड़ी प्राचीन है। आदमी की आकांक्षा एक ही है कि चेतना इतनी विस्तीर्ण कैसे हो जाए कि चेतना में सब कुछ घिर जाए और समा जाए, चेतना के बाहर कुछ न रह जाए। जिस दिन चेतना के बाहर कुछ नहीं रह जाता और चेतना में सभी कुछ समा जाता है, कांशसनेस एक आकाश बन जाती है, एक स्पेस, और सभी कुछ उसमें समा जाता है। उस दिन पाने योग्य फिर कुछ नहीं बचता; उस दिन खोने का भी कोई डर नहीं रह जाता; उस दिन मृत्यु का भय नहीं होता; उस दिन अमृत के झरने स्वयं में ही फूट पड़ते हैं। उस दिन परिवर्तन का कोई कारण नहीं; उस दिन शाश्वत तो स्वयं का घर बन जाता है।

इस परम चेतना के संबंध में ही कृष्ण कह रहे हैं कि वह जो परमात्मा है, उसके अंतर्गत सर्वभूत हैं।

एक जीसस का वचन इस संबंध में कहने जैसा है। जीसस के पास एक अंधेरी रात में निकोडेमस नाम का युवक आया और उस युवक से जीसस ने कहा कि तू मेरे पास किसलिए आया है? क्या तू चाहता है कि तुझे और धन मिल जाए मेरे शुभाशीषों से? या तू चाहता है कि तेरे जीवन में सफलता आए मेरे संपर्क से? क्या तू इसीलिए मेरी प्रार्थना को आया है, ताकि मेरी शुभकामनाएं तेरे ऊपर बरस पड़ें और तू संसार में उपलब्धियों की दिशा पर गतिमान हो सके?

निकोडेमस ने कहा, हे प्रभु, आपने पहचाना कैसे? आया मैं इसीलिए हूं कि और मेरा धन कैसे बढ़े! और मेरा राज्य कैसे बड़ा हो! और वस्तुओं का मैं मालिक कैसे हो जाऊं! मुझे कोई एक ऐसा सूत्र दे दें, कोई एक राज बता दें, एक गुर ऐसा मुझे दे दें कि उसी के सहारे मैं जहां भी कदम रखूं, सफल हो जाऊं; जो भी मेरी महत्वाकांक्षा हो, पूरी हो। इधर मैं कामना करूं कि वहां पूर्ति हो जाए। मुझे कुछ ऐसा राज बता दें, जो कल्पवृक्ष हो जाए।

तो जीसस ने जो राज बताया, निकोडेमस की तो समझ में नहीं आया, लेकिन समस्त धर्मों का सार उस सूत्र में है। जीसस ने कहा, सीक यी फर्स्ट दि किंगडम आफ गॉड, देन आल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। तू पहले प्रभु को खोज ले, और शेष सब उसके पीछे चला आएगा। तू पहले प्रभु का राज्य खोज ले, और फिर शेष सब उसके पीछे अपने से चला आएगा।

लेकिन उस निकोडेमस ने कहा कि पहले तो मुझे शेष सबको खोजने दें। अभी प्रभु को खोजने की मेरी उम्र नहीं हुई!

कल एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आए। सत्तर से कम तो उनकी उम्र न होगी। वे मुझसे पूछने आए कि आपने युवकों को संन्यास कैसे दे दिया है? शास्त्रों में कहा हुआ है कि संन्यास तो अंतिम अवस्था में लेना चाहिए!

अब अगर शास्त्रों को ही वे मानते हों, तो उनको संन्यासी होकर आना चाहिए था। सत्तर साल की उम्र है। शास्त्रों वगैरह को वे मानते नहीं हैं जरा भी। नहीं तो संन्यासी होकर आना चाहिए था। अभी उन्होंने संन्यास नहीं लिया है। लेकिन किसी युवक को क्यों संन्यास दे दिया है, इसके लिए वे पूछने आए हैं, कि इससे तो बड़ी हानि हो जाएगी!

परमात्मा को खोजने के लिए उम्र की कोई शर्त नहीं है। और कभी तो बूढ़े भी नहीं खोज पाते, और कभी बच्चे भी खोज लेते हैं। और जिन्हें हम बूढ़े और बच्चे कहते हैं, उनमें भी कौन बूढ़ा है और कौन बच्चा है, यह इतना आसान नहीं है तय करना। क्योंकि अगर बुढ़ापे का कोई भी अर्थ होता हो, तो बुद्धिमत्ता होगी। तो बूढ़े भी नासमझ हो सकते हैं, बच्चे भी समझदार हो सकते हैं।

निकोडेमस ने कहा कि अभी तो मेरी उम्र भी कहां कि मैं परमात्मा को खोजूं। आप भी कैसी बात करते हैं!

यद्यपि उसकी उम्र जीसस से ज्यादा थी, जिससे वह पूछने आया था। जीसस की तो सूली ही तैंतीस वर्ष में लग गई। जीसस ने लेकिन उसे जो सूत्र दिया और कहा, सीक यू फर्स्ट दि किंगडम आफ गॉड एंड देन आल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू, और तब सब तुझे अपने आप मिल जाएगा। अगर तू गुर की बात पूछता है, राज की, तो बता देता हूं। पहले प्रभु को खोज ले।

लेकिन प्रभु को खोजने से शेष सब कैसे मिल जाएगा?

कृष्ण के इस सूत्र में है वह अर्थ। हे पार्थ, जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं...।

अगर किसी ने परमात्मा को ही पा लिया, तो वह सर्वभूतों को तो पा ही लेगा। और जो भूतों को पाने में लगा रहा, पदार्थों को पाने में लगा रहा, वह पदार्थों को पा नहीं सकता। क्योंकि जब तक पदार्थों के मालिक को नहीं पाया, तब तक पदार्थों को कैसे पाया जा सकता है! हमारे जीवन की सारी पीड़ा यही है।

सुना है मैंने, एक सम्राट यात्रा पर गया है। और जब वह अनेक-अनेक साम्राज्यों की विजय करके वापस लौटने लगा, तो उसने अपनी--सौ रानियां थीं--उन सबको खबर भेजी कि तुम क्या चाहती हो कि मैं उपहार में तुम्हारे लिए लाऊं?

किसी रानी ने कहा कि मेरे लिए कोहनूर लेते आना। किसी रानी ने कहा कि मेरे लिए उस देश में जो इत्र बनता है श्रेष्ठतम, उसको ले आना, जितना ला सको। किसी ने कुछ और, किसी ने कुछ और; बड़ी कीमती, बड़ी बहुमूल्य चीजें। सिर्फ एक रानी ने खबर भेजी कि तुम सकुशल वापस लौट आना, और मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।

सम्राट, जिस रानी ने जो बुलाया था उसके लिए तो उतना लाया ही, लेकिन इस रानी के लिए उतना सब लाया, जितना सब रानियों ने इकट्ठा बुलाया था। लौटकर उसने कहा कि रानी तो सिर्फ मेरी एक कुशल और होशियार है, उसने मालिक को मांग लिया; चीजें तो पीछे चली आती हैं!

सच, धार्मिक व्यक्ति इस जगत में कुशलतम बुद्धिमान व्यक्ति है। वह पदार्थों को नहीं मांगता, वह पदार्थों के मालिक को ही मांग लेता है; पदार्थ तो पीछे चले आते हैं।

जिसे हम गृहस्थ कहते हैं, जिसे हम समझदार कहते हैं, वह सिर्फ नासमझों की आंखों में समझदार होगा; उससे ज्यादा नासमझ कोई भी नहीं, क्योंकि वह जो भी मांगता है, वह क्षुद्र पदार्थ है। और मालिक को बिना मांगे हम वहम में ही होते हैं कि हमें कुछ मिल गया, क्योंकि मौत हमसे फिर सब छीनकर मालिक को वापस लौटा देती है। थोड़ी-बहुत देर हम पहरेदारी करते हैं। बड़े से बड़ा हमारे बीच जो धनपति है, वह धन का पहरा देता है। जितना ज्यादा धन, उतना ही खर्च करना मुश्किल हो जाता है। खर्च करना तो सिर्फ फकीर ही जानते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने गांव में कभी किसी आदमी को चाय भी नहीं पिलाई। मरते समय तक बहुत पैसा उसके पास इकट्ठा हो गया। लेकिन एक दिन गांव में खबर उड़ गई कि मुल्ला नसरुद्दीन पूरे नगर को भोज दे रहा है। किसी ने भरोसा नहीं किया। लोगों ने सुना, हंसे, और टाल दिया।

एक अजनबी आदमी गांव में आया हुआ था, वह बड़ा हैरान हुआ कि जब गांव में इतने जोर की अफवाह है, फिर भी कोई आदमी मानता क्यों नहीं! उसने सोचा कि हर्ज क्या है, चलकर मैं नसरुद्दीन से ही पूछ लूं। कुतूहलवश...।

गांव के लोगों ने बहुत समझाया कि तू बिलकुल पागल है। यह नसरुद्दीन ने ही अफवाह उड़ाई होगी। बाकी यह हो नहीं सकता; यह इंपासिबल है, यह असंभव है। इस नगर में कुछ भी हो सकता है; नसरुद्दीन भोज दे दे पूरे नगर को, यह कभी नहीं हो सकता। जाने की जरूरत नहीं है।

लेकिन जितना लोगों ने रोका, उसकी उत्सुकता बढ़ी। उसने कहा, हर्ज क्या है, चार कदम चलकर जरा मैं पूछ ही क्यों न आऊं। अफवाह सच भी हो सकती है।

वह आदमी गया। नसरुद्दीन तो भीतर बैठा था अपनी बैठक में, बाहर नौकर उसका महमूद था। उस आदमी ने पूछा कि सुना है मैंने कि तुम्हारा मालिक मुल्ला नसरुद्दीन गांवभर को भोज दे रहा है, क्या तुम कुछ इस संबंध में मुझे जानकारी दे सकते हो? और अगर यह भोज होने वाला है, तो किस तारीख और किस दिन?

मुल्ला का नौकर तो अच्छी तरह जानता था कि यह कभी होने वाला नहीं है। वह हंसा और इसलिए कि कभी होने वाला नहीं है, उसने मजाक में उस आदमी से कहा कि अब तुम आ ही गए हो इतनी दूर चलकर, तो मैं तुम्हें दिन बताए देता हूं। कयामत के दिन, प्रलय के दिन, यह भोज होगा।

वह आदमी तो चला गया, मुल्ला अंदर से आया और कहा कि नालायक, अभी से दिन तय करने की क्या जरूरत! फंसा दिया मुझे। दिन भी तय कर दिया! अफवाह उड़ने दे, दिन तय करने की कोई जरूरत नहीं। कयामत का दिन भी आखिर दिन ही है। तय तो हो ही गया!

पहरे देते हैं लोग। अपने धन पर पहरा देते हैं, अपने यश पर पहरा देते हैं और मर जाते हैं। और उनका धन, और उनका यश उन पर हंसता हुआ यहीं पड़ा रह जाता है। सिर्फ एक धन है जिसे मृत्यु नहीं छीन पाती, और वह परमात्मा है। सिर्फ एक ही यश है जिसे मृत्यु नहीं धूमिल कर पाती, और वह परमात्मा है।

और मजा यह है कि जो परमात्मा को पा लेता है, वह सब पा लेता है। और जो सबको पाने की कोशिश में रहता है, वह सबमें से तो कुछ पाता ही नहीं; जिसे पा सकता था, परमात्मा को, उसे भी पाने के अवसर चूकता चला जाता है।

और जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।

और जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है!

लेकिन हमें तो कहीं परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और कृष्ण कहते हैं कि जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है। वह हमें कहीं दिखाई नहीं पड़ता। हमें सब कुछ दिखाई पड़ता है परमात्मा को छोड़कर। हमें सब कुछ दिखाई पड़ता है, आदमी, वृक्ष, पत्थर, हीरे-जवाहरात, आकाश, चांदत्तारे, सब दिखाई पड़ता है, सिर्फ परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और ये कृष्ण जैसे लोग निरंतर कहे जाते हैं कि और सब कुछ भी नहीं है, परमात्मा ही है। जरूर कहीं कोई बात है।

पश्चिम में एक नई साइकोलाजी पिछले पचास वर्षों में विकसित हुई है। उस साइकोलाजी का नाम है, गेस्टाल्ट साइकोलाजी, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान। यह गेस्टाल्ट शब्द ऐसा है कि इसका अनुवाद नहीं हो सकता है। इसलिए थोड़ा मैं आपको समझा दूं, तो खयाल में आ सके।

गेस्टाल्ट जर्मन शब्द है। और गेस्टाल्ट का मतलब होता है, एक रूप-रेखा, जो मन को पकड़ ले, तो उससे विपरीत रूप-रेखा दिखाई नहीं पड़ती।

इसे ऐसा समझें। कभी आपने बच्चों की किताबों में ऐसी तस्वीरें देखी होंगी। बच्चों की किताब में ऐसी तस्वीर अक्सर होती है कि दो चेहरे आदमियों के एक-दूसरे को देखते हुए बने हैं--नाक नाक के पास, होंठ होंठ के पास, दाढ़ी दाढ़ी के पास। दो चेहरे बने हैं, काले। इस चित्र को आप दो तरह से देख सकते हैं। अगर बीच की सफेद जगह को देखें, तो मालूम पड़ेगा कि कोई फूलों का गमला रखा है। अगर आप काले चेहरों पर ध्यान दें, तो फूलों का गमला खो जाएगा और दो चेहरे दिखाई पड़ेंगे आमने-सामने। और मजा यह है कि जब आप काले चेहरों को देखेंगे, तो आपको गमला नहीं दिखाई पड़ेगा। और जब आप गमले पर ध्यान देंगे, तो चेहरे दिखाई नहीं पड़ेंगे। दोनों एक साथ दिखाई नहीं पड़ेंगे।

या बच्चों की किताब में कभी इस तरह के चित्र भी होते हैं कि एक ही चित्र में, रेखाओं में जवान स्त्री का चित्र होता है एक, और उसी रेखाओं के बीच छिपा हुआ एक बूढ़ी स्त्री का चित्र होता है। जब आपको जवान स्त्री की रेखाएं दिखाई पड़ेंगी, तो बूढ़ी स्त्री दिखाई नहीं पड़ेगी। और जब बूढ़ी स्त्री की रेखाएं दिखाई पड़ेंगी, तो जवान स्त्री दिखाई नहीं पड़ेगी। और ऐसा नहीं है कि आपको पता नहीं है इसलिए, आपने दोनों देख ली हैं। एक दफा जवान देख ली, फिर क्षणभर बाद आपको बूढ़ी स्त्री भी मिल गई। अब आप जानते हैं कि दोनों स्त्रियां उस चित्र में मौजूद हैं। लेकिन अभी भी जब भी आप देखेंगे, एक ही दिखाई पड़ेगी, दूसरी दिखाई नहीं पड़ेगी। क्योंकि एक ही रेखाओं से दोनों की बनावट है। जब आप एक रेखा का उपयोग जवान स्त्री के लिए कर लेते हैं, तो बूढ़ी स्त्री के लिए रेखा नहीं बचती। और जब आप उसी रेखा का उपयोग बूढ़ी स्त्री के लिए कर लेते हैं, तो जवान स्त्री नहीं बचती।

इसको गेस्टाल्ट कहते हैं। एक चित्र में दो चित्रों की संभावना है, लेकिन एक चित्र देखें, तो दूसरा दिखाई नहीं पड़ता।

यह जगत एक गेस्टाल्ट है। इस जगत में जब तक आपको पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, तब तक परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि जहां पदार्थ समाप्त होते हैं, उनकी जो समाप्त होने की रेखा है, वही परमात्मा के प्रारंभ होने की रेखा है। इसलिए जिस आदमी को पदार्थ दिखाई पड़ता है, वह कहता है, कहां है परमात्मा? कहीं नहीं है। और जिसको परमात्मा दिखाई पड़ता है, वह पूछता है, कहां है संसार? कहां है पदार्थ? कहीं कोई नहीं है।

इसलिए शंकर जैसा ज्ञानी कहता है कि संसार नहीं है। माक्र्स जैसा ज्ञानी कहता है कि संसार ही है, परमात्मा नहीं है। पदार्थवादी कहता है, पदार्थ है। परमात्मवादी कहता है, परमात्मा है। और मामला गेस्टाल्ट का है।

उन्हीं रेखाओं का उपयोग हम कर रहे हैं। जब मैं आप पर ध्यान देता हूं, तो आप दिखाई पड़ते हैं; लेकिन आपके आस-पास का जो फैलाव है आकाश का, वह दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा का खोजी धीरे-धीरे दूसरे गेस्टाल्ट को देखना शुरू करता है। जब भी वह कोई चीज देखता है, तो दृष्टि चीज पर नहीं रखता, उस चीज के भीतर छिपे हुए प्राण पर रखता है। जब वह वृक्ष के पास खड़ा होता है, तो वृक्ष की पदार्थ-रेखाओं को नहीं देखता, वृक्ष के भीतर जो लपट की तरह उठता हुआ जीवन है आकाश की ओर, उसको देखता है।

विनसेंट वानगाग ने वृक्षों के शायद पृथ्वी पर सर्वाधिक सुंदर चित्र चित्रित किए हैं। लेकिन उसके वृक्षों को समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि उसके वृक्ष जमीन से उठते हैं और ठेठ आकाश को पार करते चले जाते हैं, चांदत्तारे नीचे रह जाते हैं और वृक्ष ऊपर निकल जाते हैं!

वानगाग को उसके मित्रों ने पूछा कि तुम पागल तो नहीं हो गए हो! कभी वृक्ष देखे हैं? ये चांदत्तारे नीचे पड़ गए और वृक्ष ऊपर चले जा रहे हैं? ये जमीन से लेकर आकाश को छेद रहे हैं? कभी वृक्ष देखे हैं? वानगाग ने कहा, तुमने जो वृक्ष देखे हैं, वे शायद मैंने नहीं देखे होंगे। मैंने जो वृक्ष देखे हैं, वे शायद तुमने नहीं देखे हैं। उन्होंने कहा, मतलब तुम्हारा!

तो वानगाग कहता था, जब भी मैं किसी वृक्ष को देखता हूं, तो थोड़ी ही देर में उसके पत्ते खो जाते, उसकी शाखाएं खो जातीं, उसकी जड़ें खो जातीं, उसकी देह खो जाती। फिर तो मुझे पीछे ऐसा ही लगता है कि वृक्ष पृथ्वी की फैली हुई आकांक्षाएं हैं आकाश को छूने की। पृथ्वी की आकांक्षाएं, आकाश को छूने की। वृक्ष की रूपरेखा मुझे खो जाती और पृथ्वी की आकांक्षाएं मुझे वृक्षों में लपट की तरह, हरी लपटों की तरह--ग्रीन फ्लेम्स--आकाश की तरफ भागती मालूम पड़ने लगती हैं। पृथ्वी कोशिश कर रही है आकाश से आलिंगन का, ऐसा ही मुझे दिखाई पड़ा है।

लेकिन ऐसा जिसे दिखाई पड़ेगा, उसे फिर वृक्ष के पत्ते वगैरह दिखाई नहीं पड़ेंगे। और जिसे वृक्ष के पत्ते वगैरह दिखाई पड़ेंगे, उसे वृक्षों के भीतर यह जो प्राण की ऊर्जा है भागती हुई, यह दिखाई नहीं पड़ेगी। जिसको फूल में केवल केमिकल्स दिखाई पड़ेंगे, उसे सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ेगा; और जिसे सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, उसे केमिकल्स का कोई पता नहीं होगा। गेस्टाल्ट का भेद है।

कृष्ण कहते हैं, यह जगत, इसका सब कुछ परमात्मा से परिपूर्ण है, उसी से भरा हुआ है।

हम चारों तरफ देखते हैं, वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता। हमारा गेस्टाल्ट गलत है। या हमारा गेस्टाल्ट संसार को देखने वाला है। हमें अपना गेस्टाल्ट बदलना पड़ेगा।

इस गेस्टाल्ट की बदलाहट की प्रक्रिया का नाम योग है। इस गेस्टाल्ट की बदलाहट की प्रक्रिया का नाम धर्म है। इस गेस्टाल्ट को बदलने की चेष्टा ही साधना है।

तब जगत में पदार्थ नहीं दिखाई पड़ता, परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। एक क्षण ऐसा आता है कि जगत में उसके अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, वही शेष रह जाता है। सब रेखाएं उसी में लीन हो जाती हैं। और सब नदियां पदार्थ की उसी के सागर में डूब जाती हैं और मिल जाती हैं।

वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।

और यह जो परम सत्ता व्याप्त है सब जगह, यह अनन्य भक्ति से प्राप्त हो जाती है। ये दो शब्द आखिर में समझ लें।

अनन्य भक्ति, ऐसी भक्ति जो संपूर्ण रूप से, समग्र रूप से, एक निष्ठा से परमात्मा की तरफ हो। एक निष्ठा से परमात्मा की तरफ हो। निष्ठा जरा भी यहां-वहां खंडित न होती हो, भागती न हो। बंटी हुई निष्ठा उस तक नहीं पहुंचा पाएगी। बंटी हुई निष्ठा संसार के गेस्टाल्ट में ले जाती है। एक निष्ठा संसार के गेस्टाल्ट से ऊपर उठाती है। उसके कारण हैं।

संसार का अर्थ है, बहुत वस्तुएं, अनेक। अगर अनेक के बीच जीना है, तो आपके भीतर अनेक आकांक्षाएं और अनेक निष्ठाएं होनी चाहिए। परमात्मा का अर्थ है, एक। अगर एक को पाना है, तो एक निष्ठा, एक आकांक्षा, एक अभीप्सा होनी चाहिए। एक को पाना हो, तो आपको भी एक होना चाहिए। अनेक को पाना हो, तो आप अनेक में विभाजित होकर जी सकते हैं।

चूंकि हम संसार को पाने में लगे हैं, इसलिए हमारे एक-एक आदमी के भीतर अनेक-अनेक आदमी होते हैं। सच तो यह है, हममें से कोई भी एक नहीं होता। क्राउड, एक भीड़ होती है हर आदमी के भीतर। आप भी पहचान सकते हैं कि आपके भीतर बहुत चेहरे होते हैं, बहुत आदमी होते हैं आपके भीतर। मनोविज्ञान कहता है, आदमी मल्टी-साइकिक है, बहु-चित्तवान है। उसके भीतर बहुत चित्त हैं। और एक चेहरा दूसरे चेहरे से भी अपरिचित बना रहता है। परिचय का मौका ही नहीं आता।

मुल्ला नसरुद्दीन एक नाव में यात्रा कर रहा है और नाव डूब जाती है। शिष्ट आदमी है, सज्जन आदमी है, नियम का पालन करता है। नाव डूब जाती है, अनेक यात्री मर जाते हैं, कुछ किनारों की तरफ तैरकर निकलने की कोशिश करते हैं। मुल्ला को एक लकड़ी का पटिया मिल जाता है, एक और यात्री को भी मिल जाता है। एक दिनभर बीत गया, दोनों पटिए पर सहारा लिए चल रहे हैं, लेकिन अभी कोई बातचीत नहीं हुई। बड़ी कठिनाई है, कठिनाई यह है कि दोनों सज्जन आदमी हैं और उनका पहले किसी ने परिचय कराया नहीं और अब कोई परिचय कराने वाला नहीं। वे दोनों ही हैं। लकड़ी के पटिए को पकड़े हैं और किसी ने परिचय कराया नहीं, तो बिना परिचय कराए किसी से बोलना!

आखिर दूसरे आदमी के बरदाश्त के बाहर हो जाती है सज्जनता। कभी-कभी सज्जनता बड़ी बरदाश्त के बाहर हो जाती है। आखिर वह कहता है कि महाशय, हद्द हो गई! औपचारिकता की भी हद्द हो गई। आप बोल क्यों नहीं रहे हैं? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं कि जो अशिष्ट हो, वह पहले बोले। अब तुम बोल चुके, अब कोई अड़चन नहीं है। मैं कभी नहीं बोलता उस आदमी से, जिससे मेरा पहले परिचय न करवाया गया हो। और मेरा किसी ने तुमसे परिचय नहीं करवाया।

आपके भीतर इतने चेहरे हैं जिनके साथ ही आप तैर रहे हैं, सागर में डूब रहे हैं, लेकिन आपका कोई परिचय नहीं है। क्योंकि आपके खुद के चेहरों से कोई दूसरा तो आपका परिचय करवाएगा नहीं, आपको ही परिचय करना पड़ेगा। आप शिष्ट आदमी हैं, कैसे परिचय करें! और आपके चेहरे को दूसरा परिचय करवाएगा कैसे? और अगर कोई करवाने की कोशिश करे, तो आप नाराज भी हो जाते हैं। अगर कोई आपको बताए कि देखो, सुबह तुम्हारा दूसरा चेहरा था, अब तुम दूसरा चेहरा लिए हो, तो आप एकदम नाराज हो जाते हैं। और आप कभी अपने आत्म-परिचय में लगते नहीं हैं, नहीं तो पाएंगे कि भीतर एक भीड़ है।

इस भीड़ का कारण क्या है? इस भीड़ का एक ही कारण है, क्योंकि आप बहुत-सी चीजों को पाना चाहते हैं। बहुत-सी चीजों को पाने के लिए आपको बहुत-से हिस्से, अपने खंड-खंड करने पड़ते हैं। आप उस आदमी की तरह हैं, जो चौराहे पर खड़ा है और चारों रास्तों पर एक साथ जाना चाहता है! तो थोड़ा हिस्सा इस रास्ते पर चला जाता है, थोड़ा हिस्सा उस रास्ते पर चला जाता है, थोड़ा हिस्सा और रास्ते पर चला जाता है। आपके सब हिस्से अलग-अलग यात्राओं पर निकल जाते हैं। फिर शायद मुश्किल ही हो जाता है उनको इकट्ठा करना और एक जगह लाना।

परमात्मा को पाना हो, तो अनन्य भक्ति से ही वह प्राप्त करने योग्य है। अनन्य का अर्थ है, इंटीग्रेटेड; आपके भीतर आप इतने एक हो जाएं कि आप जिस तरफ आंख उठाएं, आपके पूरे प्राणों की आंख उस तरफ उठ जाए।

अभी ऐसा नहीं होता। अभी आदमी मंदिर में पूजा के लिए भी सिर नीचे रखता है, तो एक आंख परमात्मा की तरफ लगी रहती है कि प्रार्थना सुनी या नहीं! दूसरी आंख पीछे देखती रहती है कि लोग कोई देख रहे हैं कि नहीं कि मैं कितनी प्रार्थना कर रहा हूं, कैसा धार्मिक आदमी हूं!

मुल्ला नसरुद्दीन गिर पड़ा है। एक धूप से भरी हुई दोपहर है। सड़क पर गिर पड़ा है। बड़ी भीड़ लग गई। दोनों आंखें उसकी बंद हैं। बेहोश हालत है। कोई कहता है, इसको जूता सुंघा दो, इसे होश आ जाएगा। कोई कहता है, सिर पर मालिश करो। कोई कहता है, पानी छिड़को। एक लड़की चिल्लाए चली जा रही है कि इससे कुछ भी न होगा, एक पावभर दूध में आधा पाव जलेबी डालकर इसे खिला दो।

मुल्ला पहले तो थोड़ी देर तक यह सब आयोजन सुनता रहा। फिर एक आदमी जूता निकालकर ही आ गया। तब उसने एक आंख खोली, उसने कहा, हटाओ भी, सब अपनी बकवास में लगे हैं, कोई उस बेचारी लड़की की भी तो सुनो। हम इधर बेहोशी में मरे जा रहे हैं और तुम अपना जूता सुंघा रहे हो! एक आंख खोलकर उसने कहा कि उस बेचारी लड़की की भी कोई सुनो!

बेहोश भी अगर हम होते हैं, तो आधा ही हिस्सा बेहोश है, आधा उस वक्त भी हिसाब लगा रहा है कि कोई जूता तो नहीं सुंघा रहा है! कोई क्या कर रहा है! नींद में भी हम बिलकुल सोए हुए नहीं हैं। नींद में भी कान हमारे सजग हैं। सुन रहे हैं, जान रहे हैं कि कहां क्या हो रहा है; आस-पास क्या चल रहा है!

खंडित है सब, बंटा हुआ है सब। इस बंटी हुई स्थिति को लेकर कोई प्रभु की तरफ नहीं जा सकता। इसलिए शर्त है, अनन्य। और भक्ति का अर्थ है, प्रेम। और प्रेम अनन्य ही हो सकता है। उसकी धारा एक ही हो सकती है। प्रेम में बंटाव नहीं है, प्रेम में कटाव भी नहीं है। प्रेम खंड-खंड चित्त से हो भी नहीं सकता; अखंड चित्त हो, तो ही हो सकता है। अखंड प्रेम के द्वारा यह परम सत्ता पाने योग्य है।

पाने योग्य है दो अर्थों में। एक तो इस अर्थ में कि इतनी मेहनत उठानी पड़े--कितनी ही मेहनत उठानी पड़े स्वयं को एक करने की, तो भी वह कोई मूल्य नहीं है। वह चुका देने जैसा है। और मुफ्त है, क्योंकि जो मिलता है, उसका कोई मूल्य नहीं आंका जा सकता है। इसलिए अनन्य भक्ति से पाने योग्य है। एक।

और दूसरा कि यही पाने योग्य है, और कुछ इस जीवन में, अस्तित्व में पाने योग्य नहीं है। यह परम धाम ही पाने योग्य है। और इस परम धाम को जब तक हम न पा लें, तब तक हम ऐसी चीजों को पाते चले जाएंगे, जिन्हें न पाया होता तो कुछ हर्ज न था, और पा लिया तो कुछ पाया नहीं।

लेकिन आदमी खाली नहीं बैठ सकता। आदमी कुछ तो पाता ही रहेगा। कुछ तो करता ही रहेगा। यह मकान बनाएगा, और बड़ा मकान बनाएगा। यह दुकान खोलेगा, और बड़ी दुकान खोलेगा। कुछ न कुछ करता ही रहेगा। और सब कुछ करके भी पाएगा कि कुछ पाया नहीं, तो फिर कुछ और करने में लग जाएगा।

हमारी जिंदगी का तर्क ऐसा है कि अगर एक मकान मैं बना लूं और सुख न मिले, तो मैं सोचता हूं, इतने छोटे-से मकान से कहां सुख मिलेगा! थोड़ा बड़ा मकान बनाना चाहिए। वह उतना बड़ा बना लूं, फिर भी मेरा तर्क कहेगा, इतने से नहीं मिला, साफ जाहिर होता है कि थोड़ा और बड़ा मकान चाहिए। इसी तरह मैं दौड़ता रहूंगा। कभी भी यह खयाल नहीं आता कि जब छोटे मकान में कम से कम थोड़ा तो सुख मिलना चाहिए था, तो बड़े में थोड़ा और ज्यादा मिल जाता! थोड़े में थोड़ा भी नहीं मिला, छोटे में छोटा सुख भी नहीं मिला, तो बड़े में भी नहीं मिल सकता है। मैं कहीं कुछ गलत काम में लगा हूं। मैं सिर्फ आकुपाइड हूं, मैं सिर्फ व्यस्त होने की कोशिश में लगा हूं। खालीपन घबड़ाता है, तो भरता रहता हूं--कभी धन से, कभी यश से, कभी पद से--कुछ न कुछ, कुछ न कुछ काम से अपने को भरता रहता हूं।

लेकिन कितना भी भरूं अपने को, कितने ही कामों से, खाली ही रह जाऊंगा। सिवाय परमात्मा के और कोई चीज वस्तुतः किसी को भर नहीं सकती। उस भराव के साथ ही फुलफिलमेंट है, उस भराव के साथ ही भराव है। उसके पहले हर आदमी खाली है।

इसलिए पश्चिम में इधर पचास वर्षों में--और पश्चिम का प्रभाव तो सारे पूरब पर भी छा गया है--पचास वर्षों में जितने जीवन-दर्शन पैदा हुए हैं, वे सभी जीवन-दर्शन एक बात पर खड़े हैं कि आदमी की जिंदगी में भराव नहीं है, खाली है, एंप्टी है, रिक्त है। इनकी रिक्तता का कारण है, क्योंकि पिछले पचास वर्षों में पश्चिम और पश्चिमी विचारधारा के प्रभावी लोगों ने परमात्मा को इस तरह इनकार किया है, जैसा इनकार इसके पहले मनुष्य के इतिहास में कभी भी नहीं हुआ।

जितना हम परमात्मा को इनकार करेंगे, उतना ही हम एंप्टी और खाली अपने को अनुभव करेंगे। और फिर उस खालीपन को न एटम से भर सकते हो, न हाइड्रोजन बम से भर सकते हो। उस खालीपन को, बड़ी से बड़ी युनिवर्सिटियां खड़ी करो, नहीं भर पाओगे। उस

खालीपन को, बड़े महल खड़े करो, सौ डेढ़ सौ मंजिल ऊंचे, आकाश को छूने लगें, वह खालीपन बिलकुल नहीं छुआ जाएगा। वह खालीपन किसी और चीज से कभी भरता ही नहीं। वह सिर्फ एक से ही भरता है, जिससे वह पहले से ही भरा हुआ है। उसको ही जान लेने से भरापन उपलब्ध होता है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
जीवन ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन–उत्तरायण पथ— अध्याय—8 (प्रवचन—नौवां)

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।।23।।
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।24।।
और हे अर्जुन, जिस काल में शरीर त्यागकर गए हुए योगीजन, पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं, उस काल को अर्थात मार्ग को कहूंगा।

उन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में अग्नि है, ज्योति है, और दिन है, तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

कोई ऐसे भी जी सकता है जैसे मरा हुआ रहा हो, और कोई ऐसे भी मर सकता है कि उसकी मृत्यु को हम जीवंत कहें। जीवन भी मृतवत हो सकता है, और मृत्यु भी अति जीवंत।

जिस भांति हम जीते हैं, उसे जीवन नाम-मात्र को ही कहा जा सकता है। न तो जीवन का हमें कोई पता है; न जीवन के रहस्य का द्वार खुलता है; न जीवन के आनंद की वर्षा होती है; न हम यही जान पाते हैं कि हम क्यों जी रहे हैं, किसलिए जी रहे हैं। हमारा होना करीब-करीब न होने के बराबर होता है। कहना उचित नहीं कि हम जीते हैं, यही कहना काफी है कि हम किसी भांति बने रहते हैं, किसी भांति अस्तित्व को ढो लेते हैं, जीवित रहते हुए भी मुर्दे की भांति। लेकिन ऐसा भी होता है कि मरते क्षण में भी कोई इतना जीवंत होता है कि उसकी मृत्यु को भी हम मृत्यु नहीं कहते।

बुद्ध की मृत्यु को हम मृत्यु नहीं कह सकते हैं और हमारे जीवन को हम जीवन नहीं कह पाते हैं। कृष्ण की मृत्यु को मृत्यु कहना भूल होगी। उनकी मृत्यु को हम मुक्ति कहते हैं। उनकी मृत्यु को निर्वाण कहते हैं। उनकी मृत्यु को हम जीवन से और महाजीवन में प्रवेश कहते हैं।

उनकी मृत्यु के क्षण में कौन-सी क्रांति घटित होती है, जो हमारे जीवन के क्षण में भी घटित नहीं हो पाती! किस मार्ग से वे मरते हैं कि परम जीवन को पाते हैं! और किस मार्ग से हम जीते हैं कि जीवित रहते हुए भी हमें कोई जीवन की सुगंध का भी पता नहीं पड़ता है।

जिसे हम अपना शरीर कहें, वह हमारे लिए एक कब्र से ज्यादा नहीं है, एक चलती-फिरती कब्र! और यह लंबा विस्तार जन्म से लेकर मृत्यु तक, बस आहिस्ता-आहिस्ता मरते जाने का ही काम करता है। ऐसे हम गुजरते हैं रोज-रोज और मौत के करीब पहुंचते हैं। हमारी सारी यात्रा मरघट पर पूरी हो जाती है।

लेकिन बुद्ध भी मरते हैं, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी, मोहम्मद भी, और उनकी मृत्यु के लिए हमें दूसरा शब्द खोजना पड़ता है। उनके जीवन के लिए भी हमें दूसरा शब्द खोजना पड़ता है। वे कुछ और ढंग से जीते हैं और वे कुछ और ढंग से मरते हैं। जीने का सब कुछ निर्भर है जीने के ढंग पर, और मरने का भी सब कुछ निर्भर है मरने के ढंग पर। हमें जीने का ढंग भी नहीं आता। बुद्ध जैसे व्यक्ति को मरने का ढंग भी आता है।

कृष्ण अर्जुन से उस क्षण, उस मार्ग, मृत्यु की उस कला की बात इन सूत्रों में करेंगे, जिस कला को जानने वाला, जिस मार्ग को पहचानने वाला, मरकर मरता नहीं, अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

कृष्ण ने कहा है, और हे अर्जुन, जिस काल में शरीर त्यागकर गए हुए योगीजन, पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं, उस काल को, उस मार्ग को मैं तुमसे कहूंगा।

इसमें दोत्तीन बातें ठीक से समझ लेनी चाहिए।

जिस काल में, जिस क्षण में!

बड़ा मूल्य है क्षण का, बड़ा मूल्य है काल का, जिस क्षण में कोई व्यक्ति मृत्यु को उपलब्ध होता है। निश्चित ही, क्षण से अर्थ, बाहर की घड़ी में घूमते हुए कांटे से जो नापा जाता है, उस क्षण से नहीं है। लेकिन भीतर भी एक घड़ी है, और भीतर भी क्षणों का एक हिसाब है। एक तो बाहर नापने की हमने यांत्रिक व्यवस्था की है समय को। वह बाहर के कामों के लिए जरूरी है, भीतर के कामों के लिए नहीं। भीतर एक और भी माप है। और उस माप में, जिस क्षण में व्यक्ति की मृत्यु होती है–भीतरी माप के जिस क्षण में, भीतरी घड़ी के जिस क्षण में–बहुत कुछ निर्भर होता है।

क्योंकि इस जगत में आकस्मिक कुछ भी नहीं है, मृत्यु भी आकस्मिक नहीं है। मृत्यु भी बहुत सुव्यवस्थित है। और मृत्यु भी बहुत कारणों से सुनिश्चित है। और हर आदमी हर कभी नहीं मरता; हर आदमी अपनी मृत्यु चुनता है; दैट इज़ ए च्वाइस; जिसे हम जिंदगीभर निर्मित करते हैं। और मृत्यु को देखकर कहा जा सकता है कि व्यक्ति कैसे जीया। भीतर, मृत्यु का क्षण निर्णायक है।

यदि भीतर की घड़ी, भीतर का समय विचार से भरा हो, वासना से भरा हो, कामना से भरा हो, तो व्यक्ति मरकर वापस लौट आता है। लेकिन भीतर का समय यदि बिलकुल शुद्ध हो, सिर्फ समय हो, कोई विचार नहीं, कोई कामना नहीं, कोई तृष्णा का सूत्र नहीं, शुद्ध क्षण हो समय का, जैसे निश्छल पानी हो, जरा भी कुछ और अशुद्धि उसमें न हो, सिर्फ समय हो, तो उस क्षण में मरा हुआ व्यक्ति संसार में लौटकर नहीं आता।

इस संबंध में कहना चाहूंगा, महावीर ने ध्यान के लिए जो नाम दिया है, वह है सामायिक। यह शब्द बहुत अदभुत है। यह समय से बना हुआ शब्द है। महावीर ने कहा है कि ध्यान मैं उसी को कहता हूं, जब तुम्हारे भीतर का समय बिलकुल शुद्ध हो। इसलिए उन्होंने ध्यान का उपयोग ही नहीं किया। ध्यान की जगह उन्होंने सामायिक शब्द का उपयोग किया है।

शुद्ध समय में ठहर जाना ध्यान है।

हमारा समय, भीतर जो हमारा समय है, वह सदा ही वासना से भरा है। थोड़ा भीतर का स्मरण करें, तो खयाल में आ जाएगा। आपने अपने भीतर वर्तमान के क्षण को कभी भी नहीं जाना होगा। भीतर या तो आप अतीत को जानते हैं, बीत गए को, जिसकी स्मृति आपका पीछा करती है छाया की भांति। जो हो चुका, उसकी जुगाली करते रहते हैं, जैसे जानवर जुगाली करते हैं। भैंस रख लेती है भोजन बहुत-सा अपने पेट में और फिर उसे निकालकर चबाती रहती है। जो बीत गया, उसकी जुगाली चलती है मन के भीतर। सोचते रहते हैं बार-बार उसको, जो हो चुका।

जो हो चुका, उसे सोचना नासमझी है। उससे अपने वर्तमान क्षण को व्यर्थ ही आप नष्ट किए दे रहे हैं। जो जा चुका वह जा चुका, अब वह कहीं भी नहीं है, लेकिन आपकी स्मृति में है। और आपकी स्मृति जुगाली करती है और वर्तमान में जो क्षण है अभी, समय जो है भीतर, उसे भर देती है। वह जो प्रेजेंट मोमेंट है, अभी इसी समय जो मौजूद क्षण है, उसे अतीत ढांक लेता है। और जब कोई वर्तमान का क्षण अतीत से ढंक जाता है, तो नष्ट हो जाता है। आप उससे अपरिचित ही गुजर जाते हैं।

या तो यह होता है और या फिर यह होता है कि वर्तमान का क्षण भविष्य की वासना से आच्छादित होता है। सोचते हैं उसके संबंध में, जो अभी नहीं है, होगा। आने वाला कल, भविष्य। क्या करना है, क्या नहीं करना है। क्या पाना है, क्या नहीं पाना है। कौन-सी दौड़ लेनी है, कौन-सी मंजिल बनानी है।

या तो अतीत डुबा देता है क्षण को, वर्तमान को, या भविष्य डुबा देता है। दोनों हालत में भीतर का समय खो जाता है। दोनों हालत में वह काल-क्षण खो जाता है, जो कि वस्तुतः था और वे चीजें आच्छादित हो जाती हैं। दोनों नहीं हैं; बीता हुआ कल भी नहीं है, आने वाला कल भी नहीं है। जो नहीं है, वह उसे घेर लेता है, जो है। यही मरे हुए जिंदा आदमी का लक्षण है।

इसीलिए हम जीते हैं बुझे-बुझे, मरे-मरे। क्योंकि जो नहीं है, वह हमारे ऊपर भारी है; और जो है, उसका कहीं पता भी नहीं चलता।

क्या कभी आपने मन में ऐसा टाइम-मोमेंट, ऐसा काल-क्षण जाना है, जब अतीत भी न हो, भविष्य भी न हो, और आप अभी हों, यहीं, अभी और यहीं, जस्ट हियर एंड नाउ। उस क्षण में यदि मृत्यु हो जाए, तो लौटकर आना नहीं होता।

लेकिन जो उस क्षण में जीया ही नहीं, वह मरेगा कैसे? जिसने जीवन में कभी उस क्षण को जाना ही नहीं, वह मरते वक्त नहीं जान लेगा अचानक। अचानक उसका अवतरण नहीं होता। जिसका जीवनभर भरा हुआ रहा है कचरे से, मरते क्षण में वह सारा कचरा इकट्ठा होकर उसके चित्त को घेर लेता है।

ध्यान रहे, जीते जी तो कुछ अतीत याद आता है, कुछ भविष्य। मरते क्षण पूरा अतीत और पूरे भविष्य की कल्पनाएं इकट्ठी खड़ी हो जाती हैं।

जिन लोगों को कभी पानी में डूबने का खयाल हो, कि ऐसी घड़ी आ गई हो कि मरने के करीब पहुंच गए, तो शायद उन्हें पता हो। बहुत-से डूबने वाले लोगों ने, जो बच गए, वक्तव्य दिए हैं। और वे वक्तव्य ये हैं कि डूबते क्षण में पानी में, जब कि लगता है कि मौत आ गई, तो एक क्षण में सारा जीवन फिल्म की भांति आंख के सामने से गुजर जाता है। एक क्षण में जैसे पूरी की पूरी जीवन की फिल्म एकबारगी आंख के सामने गुजर जाती है।

मरते वक्त सभी को ऐसा होता है। सारा अतीत आंख के सामने गिर जाता है; और सारे भविष्य के भय, वासनाएं, स्वप्न, वे भी सब इकट्ठे हो जाते हैं। मृत्यु का क्षण बड़ी भीड़ का क्षण है; टू मच क्राउडेड।

इसलिए मृत्यु में आपको अपना तो पता ही नहीं चलता। भीड़ इतनी ज्यादा होती है कि पता लगाना ही मुश्किल होता है कि मैं कौन हूं। जो मर रहा है, उसका तो पता ही नहीं चलता। लेकिन पीछे और आगे हम डोलते रहते हैं।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की शादी को तीस वर्ष हो गए हैं। और उसकी पत्नी ने एक दिन सुबह उठकर कहा कि मुल्ला याद है, आज तीस वर्ष पूरे होते हैं, आज हमारी विवाह की वर्षगांठ है, कैसे मनाएं? क्या इरादा है तुम्हारा? क्या अच्छा न हो, जो मुर्गा हम छः महीने से पाल रहे हैं, आज उसे काट लिया जाए? नसरुद्दीन ने कहा, तीस साल पहले घटी हुई दुर्घटना के लिए मुर्गे को दंड देना कहां तक उचित है! फिर मुर्गे का उसमें कोई हाथ भी नहीं है।

लेकिन तीस वर्ष क्या, तीस जन्म पहले घटी हुई घटना और दुर्घटना भी हमें घेरे रहती है। हम उसी के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। और जितना हम पीछे घूमते रहते हैं, उतना ही हम आगे की योजनाओं में डूबे रहते हैं। जितना होगा अनुपात अतीत का, उतना ही अनुपात सदा होता है भविष्य का। जितनी जड़ें आदमी की अतीत स्मृति में होती हैं, उतनी ही शाखाएं उसी अनुपात में, ठीक उसी अनुपात में भविष्य में फैल जाती हैं। और बीच का जो क्षण है--बहुत छोटा, बहुत छोटा, अति अल्प, आणविक--वह खो जाता है इस बीच।

जिस काल-क्षण की कृष्ण बात कर रहे हैं, उस काल-क्षण को ठीक से समझ लें। उस समय न अतीत हो, न भविष्य; रह जाए शुद्ध वर्तमान--परिपूर्ण निश्छल, परिपूर्ण निर्दोष, इनोसेंट, अनबर्डन, निर्बोझ, निर्भार--तो उस क्षण में जो मृत्यु होती है, उसका रूप मृत्यु का नहीं, परम जीवन के अनुभव का है। वह मोक्ष, मुक्ति बन जाती है।

मृत्यु हम तब तक कहते हैं अंत को, जब तक वापस लौटना जारी रहता है। मृत्यु उस क्षण मुक्ति बन जाती है, मोक्ष, जिस क्षण वापस लौटने का उपाय नहीं रह जाता।

वापस लौटता है आदमी मन से। मन ही धागा है जिससे हम वापस लौटते हैं। और मन है अतीत और भविष्य का जोड़। अतीत+भविष्य = मन।

वर्तमान का क्षण मन का हिस्सा नहीं है, नाट ए पार्ट आफ दि माइंड, वर्तमान मन का हिस्सा नहीं है। इसलिए जो वर्तमान में प्रवेश कर जाता है, वह मन के बाहर हो जाता है। जो अतीत और भविष्य में रहता है, वह मन में रहता है।

अब एक बहुत मजे की बात आपसे कहूं, जो कि आपको एकदम से समझ में शायद न भी पड़े, लेकिन थोड़ा समझेंगे, तो समझ में पड़ सकती है।

हम सदा कहते हैं कि समय के तीन हिस्से हैं, अतीत, वर्तमान, भविष्य; पास्ट, प्रेजेंट, फ्यूचर। इसमें भूल है। प्रेजेंट जो है, प्रेजेंट इज़ नाट ए पार्ट आफ टाइम एट आल। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। समय तो केवल अतीत और भविष्य है। वर्तमान समय के बाहर है। जहां अतीत समाप्त होता है और जहां अभी भविष्य शुरू नहीं होता, उस बीच की संधि-रेखा में वर्तमान है। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। कामचलाऊ है बातचीत कि वर्तमान समय का हिस्सा है। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। वर्तमान अस्तित्व है।

और जो समय का हिस्सा नहीं है, वह मन का भी हिस्सा नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो जिसे हम बाहर के जगत में समय कहते हैं, टाइम कहते हैं, वही भीतर के जगत में मन, माइंड है। इसे ऐसा समझ लें कि जिस घटना को हम बाहर के जगत में समय कहते हैं, उसी घटना का भीतरी नाम मन है। टाइम एंड माइंड आर रियली सिनानिम्स, वे बिलकुल पर्याय हैं; उनमें कोई भेद नहीं है।

इसलिए जिसे मन के बाहर जाना हो, वह समय के बाहर चला जाए, तो मन के बाहर पहुंच जाता है। जिसे समय के बाहर जाना हो, वह मन के पार चला जाए, तो समय के बाहर पहुंच जाता है। ये दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं। बाहर समय की तरह पहचाना जाता है जो, भीतर वही मन है।

वर्तमान न तो समय का हिस्सा है और न मन का। वर्तमान अस्तित्व है।

इसे ऐसा समझें कि अस्तित्व में न कुछ अतीत है और न कुछ भविष्य, अस्तित्व सदा है। अस्तित्व में न कुछ अतीत है और न कुछ भविष्य, अस्तित्व तो सदा है। ऐसा समझें कि आदमी चला जाए जमीन से, तो क्या जमीन पर कोई पास्ट, कोई अतीत होगा? आदमी न हो जमीन पर, अर्थात मन न हो जमीन पर, तो क्या कोई भविष्य होगा?

चांद तो फिर भी निकलेगा, लेकिन चांद कल भी निकला था, इसकी स्मृति चांद को नहीं है। फूल फिर भी खिलेंगे, लेकिन फूल पहले भी खिले थे, इसका कोई हिसाब फूल नहीं रखते। पक्षी फिर भी गीत गाएंगे, लेकिन यह गीत कल भी गाया गया था, इसका पक्षियों के पास कोई लेखा-जोखा नहीं है। और चांद कल भी निकलेगा, इसकी कोई योजना चांद के पास नहीं है। और फूल कल भी खिलेंगे, उस कल का, उस खिलने का, फूलों को कोई स्वप्न भी नहीं आता है।

मन हट जाए...ध्यान रहे, इसीलिए हमने आदमी को–शायद जमीन पर अकेला भारत है, जिसने ठीक-ठीक नाम दिया है–मनुष्य। मनुष्य का मतलब है, जिसके पास मन है। और मन का अर्थ है कि जिसके पास अतीत का लेखा-जोखा और भविष्य की योजना और कल्पना है। मनुष्य न हो, मन न हो, तो सब कुछ होगा, समय नहीं होगा। देअर शैल बी टाइम नो लांगर; आदमी भर न हो, तो समय नहीं होगा।

समय आदमी के मन के साथ पैदा हुई वस्तु है। आदमी के हटते ही समय खो जाता है। यदि भीतर आप किसी ऐसी स्थिति को खोज लें, जब न अतीत है, न भविष्य, तो वहां कोई विचार भी नहीं हो सकता। क्योंकि विचार या तो अतीत के होते हैं, या भविष्य के। वहां कोई तृष्णा नहीं हो सकती, क्योंकि तृष्णा अतीत से जन्मती है और भविष्य की तरफ दौड़ती है। वहां कोई वासना नहीं हो सकती। वहां होंगे सिर्फ आप, सिर्फ आपका अस्तित्व, सिर्फ होना मात्र, जस्ट बीइंग। उस क्षण में जो मृत्यु घटित हो, तो लौटकर आना नहीं है। मृत्यु मुक्ति बन जाती है।

और जिन लोगों ने मृत्यु को परम मित्र कहा है, तो आपकी मृत्यु को नहीं कहा है। जिन्होंने कहा है कि मृत्यु परम सौभाग्य है, तो आपकी मृत्यु को उन्होंने परम सौभाग्य नहीं कहा है। उस भूल में मत पड़ना। उन्होंने इस मृत्यु की बात कही है। जो मृत्यु मित्र है, वह ऐसी मृत्यु है, जो मुक्ति बन जाती है।

लेकिन काल-क्षण बहुमूल्य है। यदि भीतर ऐसा न हो, तो फिर आप नई यात्रा पर प्रारंभ कर देते हैं। अतीत को समेटे हुए, भविष्य का स्वप्न देखते हुए ही पुनर्जन्म होता है। अतीत को समेटे हुए, भविष्य की कामना करते हुए ही फिर नया गर्भ धारण हो जाता है।

लौटकर आना हो, तो भरा हुआ मन चाहिए। लौटकर न आना हो, तो रिक्त, खाली, शून्य मन चाहिए। शून्य मन का अर्थ है, अ-मन। जिसको कबीर ने अ-मनी अवस्था कहा है और जापान के झेन फकीर जिसे स्टेट आफ नो-मांइड कहते हैं, उसी की चर्चा कृष्ण कर रहे हैं।

लेकिन मृत्यु के समय–आकस्मिक, अचानक द्वार पर आ गई मृत्यु–उस क्षण आप कैसे सम्हाल पाएंगे अपने को, यदि जीवन में प्रतिपल न सम्हाला हो! तो जो ठीक से नहीं जीया, वह ठीक से मर नहीं सकेगा। गलत जीने का अंतिम परिणाम गलत मृत्यु होगी। और गलत मृत्यु का अर्थ होता है कि फिर गलत जीवन का प्रारंभ। आपने फिर बीज बो दिए।

जीवन में ही सम्हालना पड़े। जीते-जी ही सम्हालना पड़े। और यह आप तभी सम्हाल सकते हैं, जब आपको खयाल हो कि जीवन के किसी भी क्षण में मृत्यु घटित हो सकती है; अभी और यहीं घटित हो सकती है। इसलिए जो कहता है, कल सम्हाल लेंगे, वह कभी भी नहीं सम्हाल पाता है। जो कहता है, अभी और यहीं, वही सम्हाल पाता है।

एक झेन फकीर हुआ लिंची। अपने गुरु के पास जब वह गया था, तो उसके गुरु ने कहा, किसलिए आया है? तो लिंची ने कहा कि मैं संन्यासी होना चाहता हूं। उसके गुरु ने कहा, होना चाहता है या अभी होने को तैयार है? उसके गुरु ने कहा, संन्यास का भविष्य से कोई भी संबंध नहीं है; संसार का भविष्य से संबंध है।

कोई आदमी कहे, एक दुकान चलाना चाहता हूं, तो भविष्य की जरूरत पड़ेगी। दुकान एक फैलाव है, समय में। कोई आदमी कहे, धन कमाना चाहता हूं, तो आज इसी क्षण नहीं कमा सकता है। धन के लिए आयोजना करनी पड़ेगी, पंचवर्षीय, पचास वर्षीय योजनाएं बनानी पड़ेंगी। प्लानिंग करनी पड़ेगी। फिर भी मिलेगा, नहीं मिलेगा, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि धन पर मेरा वश नहीं है। और बहुतों का वश भी है। और मैं अकेला ही धन कमाने नहीं चल पड़ा हूं। यह सारी पृथ्वी धन कमाने चल पड़ी है। भारी प्रतिस्पर्धा है। सिर्फ धर्म को छोड़कर

सभी चीजों में भारी प्रतिस्पर्धा है। धन कमाना हो, यश कमाना हो, पदों की सीढ़ियां चढ़नी हों, तो भविष्य के बिना कोई उपाय नहीं। टाइम विल बी नीडेड। भविष्य चाहिए, नहीं तो कुछ भी न हो सकेगा।

लेकिन यदि संन्यास लेना हो, तो भविष्य की कोई भी जरूरत नहीं है। इसी क्षण घट सकता है, क्योंकि संन्यास निपट निजी है। उसका इस जगत में किसी से कोई संबंध नहीं है। और अगर धन मैं कमाना चाहूं, तो मेरे पास जितना धन बढ़ेगा, किसी के पास कम होगा। या किसी के पास ज्यादा हो सकता था, तो मैं छीनूंगा। कहीं न कहीं, कोई न कोई वंचित होगा। लेकिन अगर मैं संन्यास लेता हूं, दुनिया में कहीं भी कोई वंचित नहीं होता। शायद मेरे संन्यास लेने से दुनिया में बहुत कुछ समृद्धि भला आ जाए, लेकिन कहीं कोई वंचित नहीं होता है। क्योंकि संन्यास कोई कमोडिटी नहीं है, कोई वस्तु नहीं है कि कम हो जाएगी। फिर संन्यास कोई संसार का हिस्सा नहीं है कि मैं उसकी योजना करूं और कल और परसों, और वर्ष और दो वर्ष, और प्रतीक्षा करूं।

संन्यास एक घटना है, जो उस काल-क्षण में घटती है, जो अभी और यहीं है।

ठीक से समझें, तो संन्यास का अर्थ है, जो समय के बाहर घटित होता है। संसार का अर्थ है, जो समय के भीतर घटित होता है। संसार का अर्थ है, विदिन दि टाइम प्रोसेस। और संन्यास का अर्थ है, जंपिंग आउट आफ दि टाइम प्रोसेस।

इसलिए जब कोई आदमी कहता है कि कल सोचकर मैं संन्यास लूंगा, तो मैं जानता हूं कि उसे पता ही नहीं कि संन्यास का अर्थ क्या है। सोचकर जो लिया जा सकता है, वह संसार होगा। क्योंकि सोचेंगे क्या? सोचने का अर्थ है, अतीत के अनुभव से पूछूंगा, स्मृति से पूछूंगा। सोचने का क्या अर्थ है। भविष्य का हिसाब लगाऊंगा कि फायदा होगा कि नुकसान होगा। सोचने का अर्थ है, अतीत और भविष्य से पूछूंगा। और तो सोचने का कोई भी अर्थ नहीं होता। लोग क्या कहेंगे, यह भविष्य है। और अतीत में मैं कैसा आदमी रहा हूं, उसके साथ तालमेल खाएगा संन्यास, नहीं खाएगा, यह अतीत है। मुर्दों से पूछ रहे हैं, अतीत से; भविष्य से पूछने का अर्थ है, अनजन्मे से पूछ रहे हैं।

लेकिन संन्यास का सोचने से कोई संबंध नहीं। धर्म का ही सोचने से कोई संबंध नहीं है। इसी क्षण उस संधि-रेखा में, जहां अतीत नहीं और भविष्य नहीं, जो घटना घट जाती है, बिना विचारे जो छलांग है, कूद जाना है अपने से बाहर, वह संन्यास है।

उसके गुरु ने कहा, तू लेना चाहता है, या तैयार है अभी? उस युवक ने, लिंची ने आंखें बंद कर लीं, सोचने लगा। उसके गुरु ने उसे हिलाया और कहा, जरा-सा विचार, और तू चूक जाएगा। जरा-सा सोचा, कि तू गया, खोया। युवक ने कहा, मुझे सोच तो लेने दें। थोड़ा-सा तो सोच लेने दें! इतनी भी जल्दी क्या है? उसके गुरु ने कहा, काश, तुझे पता होता कि मौत किसी भी क्षण घटित हो सकती है, तो तू इस तरह की बात न कहता कि इतनी भी जल्दी क्या है! और तू सोचेगा क्या? तू ही सोचेगा न! अगर तू सोच सकता होता, तो बहुत पहले कभी का संन्यासी हो चुका होता।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह रही है एक दिन कि जो बुद्धिमान लोग हैं, वे शादी करके भी सुखी रह सकते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, जो बुद्धिमान हैं, वे बिना शादी किए ही सुखी रह सकते हैं।

उसके गुरु ने, लिंची के गुरु ने कहा कि तू सोच रहा है। अगर तू सोच ही सकता, तो संन्यास कभी का फलित हो गया होता। सोचकर, अगर सच में तू सोच सकता, तो कोई संसार में रह सकता है? और अगर अब तक तू नहीं सोच पाया, तो उसी मन को लेकर तू आगे भी कैसे सोचेगा? तू सोच मत।

लिंची ने अपने गुरु की तरफ देखा और कहा कि मैं संन्यासी हो गया। क्योंकि अब यह भी कहना कि हो जाऊंगा, फिर भविष्य होगा। मैं हो गया। आज्ञा दें संन्यासी को अब, अब उस आदमी को भूल जाएं, जो आया था।

कहते हैं कि उसके गुरु ने अपनी पगड़ी उसके सिर पर रख दी और कहा कि मैं उस आदमी की तलाश में था, जो उस काल-क्षण में छलांग लगा ले, जिसका नाम वर्तमान है, क्योंकि मेरी मृत्यु करीब है। अब मैं विदा लेता हूं। अब मेरा काम तू सम्हाल लेना।

उस लिंची ने कहा कि लेकिन मैं अभी-अभी संन्यासी हुआ, अभी मुझे कुछ भी पता नहीं है! उसके गुरु ने कहा, सब तुझे पता हो जाएगा। जिसे वर्तमान के क्षण में खड़े होने की जरा-सी भी क्षमता है, उसे सब ज्ञान के, रहस्य के द्वार खुल जाते हैं। अब तुझे कुछ कहने की मुझे जरूरत नहीं है।

और गुरु ऐसा बिना उपदेश दिए--ऐसी घटना बहुत कम घटती है--बिना उपदेश दिए गुरु तिरोहित हो गया। और लिंची ने दूसरे दिन सुबह से गुरु के मंच पर बैठकर बोलना शुरू कर दिया। जितने ज्ञानी उसके गुरु के द्वारा पैदा हुए थे, उससे हजारों गुना ज्ञानी लिंची के द्वारा पैदा हुए। लिंची के गुरु का नाम भी पता नहीं है, क्योंकि लिंची पूछ ही नहीं पाया और वह डिसएपियर हो गया। और जब भी कोई लिंची से पूछता था कि तुझे यह ज्ञान कैसे मिला? तो वह कहता था, गुरु ने तो मुझे कोई ज्ञान नहीं दिया, सिर्फ एक धक्का दिया था। लेकिन जिस दिन से मुझे यह राज मिल गया, अभी और यहीं होने का, उस दिन से कोई अज्ञान न रहा। अज्ञान के सब बादल छंट गए।

जीवन में जो वर्तमान के क्षण को पकड़ने की कला आ जाए, तो कृष्ण जिस मृत्यु-क्षण की बात कर रहे हैं, जिस काल-क्षण की, वह घटित हो सकता है।

जिस काल में शरीर त्यागकर गए हुए योगीजन, पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं।

क्योंकि योगीजन भी दो प्रकार के हैं। इसमें कठिनाई होगी वाक्य को सुनकर। क्योंकि दोनों के लिए कृष्ण योगीजन का प्रयोग करते हैं। योगीजन दो प्रकार के हैं; योग भी दो प्रकार का है।

एक तो, जिसे हम परम योग कहें, दि सुप्रीम योग। वह परम योग अभ्यास, क्रिया, साधना, इसमें भरोसा नहीं करता। उस परम योग का ही पुराना नाम सांख्य है। सांख्य, जैसी यह लिंची को घटना घटी, इस तरह की घटना में भरोसा करता है, सडेन एनलाइटेनमेंट। अगर कोई आदमी राजी है अभी और यहीं, वर्तमान के क्षण में खड़े होने को, तो बिना किसी योगाभ्यास के, बिना किसी ध्यान के वह घटना घट जाएगी, जिसमें परम से मिलन हो जाता है। क्योंकि उससे हम कभी छूटे नहीं हैं, इसलिए पाने के लिए कोई भी रास्ता तय करने की जरूरत नहीं है। जिससे हम कभी अलग नहीं हुए, उस तक पहुंचने के लिए किसी भी विधि और विधान की आवश्यकता नहीं है। जिसमें हम खड़े ही हैं, अभी और सदा से, क्या उसे पाने को भी कोई यात्रा करनी पड़ेगी?

लेकिन यह बात समझ में आती नहीं। और समझ में भी आ जाए, तो कोई परिणाम नहीं होता।

कृष्णमूर्ति इस सांख्य की ही चर्चा चालीस-पचास वर्षों से कर रहे हैं। इन पचास वर्षों में एक सुनिश्चित वर्ग उन्हें निरंतर सुनता है, निरंतर पढ़ता है, फिर भी कहीं पहुंचता हुआ मालूम नहीं पड़ता। चालीस-चालीस वर्ष उन्हें सुनने वाले लोग मेरे पास आकर कहते हैं, सब समझ में आता है, फिर कुछ होता क्यों नहीं? सब समझ में आ गया है, फिर कुछ होता क्यों नहीं?

असल में उनको इतना ही समझ में नहीं आया कि अगर कुछ होने की आकांक्षा है, तो सांख्य आपका सूत्र नहीं बन सकता। अगर यह भी आप पूछ रहे हैं कि सब समझ में आ गया, कुछ होता क्यों नहीं है! यह होता क्यों नहीं है, यह तो भविष्य है। यह होता क्यों नहीं है, यह तो वासना है। अगर समझ में आ गया, तो होना बंद करो अब। अब भविष्य को छोड़ दो। अब यह कामना भी छोड़ दो कि कुछ हो। मोक्ष हो, आनंद हो, परमात्मा हो, यह कामना भी सांख्य के मार्ग में बाधा है, परम योग के मार्ग में बाधा है।

लेकिन कभी करोड़, दो करोड़ में कोई एकाध व्यक्ति कभी सदियों में घटित होता है, जो परम सांख्य को सीधा पा लेता है। लेकिन उसका सीधा पाना भी हजारों जन्मों की लंबी भटकन का ही परिणाम होता है। परम सांख्य को भी सीधा पाया नहीं जा सकता। यदि कृष्णमूर्ति जैसा व्यक्ति भी पाता हो, तो वह भी अनंत-अनंत जन्मों की प्रक्रिया का फल है।

लेकिन जब कोई वैसा पा लेता है, तो वह दूसरों से कहता है कि कुछ करने की जरूरत नहीं है। बस हो जाओ, अभी और यहीं। वह दूसरा सुन लेता है, शब्द समझ में भी आ जाते हैं। बार-बार सुनने से और जल्दी समझ में आ जाते हैं। इसलिए कृष्णमूर्ति जैसे लोगों को वे ही लोग रोज पढ़ते रहते हैं, वे ही लोग हर वर्ष सुनते रहते हैं; वे ही शक्लें! क्योंकि बार-बार पुनरुक्ति से उनको यह वहम होने लगता है कि अब सब समझ में आने लगा। क्योंकि सब शब्द समझ में आ जाते हैं। लेकिन फिर भी वे पूछते फिरते हैं कि कुछ हुआ नहीं।

अगर होने की ही वासना है, तो परम योग आपका मार्ग नहीं है, सांख्य आपका मार्ग नहीं है। और होने की वासना सभी में है। मजा तो यह है कि सांख्य में भी लोग इसीलिए उत्सुक होते हैं कि अच्छा, चलो! होना तो चाहते हैं, अगर आप कहते हो कि होने की वासना छोड़ोगे तभी हो पाओगे, तो हम होने की वासना भी छोड़ने को तैयार हैं। लेकिन उस वासना के पीछे भी कुछ होने की कामना सदा ही मौजूद है। इसलिए बहुत जाल है भीतर। इस जाल को तोड़ना हो, तो दूसरी विधि है।

उन दूसरे योगीजन को कृष्ण ने कहा है कि और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं, ऐसे योगी भी हैं। जो योगी योग की साधना किसी भी वासना से कर रहे हों, चाहे वह वासना परमात्मा को पाने की वासना ही क्यों न हो, चाहे वह वासना सब वासनाओं से मुक्त हो जाने की ही वासना क्यों न हो! लेकिन जहां भी किसी तरह की डिजायरिंग, वहीं भविष्य आ गया। जहां किसी तरह की कामना, वहीं भविष्य निर्मित हो गया। और जहां भविष्य है, वहां अतीत से सहारा लेना पड़ेगा, क्योंकि भविष्य के अनजान लोक में आप प्रवेश कैसे करेंगे! अतीत का अनुभव ही आपका आधार बनेगा, अतीत का ज्ञान ही आपका सहारा होगा। अतीत का ज्ञान और भविष्य की कामना–वह क्षण चूक गया, जिस क्षण में मरता है कोई तो फिर वापस नहीं आता।

इसलिए अगर मरते क्षण में इतनी भी कामना मन में रही कि हे प्रभु, अब तो उठा लो, अब पुनर्जन्म न हो, तो पुनर्जन्म होगा, क्योंकि यह भी वासना है।

आज एक बयासी वर्ष के बूढ़े मित्र ने संन्यास लिया है, लेकिन बड़ी संसारी भावना से। वे आकर बोले कि मैं बयासी साल का हो गया, और कम से कम साठ साल से महात्माओं के दरवाजों पर चक्कर काट रहा हूं, लेकिन अब तक कोई लाभ नहीं हुआ। लाभ! मैंने उनसे पूछा,

क्या लाभ चाहते थे? कहे, न मन को शांति मिली, न आनंद मिला, न प्रभु का कोई दर्शन हुआ। और धन-संपत्ति की भी सदा तकलीफ रही। शरीर से भी दुखी रहा। और अब तो थोड़े दिन बचे हैं। कहने लगे कि अब आपकी शरण में आया हूं। और अब तो कुछ ऐसा कर दें कि बस, दुबारा आगमन न हो। और अगर इतना भी न हो पाए, तो इतना ही कर दें कि कम से कम जब तक जिंदा हूं, किसी तरह का दुख न हो।

मैंने पूछा, कितना समय मुझे दे सकते हैं? क्योंकि जब वासना हो, तो समय की पहले पूछ लेना चाहिए। कितना समय, मेरे लिए कितना समय दे सकते हैं? उन्होंने कहा, ज्यादा समय तो मेरे पास है नहीं। बयासी साल का हूं। सालभर में हो जाए, छः महीने में हो जाए!

मैंने कहा, दो-चार दिन में हो जाए, तो क्या खयाल है? चित्त उनका बड़ा प्रफुल्लित हो गया। कहने लगे, फिर तो कहना ही क्या! और मैंने कहा, अगर अभी इसी क्षण हो जाए? तब उन्हें थोड़ा शक हुआ। तब थोड़ा शक हुआ, क्योंकि इसी क्षण का भरोसा तो किसी को भी नहीं है। नहीं, उन्होंने कहा, इतनी जल्दी क्या! दो-चार दिन में भी हो जाए।

इस क्षण का भरोसा तो किसी को नहीं है। और मैं आपसे कहता हूं, हो सकता है तो इस क्षण में; नहीं तो, न चार दिन, न चार वर्ष, न चार जन्म, कुछ भी काफी नहीं है। अगर यही क्षण काफी नहीं है, तो फिर सारा समय का विस्तार भी नाकाफी है।

अब ये मित्र हैं, ये अगर संन्यास भी लेना चाहते हैं, तो बड़ी वासना से प्रेरित होकर। बड़ी गहन वासना है। पर मैं कहता हूं, कोई हर्ज नहीं। वासना से ही सही, कूदो। शायद कूदने में ही खयाल आ जाए, कि कूदे जिस जगह, वह जगह अगर मंदिर भी थी, तो हम सारी गंदगी को साथ लेकर कूद पड़े। शायद उस मंदिर की पवित्रता के कारण इस गंदगी को बाहर फेंक आने की मंशा हो जाए। या शायद छलांग में स्मरण आए कि छलांग भी ली, तो बड़ी अधूरी। एक टांग बंधी हुई है पीछे; वासना के जगत से पूरी की पूरी बंधी है।

इन मित्र को कोई पूछे, वृद्धजन को, कि पक्का किए देते हैं, अगले जन्म में धन की भी कोई तकलीफ न होगी और शरीर का कोई कष्ट न आएगा, फिर क्या इरादा है? तो मेरी अपनी समझ यह है कि ये कहेंगे, तो फिर एक दफा और कोशिश कर ली जाए; रहने दें!

अगर जन्म से भी आप बचना चाहते हैं, तो किसलिए बचना चाहते हैं? इसीलिए कि दुख न हो। तो आप जन्म से नहीं बचना चाहते हैं, सिर्फ दुख से बचना चाहते हैं। और अगर कोई भरोसा दिला दे कि हम बिना दुख का जन्म दे देते हैं, तो आप पहले होंगे कतार में। और भीड़ में बड़ी जल्दी मचाएंगे कि क्यू में मुझे आगे आने दो।

नहीं, मुक्त तो वही होता है, जिसे अगर कोई वायदा करता हो कि जीवन सुख ही सुख की शय्या होगी, फूल ही फूल होंगे जीवन में, फिर भी वह कहता है, होंगे, लेकिन सुख भी नहीं चाहिए। असल में चाह ही नहीं चाहिए। ऐसे काल-क्षण में, जब कोई भी चाह नहीं है, जो शरीर से छूटता है, उसकी यात्रा परमधाम की तरफ हो जाती है।

लेकिन अगर आखिरी क्षण में धर्म की वासना, मोक्ष की वासना, पुनर्जन्म न हो, ऐसी वासना भी बनी रही, तो चाहे कितना ही योग साधा हो, कितने ही आसन किए हों, कितना ही शीर्षासन लगाया हो, कितने ही घंटे सिद्धासन में बैठे हों, चाहे कुछ भी किया हो, कितने ही लाख दफे राम-राम लिखा हो, कोई अंतर नहीं पड़ेगा। फिर वापस लौट आएंगे।

हां, इतना अंतर पड़ेगा कि शायद यह जो शुभ वासना है मोक्ष की, प्रभु-मिलन की, वासना तो वासना ही है, शुभ है। कम से कम धन पाने की नहीं; मोक्ष में ही जाने की है, कम से कम वेश्यागृह में जाने की नहीं है; शुभ है, शुक्ल है वासना, तो शायद अगले जन्म में यह भी संभावना बन जाए कि यह शुक्ल और शुभ वासना को भी छोड़ने की क्षमता आ जाए।

लेकिन ऐसा योगी वापस लौट आएगा। जिसने योग साधा हो किसी वासना से, वह वापस लौट आएगा। क्योंकि वह उस काल-क्षण को उपलब्ध नहीं होता, जहां से वापसी नहीं है।

उन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में अग्नि है, ज्योति है, दिन है तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

दो मार्ग, उत्तरायण और दक्षिणायण, दो मार्गों की चर्चा कृष्ण करेंगे। इस पहले सूत्र में पहले मार्ग की चर्चा है। यह चर्चा अति सूक्ष्म है और इसमें जिन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, उन प्रतीकों के कारण इस सूत्र को गीता के, करीब-करीब नहीं समझा जा सका है। इस सूत्र पर प्रवेश करने के पहले दोत्तीन बातें खयाल में ले लें।

एक तो जितने ही अंतर्जगत की गहन बात हो, उतने ही हमें प्रतीक चुनने पड़ते हैं। बात सीधी नहीं कही जा सकती। बात सीधे कहने का उपाय नहीं है, क्योंकि बात कुछ ऐसी है, और ऐसी मिठास की तरह भीतरी है, और इतनी गहन अनुभव की है कि शब्द में रखते ही हमें

प्रतीक चुनने पड़ते हैं। सीधा कहने का उपाय नहीं है। जैसे आपके भीतर जब पहली बार आनंद घटित होगा और आपसे कोई पूछे कि वह आनंद कैसा था, तो आपको कुछ न कुछ प्रतीक खोजने पड़ेंगे, जो बिलकुल अधूरे होंगे, छूते भी नहीं होंगे सत्य को। लेकिन फिर कोई उपाय नहीं है।

ध्यान में जो लोग गहरे उतरते हैं, यदि उन्हें संभोग का अनुभव है, जो कि बहुत कम लोगों को है। और जब मैं कहता हूं, बहुत कम लोगों को है, तो मेरा अर्थ यह है कि अधिक लोगों को केवल वीर्य-स्खलन का अनुभव है, संभोग का अनुभव नहीं है। लेकिन अगर किसी को कभी संभोग का कोई क्षणभर का भी अनुभव है, तो ध्यान में जब वह पहली दफे जाता है...। तो निरंतर मुझे लोग आकर कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है, आज ध्यान में भीतर गया, तो ऐसा लगा जैसे भीतर कोई गहन-गहन संभोग घटित हो रहा है--आरगाज्म।

अभी एक अंग्रेज युवती मेरे पास ध्यान में प्रयोग कर रही थी। उसे जिस दिन पहली दफा ध्यान की घटना घटी, उसने मुझे आकर कहा, मैं हैरान हूं, क्योंकि मैं जीवनभर से एक ही तलाश में थी कि मुझे कोई तृप्तिदायी संभोग का क्षण मिल जाए...।

उसने न मालूम कितने पति बदले हैं, और न मालूम कितने साथी बदले हैं, और न मालूम कितने पुरुषों के साथ रही है, सिर्फ इस आशा में कि किसी दिन संभोग का ऐसा क्षण मिल जाए। इस आदमी से नहीं मिलता, दूसरे से मिल जाए, तीसरे से मिल जाए।

ध्यान के पहले अनुभव में उसने मुझे आकर कहा कि मैं हैरान हूं। जिसकी खोज मैं संभोग में कर रही थी, वह तो मुझे कभी नहीं मिला। लेकिन ध्यान में मुझे पहली दफे वह मिला है, जिसकी कोई धुंधली-सी आकांक्षा मेरे भीतर थी। मैं गहन संभोग में उतर गई।

स्वभावतः, संभोग और ध्यान के उस अनुभव में कोई ऐसा फासला है--इतना फासला--जैसे आकाश में कोई तारा निकले और उस तारे की छाया आपके घर में भरे हुए गंदे डबरे में बन जाए। उस तारे की छाया में और उस तारे में जितना फासला है, इतना ही फासला है। लेकिन फिर भी छाया तो है ही, रिफ्लेक्शन तो है ही।

तो जब भी कोई अंतर-अनुभव में उतरता है, तो उसे प्रतीक चुनने पड़ते हैं, जो प्रतीक बाहर के जगत से लिए गए हों। उन प्रतीकों के कारण बड़ी कठिनाई होती है। जैसे समस्त योग-शास्त्रों ने, योग-विधियों ने दो तरह के पथ, विशेषकर वैदिक युग ने दो तरह के पथ विभाजित किए हैं, जिनसे मनुष्य की चेतना यात्रा करती है। तो पहले तो हम उन दो पथों का विभाजन समझ लें।

सूर्य जब भूमध्य रेखा के उत्तर में होता है बढ़ता हुआ, तो एक उत्तर का पथ है; और जब सूर्य भूमध्य रेखा से दक्षिण की तरफ नीचे उतरता होता है, तो दूसरा दक्षिण का पथ है।

अगर हम आदमी को भी ठीक पृथ्वी की तरह दो हिस्सों में बांट लें, तो सेक्स सेंटर जो है आदमी का, जो कामवासना का केंद्र है, उसके नीचे का हिस्सा दक्षिण मान लें, और उस केंद्र के ऊपर का हिस्सा उत्तर मान लें, तो मनुष्य के भीतर एक अग्नि है--उसकी मैं बात करूंगा--वही मनुष्य की ऊर्जा है, बायो-एनर्जी, जिसको अब पश्चिम में जीवशास्त्री बायो-एनर्जी कहते हैं, जीव-ऊर्जा कहते हैं, उस जीव-ऊर्जा को भारत ने सदा सूर्य के प्रतीक में समझा है।

क्योंकि समस्त जीव-ऊर्जा सूर्य से ही प्राप्त होती है। अगर फूल खिलता है, पौधे बड़े होते हैं, आदमी के गर्भ का विकास होता है, आदमी बढ़ता है, तो सब सूर्य के कारण। हमारे भीतर जो जीव-ऊर्जा है, वह सूर्य से ही हमें उपलब्ध होती है। इसलिए बहुत उचित है कि उस भीतर की ऊर्जा के लिए भी सूर्य का ही प्रयोग किया जाए, ठीक वैसे ही जैसे तारे के झलकने को हम पानी के डबरे में देखें और दोनों में संबंध जोड़ लें।

आदमी की चेतना में जो भी घटनाएं घटती हैं, वे बहुत गहन रूप से सूर्य से संबंधित हैं। तो मनुष्य को भी हम दो हिस्सों में तोड़ लें; भूमध्य रेखा बना लें, मनुष्य के कामवासना के केंद्र से एक रेखा खींच दें; तो नीचे का हिस्सा दक्षिणपथ होगा, ऊपर का हिस्सा उत्तरपथ होगा।

जब जीव-ऊर्जा दक्षिण की तरफ उतरती रहती है, यानी पैरों की तरफ उतरती रहती है, तब जो मृत्यु घटित होती है, वह एक तरह की मृत्यु है। और जब जीव-ऊर्जा काम-केंद्र से ऊपर की तरफ उठती है और सिर की तरफ प्रवाहित होती है, उत्तरपथ की तरफ, उत्तरायण, तब जो मृत्यु घटित होती है, वह और ही तरह की मृत्यु है। और इन दोनों की यात्राएं अलग हो जाती हैं। जब जीव-ऊर्जा नीचे की तरफ उतरती है, जो कि हमारी समस्त वासनाओं में उतरती है...। इसलिए कामवासना हमारी सबसे केंद्रीय वासना है, क्योंकि सर्वाधिक जीव-ऊर्जा को हमारी कामवासना का केंद्र ही नीचे की तरफ, अधोगमन की तरफ भेजता है।

एक बहुत मजे की बात आपसे कहूं, जब तक आपका चित्त कामवासना से भरा रहता है, तब तक आपके पैर के तलवे सदा गरम रहेंगे। लेकिन जैसे ही आपकी काम ऊर्जा काम-केंद्र से नीचे की तरफ न बहकर, ऊपर की तरफ बहने लगेगी, ऊर्ध्वमुखी होगी, वैसे ही आपके पैर ठंडे होने शुरू हो जाएंगे। और आपका सिर गरम होना शुरू हो जाएगा। बुद्ध जैसे योगी के पैर बिलकुल ही शीतल, आइस कूल, बिलकुल शीतल, बर्फीले शीतल होते हैं।

बहुत पुराने दिनों से गुरु के चरणों में सिर रखने का बहुत महत्वपूर्ण उपयोग था। वह डायग्नोसिस थी, जैसे कि चिकित्सक नाड़ी पर किसी के हाथ रख ले। गुरु के चरणों में सिर रखकर शिष्य पहचान लेता था कि अभी उत्तरायण यह व्यक्ति हुआ या नहीं! और गुरु अपना हाथ उसके सिर पर रखकर पहचान लेता था कि दक्षिणायण कहां तक हो! यह बहुत चुपचाप हो गया निदान था। इसके लिए बातचीत भी नहीं करनी पड़ती थी, यह चुपचाप हो जाता था। और मन ही मन बात समझ ली जाती थी और हिसाब हो जाते थे कि क्या करना है, क्या नहीं करना है।

और एक दफा शिष्य ठीक से पहचान लेता था गुरु के चरणों में सिर रखकर, तो फिर वह पता नहीं लगाता फिरता था कि गुरु का चरित्र कैसा है, कैसा नहीं है। उसका कोई प्रयोजन नहीं था। वह पैरों ने सब उसे कह दिया। और एक दफा गुरु पहचान लेता था सिर पर हाथ रखकर, तो फिर वह नहीं पूछता था कि तुम क्या कर रहे हो, क्या नहीं कर रहे हो; क्योंकि वह जानता था कि तुम क्या कर रहे हो, क्या हो रहा है भीतर।

साइकोएनालिसिस करते वक्त फ्रायड, जुंग और एडलर जो वर्षों में नहीं पहचान पाते, वह भारतीय गुरु सिर्फ सिर पर हाथ रखकर पहचान लेता था। जैसे मरीज नाड़ी से पहचान लिए जाते, वैसे इस उत्तरायण और दक्षिणायण की व्यवस्था को भी बड़ी सरलता से पहचाना जा सकता है, क्योंकि ऊर्जा फौरन खबर देती है कि कहां है। जहां भी ऊर्जा प्रवाहित होती है, वहां उष्ण हो जाता है; और जहां से ऊर्जा हट जाती है, वहां शीतल हो जाता है।

इसीलिए चिकित्सक तो कहेंगे कि यह आदमी बीमार है। अगर पैर ठंडा हो, तो चिकित्सक तो कहेगा कि यह आदमी बीमार है। खतरा तो है ही! खतरा इसलिए है कि इसकी जीव-ऊर्जा अब शरीर के बाहर निकलने के करीब है, यह मर सकता है।

बायोलाजिकली, जीवशास्त्र के हिसाब से पैरों का ठंडा होना स्वास्थ्यप्रद नहीं है। वह स्वास्थ्य में खराबी का सूचक है। ठीक भी है, क्योंकि अगर शरीर को जिलाना है, तो शरीर तभी तक ठीक से जीता है, जब तक शरीर की वासना नीचे की तरफ बहती हो। जैसे ही वासना ऊपर की तरफ बहने लगती है, वैसे ही शरीर का कोई प्रयोजन नहीं रह गया।

लेकिन इससे आप यह मत समझ लेना कि अगर आपके पैर ठंडे हों, तो आपकी ऊर्जा ऊपर बह रही है। पहले तो चिकित्सक से पूछना। सौ में निन्यानबे मौके तो यह होंगे कि आप सिर्फ बीमार हैं। तो जब मैं कहता हूं कि ज्ञानी के पैर ठंडे हो जाते हैं, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जिनके ठंडे हो जाते हैं, वे ज्ञानी हैं। दि वाइस वरसा इज़ नाट राइट; विपरीत ठीक नहीं है।

और सिर्फ इस ऊर्जा को सिर की तरफ प्रवाहित करने के लिए शीर्षासन का इतना गहरा प्रयोग किया गया, और कोई प्रयोग का मूल्य नहीं है। इसलिए जो बहुत कामातुर हैं, अगर वे शीर्षासन करें, तो उन्हें थोड़ा लाभ होगा, क्योंकि उनकी थोड़ी-सी ऊर्जा सिर की तरफ बहनी शुरू हो जाती है। इसलिए कामवासना से पीड़ित व्यक्ति को शीर्षासन लाभ पहुंचा सकता है। लेकिन क्षणिक ही, क्योंकि कितनी देर सिर के बल खड़े रहिएगा! आखिर पैर के बल खड़े होंगे, ऊर्जा फिर बहनी शुरू हो जाएगी।

पहला तो विभाजन यह समझ लें कि काम-केंद्र से नीचे की तरफ बहती ऊर्जा, दक्षिणपथ है आपके भीतर के सूर्य का। और अगर मरते क्षण में भी आपकी ऊर्जा पैरों की तरफ बह रही हो काम-केंद्र से, तो फिर आप पुनर्जन्म से मुक्त नहीं हो सकते। लेकिन अगर ऊर्जा आपकी ऊपर बह रही हो, ऊर्ध्वमुखी हो, तो आप मुक्त हो सकते हैं।

इसलिए उत्तरायण के छः माह, इसका प्रतीक अर्थ आप समझ लेना। उत्तरायण के छः माह अर्थात आपके जीवन का जो आधा हिस्सा है आपकी देह का, उसकी ओर इशारा है। इसका इशारा एक और भी है कि आदमी अगर सत्तर साल जीता है या सौ साल जीता है, अगर सौ साल जीता है, तो पचास साल समय में हम रेखा खींच लें। तो पचास साल तक माना जा सकता है कि उसकी ऊर्जा नीचे की तरफ बहती रहे। लेकिन आने वाले पचास साल में भी अगर नीचे की तरफ बहे, तो वह आदमी आत्मघाती है, वह अपने जीवन को व्यर्थ कर रहा है; उत्तरायण उसके जीवन का शुरू हो जाना चाहिए।

इसलिए हमने जो आश्रम बांटे थे चार, पचास के साथ उत्तरायण शुरू होता था। पचासवें वर्ष में व्यक्ति को वानप्रस्थ हो जाना चाहिए। पच्चीस साल घर में ही रहे, लेकिन ऊर्जा को अब ऊपर ले जाने में संलग्न हो। और जिस दिन पचहत्तर साल की उम्र में वह पाए कि अब ऊर्जा ऊपर जाने में समर्थ हो गई, तब वह घर छोड़ दे और अब समग्र रूप से ऊर्ध्वगामी हो जाए, वह संन्यस्त हो जाए।

अगर आज हम ऐसा समझें कि सत्तर साल उम्र है, तो पैंतीस साल के बाद काम ऊर्जा, जीवन ऊर्जा को उत्तरायण पर जाना चाहिए। अगर पैंतीस साल में आपकी काम ऊर्जा का उत्तरायण शुरू नहीं होता, तो मरते वक्त तक आप उत्तरायण में पहुंच नहीं पाएंगे, दक्षिणायण में ही मृत्यु होगी।

यह दूसरा विभाजन समझ लें। और इसके बाद एक-एक प्रतीक को समझ लें। उन प्रतीकों से भी बड़ी भूल हुई।

उन दो प्रकार के मार्गों में, जिस मार्ग में अग्नि है, ज्योति है, दिन है, तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण का अर्ध वर्ष है, उस मार्ग में मरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को उपलब्ध होते हैं।

अग्नि, ज्योति, दिन और शुक्ल पक्ष चार शब्दों का प्रयोग किया है। न अग्नि से मतलब है, न ज्योति से, न दिन से, न शुक्ल पक्ष से, फिर भी मतलब है, क्योंकि वे प्रतीक आपको क्रमशः कुछ समझाने में सहयोगी होंगे।

अग्नि में ईंधन भी होगा, अग्नि भी होगी, लेकिन उत्ताप भी होगा। ज्योति में ईंधन नहीं–यह प्रतीक है–ईंधन नहीं, धुआं नहीं, उत्ताप भी कम हो जाएगा। अग्नि केआटिक होती है, उसकी लपटें कहीं भी दौड़ती रहती हैं। ज्योति में लपट थिर हो जाएगी और एक बन जाएगी। अग्नि अनेक लपटों वाली होगी, ज्योति एक लपट वाली होगी और एक यात्रा पर संलग्न हो जाएगी।

दिन! दिन और भी उदार हो गया। अब लपट भी नहीं है, केवल प्रकाश है। अगर दिन को ठीक पहचानना हो, तो उस समय को दिन समझें, जब सुबह रात जा चुकी होती है और सूरज नहीं निकला होता है, तब जो आलोक फैला होता है चारों ओर, वही दिन है। फिर तो सूरज आ जाता है, तो सूरज के आने से गहन अग्नि का प्रभाव शुरू हो जाता है, उत्ताप शुरू हो जाता है। सुबह जब भोर के समय में जब रात जा चुकी और दिन, सूर्य वाला दिन अभी नहीं आया, तो बीच में जो एक संध्या का क्षण है, जब सिर्फ प्रकाश होता है, जिस प्रकाश में उत्ताप नहीं होता, वही दिवस है, वही दिन है।

ज्योति में ताप तो होगा ही, दिन में ताप भी खो जाता है। वह भी प्रकाश का ही एक रूप है, लेकिन क्रमशः प्रकाश जो है नान-वायलेंट होता चला जाता है, अहिंसक होता चला जाता है। लेकिन उसमें भी पूरी शीतलता नहीं होती, क्योंकि सूरज कहीं निकट ही छिपा होता है और जल्दी ही आने के करीब होता है। सच तो यह है कि वह होता ही इसलिए है कि सूरज आ चुका होता है क्षितिज के बिलकुल निकट; प्रकट नहीं हुआ होता, लेकिन उसकी मौजूदगी इतने निकट होती है, इसलिए प्रकाश फैल जाता है। तो कहीं थोड़ा-सा ताप तो उसमें छिपा ही होगा। वह ताप भी चला जाए, तो फिर शुक्ल पक्ष, जैसी कि चांद की रात होती है। सूरज बहुत दूर है, गर्मी का कोई सवाल नहीं। अब प्रकाश भी है और परम शीतल भी।

जो व्यक्ति अपनी ऊर्जा को काम-केंद्र से ऊपर की तरफ यात्रा पर ले जाता है, तो पहला अनुभव उसे अग्नि का होता है। जो व्यक्ति अपनी सेक्स एनर्जी को बायो-एनर्जी को ऊपर की तरफ ले जाता है, पहला अनुभव अग्नि का होता है। वह अनुभव, जस्ट लाइक फायर, बहुत उत्ताप का होता है। काम-केंद्र बिलकुल जल उठता है, लपटें भर जाती हैं। लेकिन अगर वह साहस रखे और जल्दी न करे, और इन लपटों से मुक्त न होना चाहे, क्योंकि मुक्त होने का वह एक ही रास्ता जानता है कि इनको बहिर्गमन कर दे, इनको नीचे की यात्रा पर चला जाने दे।

तो पश्चिम में जहां कामवासना के संबंध में कम से कम समझ है और ज्यादा से ज्यादा आकर्षण है, वहां वे समझते हैं कि कामवासना का उपयोग वैसा ही है, जैसे कि कोई आदमी छींक का उपयोग करता है। बस, इससे ज्यादा नहीं। समथिंग लाइक ए रिलीफ। कुछ भीतर बेचैनी है, उसको फेंक देना है बाहर, छुटकारा हो। काम ऊर्जा का कोई विधायक अर्थ भी हो सकता है, काम ऊर्जा रूपांतरित हो सकती है, या काम ऊर्जा परम अनुभव की तरफ ले जा सकती है, इसकी पश्चिम में कोई दृष्टि नहीं है।

पूरब में भी वह बात फैलती चली जाती है। लोग कामवासना को भी ऐसा ही समझते हैं कि जैसे शरीर से और मल फेंक देने हैं, वैसे ही कामवासना भी शरीर की शुद्धि का एक उपाय है। शरीर के हल्के कर लेने का, तनाव को विसर्जित कर देने का; एक रिलीफ, छींक जैसे आ जाए, बस ऐसे।

अगर जल्दी न की और काम-केंद्र पर जब शक्ति ज्यादा इकट्ठी होती है, तो अग्नि बढ़नी शुरू होती है, क्योंकि ऊर्जा जो काम-केंद्र पर इकट्ठी होती है, वह बहुत संक्षिप्त रूप में सूर्य से ही उपलब्ध हुई है। और एक छोटा-सा सूर्य सेक्स सेंटर पर निर्मित हो जाता है, एक बहुत छोटा बिंदु गहन अग्नि का। अगर जल्दी की, तो वह नीचे बिखर जाता है। अगर जल्दी न की, उसे सहने की हिम्मत रखी, और राजी रहे कि जो कुछ भी हो, लेकिन यात्रा ऊपर की ही करनी है और इस ऊर्जा को ऊपर ही ले जाना है, और ऊपर, और ऊपर, तो बहुत शीघ्र वह जो सूर्य की तरह गोल बिंदु था, एक लपट बन जाता है। वह जो अग्नि थी, वह एक लपट बन जाती है, एक ज्योति, जैसे दीए की ज्योति ऊपर की तरफ भागती हो, वैसी ज्योति बन जाती है। इस ज्योति के बनते ही परम आनंद अनुभव होता है, क्योंकि ताप कम हो जाता है। दहकता अंगारा पिघल जाता है और ज्योति बन जाता है।

लेकिन इस ज्योति में भी ताप तो है ही, इस ज्योति में भी हलन-चलन तो है ही, मूवमेंट तो है ही, चंचलता तो है ही। और कोई भी हवा का झोंका, वासना का तीव्र झोंका हो, तो इस ज्योति को भी नीचे ले जा सकता है। अगर और संयम रखा और धैर्य रखा, तो यह ज्योति दिन की तरह हो जाती है। जैसे सुबह सूरज नहीं निकला, रात जा चुकी, तारे छिप गए और आकाश में भी सूरज का कोई पता नहीं, और दिग-दिगंत सिर्फ सुबह के प्रकाश से भर गए हों, बहुत आलोक से। जरा भी उत्ताप नहीं। यह लपट बहुत शीघ्र ही जैसे और ऊपर उठती है, आलोक बन जाती है।

लेकिन अभी फिर भी इसमें लपट का थोड़ा-सा हिस्सा है। ज्योति ही बिखरकर बनती है आलोक, तो ज्योति के कण इसमें मौजूद होते हैं। इसमें थोड़ा उत्ताप अभी भी है। बहुत न्यून, लेकिन अभी भी। हम इतना ही कह सकते हैं कि इसमें उत्ताप नहीं है, निगेटिवली। अभी यह नहीं कह सकते कि यह शीतल हो गया है। अभी रूपांतरण पूरा नहीं हुआ। रूपांतरण तो तब पूरा होता है, जब हम और धैर्य रखते हैं।

और ध्यान रहे, इस तीसरे क्षण में धैर्य की सर्वाधिक जरूरत पड़ती है साधक को। अग्नि को सह लेना उतना कठिन नहीं है। इसलिए कठिन नहीं है कि पीड़ा तो बहुत होती है अग्नि में, लेकिन अग्नि से ऊब पैदा नहीं होती। उसमें बड़ी उत्तेजना है। उत्तेजना के साथ हम जी सकते हैं ज्यादा। लपट के साथ, ज्योति के साथ भी जी लेना बहुत कठिन नहीं है। उसमें भी चंचलता होगी। और चंचलता में मन ज्यादा जी लेता है, क्योंकि बदलाहट बनी रहती है। लेकिन जब दिवस होता है, तीसरी घड़ी आती है और दिन के जैसा प्रकाश रह जाता है, तो बहुत बोर्डम पैदा होती है। इसलिए इस तीसरी अवस्था में अक्सर साधक एकदम उदास हो जाता है, उदासीन हो जाता है, सब तेजस्विता खो जाती है।

अग्नि के क्षण में साधक बहुत तेजस्वी मालूम पड़ता है, अंगार जैसा मालूम पड़ता है। ज्योति के समय वह तेजस्विता कम होती, लेकिन फिर भी उत्तप्ता होती है, ज्योति होती है। लेकिन तीसरे क्षण में ज्योति भी खो जाती है और एक गहन उदासी भी पकड़ ले सकती है। ऊब भी पकड़ती है, क्योंकि कुछ बदलाहट नहीं होती, कहीं कोई कंपन भी नहीं होता, सिर्फ खाली प्रकाश रह जाता है। इस समय धैर्य की बहुत जरूरत है।

धैर्य की जरूरत सदा ही अंतिम क्षणों में ज्यादा होती है, क्योंकि मन उसी वक्त ज्यादा बेचैन करता है। अभी भी वापस लौटा जा सकता है, क्योंकि ताप अभी भी मौजूद है, जो फिर से सेक्स एनर्जी बन सकता है। जब तक ताप है, जब तक हीट है...।

इसलिए हम जानवरों को तो कहते हैं जब वे कामवासना से भरे होते हैं, तो हम कहते हैं, ऑन हीट। आदमी भी जब कामवासना में भरा होता है, तो ऑन हीट, तप्त होता है।

तो जब आप कामवासना से भरते हैं, तो पूरा शरीर तप्त हो जाता है। सारा शरीर ईंधन बन जाता है। पसीना आ जाता है, हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं। श्वास गरम हो जाती है, शरीर से बदबू निकलनी शुरू हो जाती है। सब भीतर आग पर जाता है।

अभी भी, दिन से भी वापस गिरा जा सकता है, क्योंकि ताप अभी भी बिखर गया है, लेकिन मौजूद है; डिफ्यूज्ड है, लेकिन है; अभी फिर से इकट्ठा होकर वापस लौट सकता है। अगर अभी भी धैर्य रखा, शांति रखी और साधना ऊर्ध्वगमन की जारी रखी, तो अंतिम घटना घटती है। वह ऐसा हो जाता है भीतर प्रकाश, जैसा शुक्ल पक्ष में होता है।

लेकिन शुक्ल पक्ष क्यों कहा? पूर्णिमा ही कह देते। पूरे पक्ष को कहने की क्या जरूरत पड़ी?

पड़ी, क्योंकि पहले दिन एकम के चांद जैसी ही घटना घटती है। और जैसे चांद पंद्रह दिनों में पूरा होता है, ऐसे ही पंद्रह स्टेजेज में यह चौथी घटना पूरी होती है। और जिस दिन पूर्णिमा हो जाती है भीतर, पूरे चांद की रात जैसी शीतलता हो जाती है। उस क्षण में अगर मृत्यु हो जाए, तो बुद्धत्व प्राप्त होता है, तो ब्रह्म की उपलब्धि होती है।

बुद्ध के संबंध में कथा है कि उनका जन्म भी पूर्णिमा के दिन हुआ। उनको पहली महासमाधि, पहली संबोधि, पहला बुद्धत्व भी पूर्णिमा के दिन मिला। और उनका महापरिनिर्वाण, उनकी मृत्यु भी पूर्णिमा के दिन हुई। जरूरी नहीं है कि हिस्टारिकली सही हो, ऐतिहासिक रूप से जरूरी नहीं है कि सही हो। हो भी सकता है संयोग से, लेकिन इसका ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। इसका मूल्य तो इस भीतर के शुक्ल पक्ष के लिए है। इस भीतर के शुक्ल पक्ष के लिए है।

इस चौथी अवस्था के ठीक वैसे ही पंद्रह टुकड़े किए जा सकते हैं, जैसे बढ़ते हुए चांद के होते हैं। और जब कोई व्यक्ति पूर्णिमा की स्थिति में गुजरता है, पूर्णिमा की स्थिति में विदा होता है इस पृथ्वी से, तो उसके लौटने का कोई उपाय नहीं होता। और उत्तरायण के छः माह, वे ही उत्तरायण के छः माह हैं।

इसे एक तरफ से और खयाल में ले लें, क्योंकि ये प्रतीक जटिल हैं, और बहुसूची हैं, और बहुअर्थी हैं।

मनुष्य के सात चक्र हैं। अगर हम काम-केंद्र को, सेक्स सेंटर को एक पहला चक्र मान लें, तो बाकी फिर छः चक्र और रह जाते हैं। सेक्स सेंटर को, मैंने कहा, हम भूमध्य रेखा मान लें, तो उसको चक्र गिनने की जरूरत नहीं। फिर छः चक्र रह जाते हैं, वे छः माह हैं। ठीक वैसे ही छः चक्र काम सेंटर के नीचे भी होते हैं, लेकिन उनकी चर्चा ज्ञानियों ने नहीं की, क्योंकि उनका कोई प्रयोजन नहीं है। तो अगर हम इन छः की संख्या को ध्यान में रखें, तो भी उत्तरायण के छः माह हमारे खयाल में आ जाएगा।

यदि ऐसी घटना घटे–और ऐसी घटना घटती है–जब भीतर पूर्णिमा की स्थिति आ जाती है चार अग्नि की यात्राओं को पार करके, ठीक उसी समय छः माह को पार करके सहस्रार पर, छः चक्रों को पार करके सहस्रार पर भी चेतना पहुंच जाती है।

सहस्रार पर हो चेतना और पूर्णिमा जैसा प्रकाश हो, तो ब्रह्म की उपलब्धि होती है। उस क्षण में मर जाने से ज्यादा बड़ा सौभाग्य और कोई भी नहीं है। उस क्षण में जीना भी सौभाग्य है, उस क्षण में मरना भी सौभाग्य है। उस क्षण में कुछ भी घटित हो, तो सौभाग्य है। यह भी जान लें कि वहां से वापसी नहीं है। ब्रह्म से नहीं, ब्रह्म से तो वापसी नहीं है; इस अवस्था से भी वापसी नहीं है।

बुद्ध को ज्ञान तो हुआ मृत्यु के चालीस साल पहले, महावीर को भी कोई बयालीस साल पहले हुआ।

लेकिन जिस दिन ज्ञान हुआ, उसी दिन शुक्ल पक्ष पूरा हो गया, उसी दिन उत्तरायण का सूर्य अपनी पूरी स्थिति पर पहुंच गया। उस दिन से नीचे लौटना बंद हो गया, लेकिन मृत्यु तो चालीस साल बाद घटित हुई।

इसलिए बौद्धों ने अच्छा शब्द चुना है। जिस दिन बुद्ध को बुद्धत्व मिला, मरने के चालीस साल पहले, उसे वे कहते हैं, निर्वाण। उस दिन एक अर्थ में तो मृत्यु हो गई, क्योंकि अब कोई वापसी नहीं है। फिर जिस दिन वस्तुतः मृत्यु हुई, शरीर छूटा, उसे वे कहते हैं, महापरिनिर्वाण। जहां तक भीतर का संबंध है, शरीर उसी दिन छूट गया, जहां तक बाहर का संबंध है, जगत के जानने का, वह चालीस साल बाद छूटा। लेकिन इन चालीस सालों में भीतर समय ने एक क्षण भी गति नहीं की। इन चालीस सालों में बाहर की घड़ी समय बताती रही। दिन आए, रातें आईं। समय बीता, वर्ष बीते, माह बीते। चालीस वर्ष बीते। लेकिन भीतर की घड़ी उस दिन के बाद फिर नहीं चली। भीतर फिर एक क्षण भी नहीं बीता।

बुद्ध से मरने के दिन ही कोई पूछता है–महाकाश्यप पूछता है बुद्ध से–कि आज आप खो जाएंगे मृत्यु में, हम सब का क्या होगा? बुद्ध ने कहा, मुझे खोए काफी समय हो चुका है। मैं तुम्हें जो दिखाई पड़ता था, वह छाया मात्र था। उसमें मेरा होना, न होना, बराबर था। मैं मर चुका हूं उसी दिन। जिस दिन मैंने जाना स्वयं को, उसी दिन मर चुका हूं। महाकाश्यप ने पूछा, फिर आप इतने दिन जीए कैसे? अगर वासना नहीं रही, तृष्णा नहीं रही, और आप कहते हैं, मैं मर चुका हूं, तो इतने दिन आप जीए कैसे? खाते थे, पीते थे, चलते थे। हमने अपनी आंखों देखा है! बुद्ध ने कहा, बाहर; लेकिन भीतर न मैंने खाया, न मैं चला। भीतर मैंने कुछ भी नहीं किया। महाकाश्यप पूछता है, लेकिन बाहर तो किया? बाहर भी क्यों किया अगर सब समाप्त हो गया है? तो बुद्ध कहते हैं, बाहर करने का कारण है। पिछले जन्मों में इस शरीर की जितनी उम्र मैंने लगाई थी, उस उम्र के पूर्व ही भीतर की घटना घट गई, उतनी उम्र पूरी होगी। यह शरीर तो अपनी विधि को पूरा करेगा।

यह करीब-करीब वैसे ही है, जैसे एक आदमी साइकिल चला रहा है और पैडल मारता चला जाता है। जब तक पैडल चलता है, साइकिल चलती है। पैडल रोक देता है, तब भी साइकिल एकदम नहीं रुक जाती। दस, पचास, सौ, दो सौ कदम चलती चली जाती है–मोमेंटम, त्वरा के कारण। इतनी देर तक पैरों से जो पैडल मारा है, तो हर पैडल साइकिल को चलाता ही नहीं, हर पैडल की कुछ शक्ति बच जाती है, इकट्ठी हो जाती है; और जब आप पैडल रोकते हैं, तो वह अर्जित, रिजर्वायर शक्ति, जो कुछ इकट्ठी हो गई है, वह थोड़ी दूर तक चला देती है।

एक बहुत मजे की घटना इस संबंध में आपसे कहूं।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो वे पैंतीस साल पार कर चुके थे। जिन लोगों को पैंतीस साल के बाद, जीवन की मध्य रेखा के बाद ज्ञान होता है, वे काफी देर तक जिंदा रह जाते हैं। क्यों? इसे ऐसा समझें कि आप साइकिल पर पैडल मार रहे हैं। अगर आप चढ़ाव पर पैडल मार रहे हैं, तो आपके पैडल रोकते ही साइकिल दो-चार कदम चल जाए, तो बहुत है, क्योंकि चढ़ाव है। अगर उतार पर पैडल मार रहे हैं, तो आपके पैडल रोक लेने पर भी साइकिल काफी चल सकती है।

इसलिए अक्सर ऐसा हुआ कि जिन लोगों को पैंतीस साल के बाद ज्ञान हुआ, वे तीस-चालीस साल और जी सके–बुद्ध या महावीर। लेकिन जिन लोगों को पैंतीस साल के पहले ज्ञान हो गया, वे ज्यादा नहीं जी सके–शंकर या क्राइस्ट या और इस तरह के लोग। जिनको भी पहले ज्ञान हो जाएगा, तो फिर साइकिल चलानी बड़ी मुश्किल बात है। चढ़ाव पर अति कठिन है। और अगर चलानी हो, तो बहुत उपाय करने पड़ेंगे।

रामकृष्ण को भी ज्ञान पैंतीस के पहले ही हो गया और बड़ी मुश्किल थी उनको। जितने दिन वे जिंदा रहे, वह बहुत मुश्किल काम था। और शायद बहुत कम लोगों ने उस तरह की चेष्टा की है। रामकृष्ण कुछ चीजों में अपना लगाव बनाए रखते थे। लगाव–जानकर, कोशिश करके। भोजन में उनका बहुत लगाव था। कोई सोच भी नहीं सकता था कि उस हैसियत का व्यक्ति, और दो-चार बार चौके में न पहुंच जाता हो और पूछता हो कि क्या बना है! शारदा, उनकी पत्नी उन्हें कहती थी कि परमहंसदेव, तुम्हारा चौके में बीच-बीच में उठकर आकर पूछना बड़ा अशोभन मालूम पड़ता है। लोग क्या सोचते होंगे! सत्संग चलता है, ब्रह्मचर्चा चलती है; अचानक रोककर कि मैं अभी आया, आप चौके में चले आते हैं! जो बैठे हैं, वे क्या नहीं सोचते होंगे?

रामकृष्ण हंसते थे और टाल देते थे, क्योंकि कुछ बातें हैं, जिनके जवाब नहीं दिए जा सकते हैं। नहीं दिए जा सकते हैं इसलिए नहीं कि नहीं दिए जा सकते। नहीं दिए जा सकते इसलिए कि जिसको दिए जाने हैं, वह उनको बिलकुल ही न समझ पाएगा।

लेकिन शारदा पीछे ही पड़ी रही। एक दिन रामकृष्ण ने कहा कि तू नहीं मानती है, तो मैं तुझे कहता हूं। मेरी नाव ने किनारे से सब तरह की रस्सियां खोल ली हैं अपनी, लेकिन एक खूंटी से मैं अपने को बांधे रखना चाहता हूं, उन लोगों के लिए जिनकी मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं उनसे कह दूं, जो मैं कहना चाहता हूं; और फिर मैं अपनी नाव को खोल दूं पूरा, ताकि मैं अपनी यात्रा, मैं अपनी महायात्रा पर निकल जाऊं। तो मैं इस भोजन में इतना लगाव रखता हूं, सिर्फ इसलिए कि एक खूंटी गड़ी रहे शरीर के साथ, अन्यथा यह इसी वक्त गिर सकता है।

तो शारदा से रामकृष्ण ने कहा कि अब मैं तुझे बता देता हूं–तू नहीं मानती, इसलिए तुझे बता देता हूं–जिस दिन मैं भोजन में रस न लूं, समझ लेना कि मेरी मृत्यु निकट है और उसके तीन दिन बाद मैं मर जाऊंगा; ठीक तीन दिन बाद।

शारदा ने उस दिन तो गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन एक दिन वह घड़ी आ गई। रामकृष्ण बिस्तर पर लेटे थे और उस दिन उठकर चौके में नहीं आए थे। शारदा थोड़ी बेचैन भी हुई; क्योंकि कितना ही समझाओ, वे नहीं मानते थे। बीमार भी हों, तो उठकर आते थे। आज नहीं आए पता लगाने कि क्या बना है। शारदा थाली लेकर कमरे में आई, तो रामकृष्ण ने थाली देखकर करवट बदल ली।

शारदा के हाथ से थाली छूट पड़ी। उसे याद आया कि उन्होंने कहा था कि जिस दिन मैं भोजन में अरुचि दिखाऊं, उस दिन समझना कि बस, अब आखिरी दिन करीब है; तीन दिन और बाकी रहे। और ठीक तीन दिन बाद रामकृष्ण की मृत्यु हुई।

तो अगर चढ़ाव पर हो, तो बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन बुद्ध और महावीर दोनों उतार पर थे, इसलिए चालीस-बयालीस साल दोनों जीए, अनुभव के बाद। लेकिन वह पुराना मोमेंटम है, जन्मों-जन्मों के कदमों की ताकत है। और जब भी किसी व्यक्ति को पैंतीस साल के पहले अनुभव हो जाता है, तो बड़ी अड़चन हो जाती है। और जिनके लिए वह रुकता है, वे ही हजार अड़चनें खड़ी करते हैं कि आपने ऐसा क्यों किया, आप ऐसा क्यों करते हैं! वह कहीं किनारे पर अपनी खूंटियां गाड़कर रखना चाहता है, शायद किसी प्रतीक्षा में।

इस क्षण में दक्षिणायण उत्तरायण; और अग्नि बन गई हो पूर्णिमा का प्रकाश, जब इन दोनों का मिलन होता है, उसी क्षण पीछे लौटना असंभव है, वह प्वाइंट आफ नो रिटर्न है। वह जगह आ गई जहां से वापस नहीं हुआ जा सकता, जिसके आगे नहीं जाया जा सकता और आगे ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
दक्षिणायण के जटिल भटकाव— अध्याय—8 (प्रवचन—दसवां)

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।।25।।
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।।26।।
तथा जिस मार्ग में धूम है और रात्रि है, तथा कृष्णपक्ष है और दक्षिणायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गया हुआ योगी, चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल भोगकर पीछे आता है।

क्योंकि जगत के ये दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गए हैं। इनमें एक अर्चिमार्ग के द्वारा गया हुआ पीछे न आने वाली परम गति को प्राप्त होता है। और दूसरा धूममार्ग द्वारा गया हुआ पीछे आता है अर्थात जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति प्रभु की साधना में लीन उत्तरायण के मार्ग से मृत्यु को उपलब्ध होता है, उसकी पुनःवापसी नहीं होती है। इस संबंध में कल हमने बात की।

लेकिन दक्षिणायण के मार्ग पर जी रहा व्यक्ति भी साधना में संलग्न हो सकता है, साधना की कुछ अनुभूतियां और गहराइयां भी उपलब्ध कर सकता है, लेकिन वैसे व्यक्ति की मृत्यु ज्यादा से ज्यादा स्वर्ग तक ले जाने वाली होती है, मोक्ष तक नहीं। और स्वर्ग में उसके कर्मफल के क्षय हो जाने पर वह पुनः वापस पृथ्वी पर लौट आता है। इस संबंध में पहले कुछ प्राथमिक बातें समझ लेनी चाहिए, फिर हम दक्षिणायण की स्थिति को समझें।

एक, जिस व्यक्ति की काम ऊर्जा बहिर्मुखी है, बाहर की तरफ बह रही है, और जिस व्यक्ति की कामवासना नीचे की ओर प्रवाहित है, वैसा व्यक्ति, कामवासना नीचे की ओर बहती रहे, तो भी अनेक प्रकार की साधनाओं में संलग्न हो सकता है, योगी भी बन सकता है।

और अधिकतर जो योग-प्रक्रियाएं दमन, सप्रेशन पर खड़ी हैं, वे काम ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी नहीं करती हैं, केवल काम ऊर्जा के अधोगमन को अवरुद्ध कर देती हैं, रोक देती हैं। तो ऊर्जा काम-केंद्र पर ही इकट्ठी हो जाती है, उसका बहिर्गमन बंद हो जाता है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

काम-केंद्र पर, सेक्स सेंटर पर ऊर्जा इकट्ठी हो, तो तीन संभावनाएं हैं। एक संभावना है कि पुरुष के शरीर की काम ऊर्जा स्त्री के शरीर की ओर, बाहर की तरफ बहे। या स्त्री की काम ऊर्जा पुरुष शरीर की ओर, बाहर की ओर बहे। यह बहिर्गमन है।

फिर दो स्थितियां और हैं। काम ऊर्जा काम-केंद्र पर इकट्ठी हो और ऊर्ध्वगामी हो, ऊपर की तरफ बहे, सहस्रार तक पहुंच जाए। उस संबंध में हमने कल बात की। एक और संभावना है कि काम ऊर्जा ऊपर की ओर भी न बहे, बाहर की ओर भी न बहे, तो स्वयं के शरीर में ही नीचे के केंद्रों की ओर बहे। इस स्वयं के ही शरीर में काम-केंद्र से नीचे की ओर ऊर्जा का जो बहना है, वही दक्षिणायण है।

निश्चित ही, ऐसा पुरुष स्त्री से मुक्त मालूम पड़ेगा। ठीक वैसा ही मुक्त मालूम पड़ेगा जैसा ऊर्ध्वगमन की ओर बहती हुई चेतना मालूम पड़ेगी। लेकिन दोनों में एक बुनियादी फर्क होगा। और वह फर्क यह होगा कि बाहर का गमन तो दोनों का बंद होगा, लेकिन जिसने दमन किया है अपने भीतर, उसकी ऊर्जा नीचे की ओर बहेगी और जिसने अपने भीतर ऊर्ध्वगमन की यात्रा पर प्रयोग किए हैं, उसकी ऊर्जा ऊपर की ओर बहेगी।

काम-केंद्र से नीचे भी ठीक वैसे ही छः सेंटर हैं, जैसे छः सेंटर काम-केंद्र के ऊपर हैं। इन छः पर अगर ऊर्जा बहे, तो भी कुछ अनुभूतियां उपलब्ध हो सकती हैं। हठयोग की अधिक क्रियाएं काम ऊर्जा को बाहर से रोक लेती हैं, लेकिन ऊपर की तरफ प्रवाहित नहीं कर पातीं। शरीर में ही अंतर्प्रवाह शुरू हो जाता है नीचे की ओर, पैरों की तरफ।

ऐसा साधक भी अनेक उपलब्धियों को पा सकता है। लेकिन ऐसे साधक की जो उपलब्धियां हैं, पश्चिम में जिसे ब्लैक मैजिक कहते हैं और पूरब में जिसे मैली विद्या कहते हैं, उस तरह की होंगी। फिर भी इस साधक की एक क्षमता तो तय ही है कि इसने काम ऊर्जा को बाहर जाने से अवरुद्ध किया है। तो जीवन के प्रवाह में बायोलाजिकल जो शृंखला है, जीवन के उस प्रवाह से तो यह आदमी बाहर हो गया। और यह जो बाहर हो जाना है, यही इसका पुण्य है। इस पुण्य के बल पर यह व्यक्ति गहनतम सुखों को पा सकेगा; आनंद को नहीं।

गहनतम सुखों को पाने की अवस्था का नाम ही स्वर्ग है। यह ऐसे सुख पा सकेगा, जो बाहर ऊर्जा बहती हो, वैसे व्यक्ति ने कभी भी नहीं जाने होंगे। लेकिन यह वैसा आनंद कभी न पा सकेगा, जैसा आनंद ऊपर की ओर बहती हुई ऊर्जा के मार्ग में उपलब्ध होता है। लेकिन बाहर बहने वाली ऊर्जा से तो बहुत गहन आनंद इसे उपलब्ध होंगे।

तंत्र ने भी इस आंतरिक प्रवाह में बहुत-से प्रयोग किए हैं। और जो लोग सुखाकांक्षी हैं, जिन्हें आनंद का न कोई स्मरण है, न कोई ख़याल; और जिन्हें मुक्त होने की भी कोई भावना नहीं है, क्योंकि स्वतंत्रता की कामना, परम स्वतंत्रता की कामना अति कठिन बात है। यदि हम चाहते भी हैं ज्यादा से ज्यादा, तो यही चाहते हैं कि दुख मिट जाएं और सुख उपलब्ध हों। धर्म की खोज में जाने वाले लोग भी सौ में निन्यानबे मौकों पर दुख से बचने के लिए सुख की खोज में जाते हैं।

इसलिए बर्ट्रेंड रसेल जैसे लोग कहते हैं कि जिस दिन विज्ञान जमीन पर सुख की सारी व्यवस्था जुटा देगा, उस दिन धर्म का विनाश हो जाएगा।

उनकी बात निन्यानबे मौकों पर सही है। वह रसेल का वक्तव्य निन्यानबे मौकों पर सही है। यह बात सच है, अगर विज्ञान उन सारे सुखों को आपको दे दे, उन सारे दुखों को मिटा दे जो आपको पीड़ित करते हैं, तो मंदिर और मस्जिद और चर्च में इकट्ठे होने वाले सौ लोगों में से निन्यानबे लोग तो तत्काल विदा हो जाएंगे। क्योंकि जिन सुखों के लिए वे मंदिर में आए थे और प्रभु की प्रार्थना के लिए आए थे, वे सुख अब विज्ञान ही उन्हें दे सकता है।

लेकिन एक आदमी फिर भी मंदिर, मस्जिद और गिरजाघरों में बच जाएगा। या हो सकता है, एक आदमी गिरजाघरों और मंदिरों को न बचा सके, तो जहां भी होगा, वहीं मंदिर में होगा, वहीं मस्जिद में होगा। वह एक आदमी सुख की तलाश में नहीं है, वह आनंद की तलाश में है। थोड़ा-सा फर्क खयाल में ले लें, तो आगे की बात समझ में आ जाएगी और प्रतीक भी समझ में आ सकेंगे।

दुख से जो मुक्त होना चाहता है, वह सुख चाहता है। लेकिन दुख और सुख दोनों से जो मुक्त होना चाहता है, वह आनंद चाहता है। आनंद का अर्थ है, मैं सुख-दुख दोनों से मुक्त होना चाहता हूं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो सुख-दुख दोनों से मुक्त होना चाहे। यद्यपि जिस आदमी ने भी जीवन का अनुभव लिया है, वह जानता है कि सुख भी दुख का ही एक रूप है। और सुख भी थोड़ी ही देर में दुखदायी हो जाते हैं। और वह यह भी जानता है कि सुख का भी एक तनाव है, सुख की भी एक विक्षिप्तता है और सुख की भी एक उत्तेजना है और सुख भी उसी तरह थका डालता है जैसे दुख थका डालता है।

दुख ही नहीं उबाता, सुख की भी अपनी बोर्डम है, अपनी ऊब है। और वही सुख, वही सुख रोज मिले, तो उससे भी हम इतने ही ऊब जाते हैं जैसे दुख से ऊब जाते हैं। बल्कि सचाई तो यह है कि हम दुख से इतने जल्दी कभी नहीं ऊबते, जितने जल्दी हम सुख से ऊब जाते हैं। दुख से हम इसलिए नहीं ऊबते कि दुख से हम छूटने की खुद ही चेष्टा में रत रहते हैं। सुख से हम इसलिए ऊब जाते हैं कि सुख से हम छूटना भी नहीं चाहते और सुख भी रोज-रोज दोहरकर बेरस, बेस्वाद और नीरस हो जाता है।

इसलिए एक बहुत अदभुत घटना मनुष्य के इतिहास में दिखाई पड़ती है कि दुखी समाज इतने ऊबे हुए नहीं होते, क्योंकि उनको एक आशा होती है कि आज नहीं कल दुख मिटेगा और सुख मिलेगा। उस आशा के भरोसे वे जी लेते हैं। इसलिए दुखी समाज बहुत संतापग्रस्त नहीं होते। दुखी समाज, दीन-दरिद्र, भिखारी समाज बहुत चिंतित, बहुत परेशान नहीं होते। दुखी समाज में आत्महत्याएं कम होती हैं, लोग कम पागल होते हैं। दुखी समाज में मानसिक बीमारी कम होती है। उसका कारण कि एक आशा, एक भविष्य तो आगे होता ही है। आज दुख है, कल सुख हो सकेगा। लेकिन सुखी समाज में यह आशा भी नष्ट हो जाती है।

आज अमेरिका की पीड़ा यही है कि जिन-जिन सुखों को आदमियों ने सदा चाहा है, आज दुर्भाग्य से वे उसे पाने में सफल हो गए हैं और अब आगे कोई भविष्य दिखाई नहीं पड़ता है। सब सुख मिल गए हैं--अब? अब भविष्य बिलकुल अंधकारपूर्ण है, आशा का दीया बिलकुल बुझ गया। और जब आशा का दीया बुझ जाए, तो सुख इतना दुख देता है, जितना कोई दुख कभी नहीं दे सकता है।

इसलिए आज अमेरिका की नई पीढ़ी के लड़के और लड़कियां दुखों की तलाश में घूम रहे हैं। वे जो कार पर बैठ सकते हैं, पैदल चलना चाहते हैं। वे जो हवाई जहाज में उड़ सकते हैं, वे दीन-दरिद्र वेष में, गंदे, गांव-गांव, सड़कों-सड़कों पर, सारी दुनिया के कोने-कोने में छा गए हैं। आज दुख को वरण करना जैसे स्वाद को बदलना हो गया है। और एक चेंज, एक बदलाहट फिर सुखद मालूम पड़ती है।

सुख भी उबा देता है।

जीवन का अनुभव कहता है कि सुख और दुख जब दोनों से ही छुटकारे की कामना पैदा होती है, तो मनुष्य उत्तरायण की तरफ चलता है। उत्तरायण की तरफ चलने का अर्थ है कि मनुष्य अब मुक्ति चाहता है, कोई अनुभव नहीं, क्योंकि सभी अनुभव बंधन हैं। सभी अनुभव बंधन हैं, चाहे वे दुख के हों और चाहे सुख के, और चाहे अशांति के और चाहे शांति के। सभी अनुभव बंधन हैं, चाहे संसार का और चाहे परमात्मा का। सभी अनुभव बंधन हैं, क्योंकि प्रत्येक अनुभव से अंततः छूटने का मन हो जाएगा।

अगर आपको ईश्वर भी मिल जाए और आप उसके आलिंगन में हों, तो कितनी देर लगेगी जब आपका मन करने लगेगा कि अब छुटकारा कब हो? अब हम हटें कैसे?

रवींद्रनाथ ने एक छोटा-सा गीत लिखा है। लिखा है कि खोजता हूं प्रभु को जन्मों-जन्मों से। कभी उसकी झलक दिखती है। कभी दूर किसी तारे के पास उसकी आकृति दिखती है। कभी उसकी छाया दिखाई पड़ती है। लेकिन जब तक उस जगह पहुंचता हूं जहां उसकी छाया थी, तब तक वह और दूर जा चुका होता। जब तक वहां पहुंचता हूं जहां उसकी झलक दिखी, तब तक वह न मालूम कहां खो चुका होता। ऐसे जन्म-जन्म भटककर, लेकिन एक दिन मेरी यात्रा पूरी हो गई है, और मैं उस द्वार पर पहुंच गया जो प्रभु का धाम है।

मैं उसकी सीढ़ियां चढ़ गया और मैंने उसके द्वार की सांकल अपने हाथ में ले ली, और मैं सांकल बजाने को ही था, तभी मेरे मन में सवाल उठा कि यदि आज प्रभु मिल गया, तो फिर आगे क्या होगा? आगे फिर मैं क्या करूंगा? अब तक तो उसी की खोज में ये जन्म-जन्म मैंने बिताए। मैं व्यस्त था। मैं दौड़ रहा था। मैं कुछ कर रहा था और कुछ पा रहा था। होने की, बिकमिंग की एक लंबी यात्रा थी, उसमें मैं रसलीन था। मंजिल थी आगे, उसे पाने में अहंकार को तृप्ति थी। लेकिन अगर आज प्रभु मिल ही गया, तो कल, फिर कल नहीं होगा! फिर कोई भविष्य नहीं। फिर कोई आशा नहीं। फिर आगे कोई मंजिल नहीं।

तो रवींद्रनाथ ने लिखा है, मैंने वह सांकल आहिस्ता छोड़ दी, कि कहीं कोई आवाज न हो जाए और कहीं द्वार खुल ही न जाए। मैं अपने जूते हाथ में उठा लिया, कि कहीं सीढ़ियों से लौटते वक्त पैरों की ध्वनि न हो जाए और कहीं द्वार खुल ही न जाए। और मैं जो भागा हूं उस घर से, तो मैंने फिर लौटकर नहीं देखा।

अब भी मैं ईश्वर को खोजता हूं। अब भी मैं ईश्वर को खोजता हूं। अब भी मैं गुरुओं से पूछता हूं कि कहां है उसका मार्ग? और भलीभांति हृदय के अंतस्तल में जानता हूं उसका मार्ग। अब भी मैं पूछता हूं कि कहां है उसका घर? और भलीभांति मुझे पहचान है उसके घर की। लेकिन अब मैं उसके घर के रास्ते से बचकर ही उसे खोजता हूं कि कहीं वह मिल न जाए। कहीं वह मिल न जाए!

हम जो चाहते हैं जब वह मिल जाता है, तब जितना दुख उपलब्ध होता है, उतना चाहते क्षण में कभी भी नहीं हुआ था। असल में चाहत कभी दुख नहीं देती, उपलब्धि दुख देती है। जिसे हमने चाहा, अभागे हैं हम, अगर उसे पा लें। भाग्यवान हैं, अगर पाने से बच जाएं। क्योंकि जिसे हम नहीं पा पाते, उसकी आकांक्षा का रस जारी ही रहता है--इंतजार में, प्रतीक्षा में, सपने में, आशा में। फूल मुरझाते नहीं, पौधा सूखता नहीं; वासना हरी ही बनी रहती है। उसमें नए-नए पत्ते निकलते ही चले जाते हैं। लेकिन मिल जाए जिसे हमने चाहा, जो हमने चाहा वह हम पा लें, तब अचानक सब गिर जाता है, सब स्वप्न भंग हो जाते हैं।

अमेरिका में जो आज डिसइलूजनमेंट है, एक भ्रम का टूट जाना, स्वप्नभंग, वह उन सारी उपलब्धियों को पा लेने का परिणाम है, जो आदमी ने हजारों-हजारों साल तक चाही थीं और आज मिल गई हैं। आगे अब कोई भविष्य नहीं है। सुख बड़े गहन दुख में उतार देता है।

सुख भी दुख है, ऐसी जिस दिन प्रतीति होती है, उस दिन आदमी का उत्तरायण, उसके भीतर का सूर्य ऊपर की ओर उठना शुरू होता है। मुक्ति की दिशा! ध्यान रहे, मैं नहीं कह रहा हूं, मुक्ति की आकांक्षा। क्योंकि जब तक आकांक्षा है, तब तक आशा है, तब तक सुख है, तब तक भविष्य है। मुक्ति का आयाम, डायमेंशन आफ फ्रीडम, डिजायर फॉर फ्रीडम नहीं। मुक्ति के आयाम में भीतर का सूर्य उठना शुरू होता है।

लेकिन मुक्ति की आकांक्षा तो बड़ी दुर्लभ है। मुक्त कोई होना नहीं चाहता। जो कहते भी हैं कि हम मुक्त होना चाहते हैं, वे भी मुक्त होना नहीं चाहते।

और इसलिए एक बहुत मजे की घटना घटती है। जिनसे हम मुक्त होना चाहते हैं, जब उनसे मुक्त हो जाते हैं, तो हम पाते हैं कि उनसे मुक्त होकर हमारा जीवन बिलकुल बेस्वाद हो गया, तिक्त हो गया, एकदम रूखा हो गया। एकदम हम पाते हैं कि हम वहां खड़े हो गए, जहां अब करने को फिर पुनः कुछ भी नहीं बचा है।

वोल्तेयर का एक शत्रु मर गया था, तो वोल्तेयर उसकी कब्र पर जाकर रोया। मित्रों ने पूछा कि जिस शत्रु को तुम देखना पसंद नहीं करते थे, और जो रास्ते से आता दिख जाए तो तुम गली में मुड़ जाते थे कि उसकी छाया तुम्हें न छू जाए, जिसका नाम तुमने कभी अपने मुंह से नहीं लिया, उसकी कब्र पर जाकर रोने का प्रयोजन?

वोल्तेयर ने कहा, जब से शत्रु मर गया, तब से मेरे भीतर भी बहुत कुछ मर गया, क्योंकि उससे लड़कर ही मैं जीता था। मेरी ताकत ही दीन-हीन हो गई। मुझे पहली दफा उसके मरने पर पता चला कि उसके बिना मैं नहीं हूं। वह था, लड़ाई थी, तो रस था, मैं था। उसके मरते ही मैं मर गया हूं। मेरा बहुत कुछ तो ढह गया।

हम अपने मित्रों को खोकर इतना कभी नहीं खोते, जितना अपने शत्रुओं को खोकर खो देते हैं। क्योंकि मित्र कभी हमारे जीवन के इतने अनिवार्य अंग नहीं होते। और मित्र जो हैं, वे रिप्लेस किए जा सकते हैं; उन्हें बदलना बहुत कठिन नहीं है। शत्रु बहुत आसानी से रिप्लेस नहीं होते। शत्रु बड़ी स्थायी घटना है। और आदमी शत्रुओं में जीता है। और शत्रुओं के बीच उनसे ही मुक्त होने को, उन्हें ही समाप्त करने को जीता है, और उनको समाप्त करके पाता है कि वह बिलकुल निर्वीर्य हो गया।

जिससे हम मुक्त होना चाहते हैं, अगर हम मुक्त हो जाएं उससे, तो हम शायद पुनः चाहें कि फिर से वह बंधन मिल जाए तो बेहतर है। क्योंकि मुक्त होने का रस उस व्यक्ति से, उस स्थिति से भिन्न नहीं है, जिससे हम मुक्त होना चाहते हैं।

इसलिए मुक्त होने की कामना, फ्रीडम फ्राम समवन, फ्राम समथिंग--फ्रीडम फ्राम--किसी से मुक्त होने की जो वासना है, वह मोक्ष की वासना नहीं है। संसार से मुक्त होने की जो वासना है, वह मोक्ष की वासना नहीं है। मोक्ष का आयाम बिलकुल निर्वासना का आयाम है। वहां किसी से मुक्त नहीं होना है। वहां बस मुक्त होना है। जस्ट फ्रीडम, नाट फ्राम समथिंग।

इसे और एक तरफ से समझ लें।

तीन तरह की मुक्तताएं होती हैं, तीन तरह की फ्रीडम होती हैं। किसी से स्वतंत्रता; किसी के लिए स्वतंत्रता; और बस स्वतंत्रता। किसी से स्वतंत्रता का अर्थ होता है, अतीत से मुक्ति, पीछे से मुक्ति। और किसी के लिए स्वतंत्रता का अर्थ होता है, भविष्य की वासना। दोनों ही स्थितियों में मन मौजूद होता है, और उत्तरायण की पूरी यात्रा नहीं हो सकती है।

लेकिन बस स्वतंत्रता–नाट फ्राम, नाट फॉर–जस्ट। न ही किसी से स्वतंत्र होने की वासना; न ही किसी के लिए स्वतंत्र होने की वासना; बस स्वतंत्र होने का आयाम, बस स्वतंत्र होना।

इसलिए बुद्ध, जब कोई पूछता कि ईश्वर है? चुप रह जाते। जब कोई पूछता, मोक्ष है? हंसते, मौन रह जाते। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि जब भी मोक्ष की बात करो, जब भी ईश्वर की बात करो, तो लोग ईश्वर को पाने के लिए, मोक्ष को पाने के लिए आतुर हो जाते हैं। वासना पुनः निर्मित हो जाती है।

इसलिए बुद्ध को हम समझ भी नहीं सके। हमारे मुल्क में जो सर्वाधिक, मनुष्यों में जो कोहनूर पैदा हुआ, उसे हमने अपने ही हाथों मुल्क के बाहर हटा दिया। हम बुद्ध को नहीं समझ सके, क्योंकि हम यह समझ ही न पाए कि बस स्वतंत्रता भी कोई बात हो सकती है।

हमने पूछा, किसलिए साधना? तो बुद्ध ने कहा, बस साधना काफी है। किसलिए मत पूछो। क्योंकि किसलिए के साथ वासना आ जाती है। हमने पूछा कि तुम्हारे निर्वाण में क्या होगा? क्या मिलेगा हमें? बुद्ध ने कहा, जहां तक मिलता है कुछ, वहां तक संसार है। हमने पूछा कि आनंद होगा वहां? बुद्ध ने कहा, शब्दों की बात ही मत उठाओ। क्योंकि आनंद यदि मैं कहूं, तो तुम जो भी समझोगे, वह सुख से ज्यादा नहीं हो सकता। तुम्हारी समझ केवल सुख की है। आनंद को तुम न समझ पाओगे। और मैं कहूं हां, तो तुम समझोगे कि कोई सुख होगा। अगर मैं कहूं कि दुख नहीं होगा, तो भी तुम समझोगे कि जो दुख तुम्हें है, वे वहां नहीं होंगे। जैसे यहां किसी को नौकरी नहीं मिलने का दुख है, तो वहां नौकरी मिल जाएगी। या यहां किसी की टांग टूट गई है, तो वहां टांग नहीं टूटेगी। या यहां कोई बीमार है, तो वहां बीमार नहीं होगा। तो बुद्ध ने कहा, तुम चुप ही रहो। उस संबंध में पूछो ही मत। और मुझे गलत सवाल के गलत जवाब देने को मजबूर मत करो।

हम नहीं समझ पाए; हमने बुद्ध को बहिष्कृत कर दिया। हमने कहा, यह आदमी महानास्तिक मालूम होता है। ईश्वर की बात नहीं करता, मोक्ष की बात नहीं करता!

हम थे महानास्तिक। हम असल में मोक्ष को भी संसार की भाषा में ही समझ सकते हैं। हमें अगर ईश्वर से भी मिलना हो, तो हम दुकान की ही भाषा में मिलने की तैयारी करते हैं। हमारी सारी खोज सशर्त है, क्या दोगे? क्या पाओगे? क्या मिलेगा? वही हमारी आकांक्षा का केंद्र बना रहता है।

उत्तरायण तो तब शुरू होता है, जब कोई व्यक्ति सुख-दुख दोनों से छूटता है। छूटता है अर्थात दोनों के अनुभव ने उसे बता दिया, व्यर्थ हैं दोनों, निरर्थक हैं दोनों, असार हैं दोनों; और अब दोनों में कोई चुनाव नहीं करना है, दोनों को एक साथ ही छोड़ देना है।

और चुनाव संभव भी नहीं है। जैसे कोई एक ही सिक्के के एक पहलू को बचाना चाहे और दूसरे को छोड़ना चाहे, उसे हम पागल कहेंगे। क्योंकि जब एक सिक्के का एक पहलू बचाया जाता है, तो दूसरा अनिवार्य रूप से बच जाता है। सिक्के का एक पहलू बच नहीं सकता; दो ही बचते हैं, या दोनों ही फेंक देने पड़ते हैं।

जिसने सुख को बचाना चाहा, दुख को हटाना चाहा, वह दुख को भी पीछे बचा लेगा। जिसने दोनों फेंक दिए, वही केवल दुख से मुक्त हो पाएगा। जिसने सुख को फेंकने की भी तैयारी कर ली। इस सुख-दुख को फेंकते ही ऊर्ध्वगमन शुरू होता है।

लेकिन अगर आप दुख को हटाना चाहते हैं, सुख को बचाना चाहते हैं, तो दक्षिणायण का पथ, तो नीचे की यात्रा है। यदि आप सुख को बचाना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं, तो बाहर जाना बंद कर दें, दुख कम से कम हो जाएंगे; क्योंकि दुख सदा किसी के कारण और किसी के द्वारा मिलते हुए मालूम पड़ते हैं।

इसलिए आदमी जब बहुत दुखी होता है, तो शराब पी लेता है, बेहोश हो जाता है। शराब कोई सुख नहीं देती। शराब एक काम करती है, सिर्फ बाहर से संबंध टूट जाता है। आदमी एनक्लोज्ड, अपने में बंद हो जाता है। और जब बाहर से संबंध टूट जाते हैं, तो जिस पत्नी के कारण दुख मिलता था, जिस पति के कारण चिंता होती थी, जिस बेटे के कारण मन में व्यथा आती थी, जिस परिवार के कारण विक्षिप्तता पैदा होती थी, जिस समाज को नष्ट कर डालने का मन होता था या स्वयं मर जाने की वृत्ति पैदा होती थी, वह फिर कुछ भी पैदा नहीं होता।

शराब संबंधों के जगत को तोड़ डालती है। इतना बेहोश कर देती है आपको कि बाहर का आपको स्मरण नहीं रह जाता; अपने में बंद। जब आप होश में आते हैं, तो कहते हैं, बड़ा सुख अनुभव किया। सुख अनुभव नहीं किया, केवल दुख के जगत से थोड़ी देर के लिए विस्मरण में डूब गए; तंद्रा में, निद्रा में, बेहोशी में, मूर्च्छा में खो गए। जब भी हम कहते हैं, हमें सुख मिला, तो आमतौर से यही होता है कि हम उन संबंधों से टूट गए होते हैं, जिनसे हमें दुख मिलता है।

दक्षिणायण का पथ समस्त संबंधों को बिना बेहोश हुए तोड़ने का पथ है। बिना बेहोश हुए तोड़ने का पथ है। बेहोश नहीं होना है, लेकिन समस्त वासना को काम-केंद्र पर इकट्ठा करके काम-केंद्र का द्वार बंद कर लेना है। दमन का जो ब्रह्मचर्य है, वह यही है। काम-केंद्र को अवरुद्ध कर लेना है। ऊर्जा इकट्ठी होगी और मुक्ति की कोई दिशा नहीं है, तो ऊर्जा गति करेगी।

ऊर्जा का नियम है कि ऊर्जा गत्यात्मक है, डायनैमिक है। ऊर्जा स्टैटिक नहीं है। ऊर्जा थिर नहीं रह सकती; ऊर्जा दौड़ती है। अगर आपने नदी का एक द्वार बंद कर दिया, तो नदी दूसरे द्वार से दौड़ना शुरू कर देगी। अगर आपने दूसरा द्वार भी बंद कर दिया, नदी तीसरा द्वार खोज लेगी और तीसरे मार्ग से दौड़ना शुरू कर देगी।

तीन पथ हैं। एक, मनुष्य की ऊर्जा का बहिर्गमन, जो कि प्राकृतिक, नेचरल मार्ग है; जिससे सब पशु-पक्षी, पौधे जीते हैं और जिससे अधिक मनुष्य भी जीते हैं। वह प्राकृतिक है।

दूसरा मार्ग है, ऊर्ध्वगमन का। वह अति प्राकृतिक है, वह प्रकृति के पार जाने का है, वह परमात्मा तक जाने का है।

एक तीसरा मार्ग भी है, नीचे की ओर जाने का। वह भी अति प्राकृतिक है, वह भी प्रकृति के पार है। लेकिन ऊपर जाने वाला मार्ग है बियांड नेचर; नीचे जाने वाला मार्ग है बिलो नेचर। एक ऊपर की तरफ जाने वाली अति है, दूसरी नीचे की तरफ जाने वाली अति है।

इस नीचे जाने वाली अति का कृष्ण ने जो ब्यौरा दिया है वह ऐसा है, तथा जिस मार्ग में धुआं है...।

अग्नि की जगह धुआं। पहले मार्ग में अग्नि थी, इस मार्ग में अग्नि की जगह धुआं है।

जिस मार्ग में धुआं है, रात्रि है, कृष्ण पक्ष है और दक्षिणायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गया हुआ योगी चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोगकर पीछे वापस लौट आता है।

इन प्रतीकों को समझें।

उत्तरायण के मार्ग पर अग्नि पहला प्रतीक थी। ऊपर की तरफ अग्नि बढ़ती, तो ज्योति बन जाती। ज्योति और ऊपर बढ़ती, तो दिन बन जाती। दिन और ऊपर बढ़ता, तो शुक्ल पक्ष बन जाता। और पूर्णिमा पर अंत होता। नीचे के मार्ग पर–अग्नि अब बीच में है। ऊपर की तरफ जाती, तो ज्योति बनती; नीचे की तरफ जाती है, तो धुआं बन जाती है। क्योंकि जितना ही हम नीचे उतरते हैं वासना में, उतना ही गीला ईंधन अग्नि को उपलब्ध होता है। वासना गीला ईंधन है।

फकीर हसन ने कहा है, एक सूखी लकड़ी को जलाओ, तो धुआं नहीं पैदा होता या कम पैदा होता है। गीली लकड़ी को जलाओ, तो धुआं ज्यादा पैदा होता है और बहुत पैदा होता है। जितनी गीली हो उतना ही धुआं पैदा होता है। बहुत गीली हो, तो लपट तो निकलती ही नहीं, धुआं ही धुआं पैदा होता है।

गीली और सूखी लकड़ी में फर्क क्या है? गीली लकड़ी अभी भी जीवन के प्रति आतुर है, रस से भरी है। अभी भी जीवन का जल-स्रोत उसमें बहता है। अभी भी जीव-ऊर्जा उसमें प्रवाहित है। सूखी लकड़ी मृतवत है, मुर्दा है। जीवन का सब रस-स्रोत सूख गया है। अब कोई धारा रस की उसमें नहीं बहती, इसलिए सूखी है।

जितना वासना भरा मन हो, उतना गीला है, उतनी लकड़ी गीली है अभी। अभी बहुत रस बहता है।

तो जिसने अपनी कामवासना को रोक लिया बाहर जाने से, वासना तो रुक जाएगी, रस नहीं रुकता है। ऊर्जा रुक जाएगी, एनर्जी रुक जाएगी, लेकिन वह जो वृत्ति का रस था भीतर, वह नहीं रुकता है। वह रस अभी भी भीतर बहा जा रहा है। वह रस गीलापन है।

इसलिए प्रतीक कृष्ण ने चुना है, धूम का, धुएं का। अब नीचे की तरफ बढ़ने पर जो पहली घटना घटती है, वह गहन धुएं का अनुभव है।

अगर कभी आपने जबरदस्ती किसी वासना को रोका हो, तो आपको सफोकेशन, बड़ी भीतर रुकावट और भीतर सब धुआं-धुआं हो गया, ऐसी प्रतीति भी हो सकती है। ज्योति की जो प्रकटता है, स्पष्टता है–निर्धूम ज्योति की–वह कभी दबी हुई, दबाई गई वासनाओं में अनुभव नहीं होती।

इसलिए दबे हुए व्यक्ति बहुत धुआं-धुआं हो जाते हैं। उनके भीतर सब धुंधियारा हो जाता है। और सब तरफ से उनके भीतर स्पष्टता खो जाती है, क्लैरिटी खो जाती है। जिस व्यक्ति ने भी वासना को रोका तीव्रता से, उसके भीतर जो स्पष्टता होनी चाहिए चित्त की, वह खो जाती है। और दर्पण पर जैसे धुआं जम जाए, ऐसा उसके चित्त पर भी धुआं जम जाता है। फिर उसमें कुछ ठीक-ठीक प्रतिफलित नहीं होता। फिर साफ-साफ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। फिर वह अंधेरे में अंधे जैसा टटोलने लगता है।

सभी वासनाएं अंधी हैं और सभी वासनाएं अंधेरे में टटोलती हैं। और अगर एक बार किसी ने ऊर्जा को रोक लिया, तो बहुत गहन धुआं भीतर पैदा होता है। यह धुआं अगर बढ़ता ही चला जाए नीचे की ओर, तो शीघ्र ही रात्रि में परिवर्तित हो जाता है। गहन हो गया धुआं, सघन हो गया धुआं, रात्रि का अंधकार बन जाता है।

जैसे दिवस बन जाती है ज्योति, ऐसे ही धुआं बन जाता है रात्रि। अग्नि है बीच में, ऊपर बढ़ें तो ज्योति, नीचे बढ़ें तो धुआं। और ऊपर बढ़ें तो दिन, और नीचे आएं तो रात्रि। धुएं का अर्थ है, चित्त की स्वच्छता का खो जाना।

इसलिए आपने देखा होगा अनेक हठयोगियों को, कि वे बड़ी साधना में रत होते हैं, लेकिन बुद्धिमान नहीं मालूम होते, ईडियाटिक मालूम होते हैं।

एक व्यक्ति को अभी मुझे किसी ने मिलाया था। वे दस वर्ष से खड़े हुए हैं। बैठे नहीं, सोए नहीं। सोते भी हैं, तो खड़े हुए ही सहारा लेकर। लेकिन पैर उन्होंने दस वर्ष से नहीं मोड़े। पैर करीब-करीब जम गए हैं, मोटे हो गए हैं, जैसे हाथी-पैर की बीमारी में पैर हो जाएं, वैसे हो गए हैं। अब शायद मुड़ भी नहीं सकते। दस वर्षों में सब जाम हो गया होगा। मसल्स ठहर गए होंगे, खून भर गया होगा, हड्डियां सख्त हो गई होंगी, मोड़ों ने मुड़ना छोड़ दिया होगा। दस वर्ष से वे यह कर रहे हैं। दस वर्ष से!

निश्चित ही, बड़े संकल्प की जरूरत है। बड़े संकल्प की जरूरत है! दस घंटे भी खड़ा रहना मुश्किल पड़ेगा। संकल्प है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन अगर उन व्यक्ति की आंखों में देखें, तो परम मूढ़ता दिखाई पड़ती है, ईडियाटिक; इम्बेसाइल। आंख में कहीं भी कोई बुद्धिमत्ता की किरण दिखाई नहीं पड़ती। संकल्प महान है।

काश, इतना ही संकल्प ऊर्ध्वगमन में होता, तो शायद वह सहस्रार को छेद कर जाता। लेकिन यह संकल्प ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन नहीं बन पा रहा है, यह संकल्प भी किसी सुख को पाने का संकल्प है। यह संकल्प भी सुख प्रेरित है। तो सब तरह से अपने को रोक लिया है।

अब जो आदमी दस वर्षों से सीधा खड़ा है, उसकी कामवासना बिलकुल थिर हो जाएगी। क्योंकि सारी मसल्स, जो कामवासना के काम में आती हैं, वे सब जड़ हो जाएंगी, उनकी फ्लेक्सिबिलिटी खो जाएगी। उसकी जननेंद्रिय का पूरा का पूरा यंत्र जो है, विकृत हो जाएगा, अवरुद्ध हो जाएगा और ऊर्जा इकट्ठी हो जाएगी। लेकिन वह ऊर्जा नीचे की तरफ बहेगी।

अब इस व्यक्ति के पैरों में खून ही ज्यादा है, ऐसा नहीं, इस व्यक्ति के पैरों में बायो-एनर्जी भी ज्यादा है। समस्त कामवासना, समस्त वासना इसके पैरों में प्रविष्ट हो गई है। इसका सारा जीवन ही पैरों में चला गया है। अगर ठीक से समझें, तो इसका सिर अब खोपड़ी में नहीं है, इसका सिर अब पैरों के तलुओं में है। इसकी आंखों में से तेजस्विता चली जाएगी। धुंधियारी हो गईं आंखें, उन पर धुएं की जाली आपको स्पष्ट दिखाई पड़ सकती है। आंखों के भीतर कोई ज्योति नहीं दिखाई पड़ती, कुछ जलता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। आंखों के भीतर कोई प्रकाशित चित्त और चेतना है, यह भी दिखाई नहीं पड़ता। आंखों के भीतर गहन अंधकार हो गया है। जड़ हो गई हैं, जिसको हम कहते हैं पथरीली आंखें, वैसी हो गई हैं। चेहरे पर किसी तरह की बुद्धिमत्ता की कोई झलक नहीं है। चेहरा आदमी का कम और पशु का ज्यादा मालूम पड़ता है। पड़ेगा ही! पड़ेगा ही, क्योंकि जो भी किया है, उस करने में और मनुष्यता की ऊंचाइयों को छूने का उपाय नहीं हुआ है, बल्कि प्रकृति से भी नीचे, बिलो नेचर, प्रकृति से नीचे गिर जाने की व्यवस्था हुई है।

लेकिन एक बात पक्की है, इस आदमी को दुख मिलने बंद हो गए हैं। यह आदमी अब दुखी नहीं है। यह आप ध्यान रखना, यह आदमी दुखी बिलकुल नहीं है। और जितने इसके दुख गिर गए हैं, उसी मात्रा में इसे हम सुखी भी कह सकते हैं। और जो काम ऊर्जा बाहर जाकर क्षणिक सुख लाती थी, वही काम ऊर्जा, इसके नीचे के हिस्से के शरीर में वर्तुल बनाकर भी इसे सुख दे रही है। वह बहुत भीतरी सुख है।

इसलिए अब यह आदमी अपने पैरों को मोड़कर कभी बैठेगा भी नहीं। क्योंकि अब इसे जो एक बहुत ही अंधकारपूर्ण सुख मिलना शुरू हुआ है, एक बहुत तामसिक सुख मिलना शुरू हुआ है, उसे छोड़ना कठिन है।

एक व्यक्ति को मैंने देखा है, जो वर्षों से कांटों पर लेटे रहते हैं। उनकी आंखों की भी यही हालत है, धुआं-धुआं। शरीर को उन्होंने सख्त पत्थर जैसा कर लिया है। लेकिन शरीर को पत्थर जैसा करते साथ ही मन भी पत्थर जैसा हो जाता है। असल में शरीर और मन की लोच, सेंसिटिविटी साथ-साथ चलती है। जितना शरीर लोचपूर्ण होता है, उतना ही मन लोचपूर्ण होता है।

मन से मुक्त होना है जरूर, लेकिन मन को पत्थर जैसा करके जो मुक्त होने की कोशिश करेगा, वह मुक्त नहीं हो रहा है, केवल जड़ हुआ जा रहा है। मन से मुक्त होने का अर्थ जड़ता को पा लेना नहीं है। लेकिन जड़ता भी अगर कोई पा ले, तो एक अर्थ में मन से मुक्त हो जाता है, क्योंकि मन की चंचलता मिट जाती है, नष्ट हो जाती है।

तो उनके मन में कोई चंचलता नहीं है अब। अगर उनसे आप पूछें कि आपको कोई स्वप्न आते हैं? तो वे कहते हैं, कोई स्वप्न मुझे वर्षों से नहीं आए! वे कांटे पर लेटे रहते हैं, उन्हें कोई स्वप्न नहीं आएंगे। क्योंकि स्वप्न आने के लिए मन में सक्रियता चाहिए; वह सक्रियता खो गई है। उनसे पूछिए, कोई विचार चलते हैं? वे कहते हैं, कोई विचार भी नहीं चलते। लेकिन वे निर्विचार स्थिति में नहीं हैं; अविचार की स्थिति में हैं।

यह फर्क समझ लेना चाहिए।

निर्विचार स्थिति में वह व्यक्ति है, जो चाहे तो विचार कर सकता है, लेकिन विचार नहीं करता। और अविचार की स्थिति में वह व्यक्ति है, जो चाहे भी तो विचार नहीं कर सकता है। नपुंसकता और ब्रह्मचर्य में जो फर्क है, वैसा ही फर्क निर्विचार और अविचार में है।

नपुंसक भी एक अर्थ में ब्रह्मचारी है। लेकिन वह ब्रह्मचारी इसलिए नहीं है, कि ब्रह्मचारी न होना चाहे, तो स्वतंत्र नहीं है। ऊर्जा ही नहीं है, पुंसत्व ही नहीं है। वह चाहे तो भी ब्रह्मचर्य को नहीं तोड़ सकता। और जो ब्रह्मचर्य चाहकर तोड़ा न जा सके, उस ब्रह्मचर्य का क्या मूल्य हो सकता है! ब्रह्मचर्य तो वही है--जीवंत, पोटेंशियल, शक्तिवान--जो चाहा जाए, तो तोड़ा जा सके। लेकिन नहीं चाहते, नहीं तोड़ते, यह अलग बात है, यह भिन्न बात है। ऊर्जा भीतर है, उसके प्रवाह की मालकियत हमारे हाथ है। लेकिन ऊर्जा ही भीतर नहीं है! जो धन आपके पास नहीं है, उसको अगर आप खर्च नहीं करते, तो आप किस स्थिति में धनी हैं!

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन मरा, तो उसने अपनी वसीयत लिखी। और वसीयत में उसने लिखा कि मेरी समस्त संपत्ति का आधा हिस्सा मेरी पत्नी को मिले, शेष आधे में लड़कों को, लड़कियों को सबको बांटा जाए। और सब बांट देने के बाद, जब वह सब बांट चुका, तो उसके वकील ने पूछा, लेकिन आप परसेंटेज तो लिखा रहे हैं कि पचास प्रतिशत इसको, दस प्रतिशत इसको, संपत्ति कितनी है? मुल्ला ने कहा, संपत्ति तो बिलकुल नहीं है। लेकिन नियमानुसार वसीयत लिखनी चाहिए, इसलिए वसीयत लिखता हूं। और मुल्ला ने कहा, आपने बीच में टोक दिया, अभी मुझे कुछ और लिखवाना है! पर उस वकील ने कहा कि सौ परसेंट तो पूरा हो गया! जो नहीं है, उसका सौ प्रतिशत बंट चुका! मुल्ला ने कहा, नीचे इतना और लिखो कि जो शेष बचा हो, वह मस्जिद को दे दिया जाए। जो नहीं था, वह सौ प्रतिशत बांटा जा चुका। अब भी अगर कुछ शेष बचा हो, तो वह मैं मस्जिद को दान करता हूं!

इस तरह की मनोदशाएं भी हैं। जब जो हम नहीं कर सकते हैं, हम सोचते हैं, हमने उसका त्याग कर दिया है। इस कांटों पर लेटे हुए साधक को देखकर मैंने उनसे पूछा था कि विचार उठते हैं? उन्होंने कहा, विचार! नहीं।

लेकिन वह निर्विचार अवस्था नहीं है, क्योंकि निर्विचार के साथ तो आंखें ऐसी स्वच्छ हो जाती हैं, जैसी कोई झील कभी नहीं होती। निर्विचार के साथ तो आंखें इतनी गहरी हो जाती हैं, अतल, जैसे किसी खाई में हम गिरते चले जाएं और कोई तल ही न मिले।

लेकिन नहीं, उनकी आंख तो बिलकुल ऐसी दिखाई पड़ती है, जैसे ऊपर की पर्त भर ही हो, भीतर कुछ भी न हो। सब संवेदनशील तंतु सिकुड़कर सख्त हो गए हैं। लेकिन फिर भी यह आदमी संकल्पवान है। और जो आदमी वर्षों से कांटों पर लेटा हुआ है, उसकी काम ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है।

असल में कोई भी संकल्पवान व्यक्ति अगर संकल्प ही कर ले, किसी भी भांति का संकल्प कर ले, तो सबसे पहला परिणाम यह होता है कि उसकी काम ऊर्जा बहनी बंद हो जाती है। क्योंकि जो व्यक्ति वर्षों खड़ा रह सकता है, जो व्यक्ति वर्षों कांटों पर लेटा रह सकता है, जो वर्षों नग्न बर्फ पर बैठा रह सकता है, ऐसे व्यक्ति को कामवासना हिला नहीं सकती। कामवासना इकट्ठी हो जाएगी, लेकिन नष्ट नहीं हो जाएगी, तिरोहित नहीं हो जाएगी। इकट्ठी होकर नीचे की तरफ भीतर ही प्रवाह शुरू हो जाएगा।

इस भीतर के प्रवाह पर पहला अनुभव धुएं का होगा। धुएं का अर्थ है, भीतर एक क्लैरिटी का, स्वच्छता का खो जाना। दूसरा अनुभव अंधकार का होगा। भीतर गहन, निबिड़ रात्रि का छा जाना, जहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। कोई परवस्तु दिखाई नहीं पड़ती। स्वयं का थोड़ा-सा बोध शेष रह जाता है।

जैसे आप गहरे से गहरे अंधेरे में भी हों, तो कुछ और दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन इतना तो पता चलता ही रहता है कि मैं हूं। अंधेरी से अंधेरी रात में, अमावस में भी इतना तो पता चलता ही रहता है कि मैं हूं। सब दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। घर नहीं दिखाई पड़ता, मित्र-प्रियजन नहीं दिखाई पड़ते, वस्तुएं नहीं दिखाई पड़तीं, पर मैं हूं इतना स्मरण बना रहता है। रात्रि जितनी गहन हो जाएगी, उतना ही पर का बोध खोता चला जाएगा।

अब यह बहुत मजे का, यह समानांतर विचार ठीक से समझ लें। जितने आप ऊपर बढ़ेंगे, उतना स्व का बोध कम होता चला जाएगा। और जितने आप नीचे उतरेंगे, उतना पर का बोध कम होता चला जाएगा। जितना उत्तरायण के मार्ग पर आगे जाएंगे, स्व का बोध विसर्जित होता चला जाएगा।

अग्नि जब तक है, तब तक स्व का सघन बोध होगा, जलन से भरा हुआ बोध होगा। दि ईगो विल बी फेल्ट टू मच। बहुत गहन अनुभव होगा अहंकार का। लेकिन जैसे ही अग्नि ज्योति बनेगी, वैसे ही अहंकार विरल हो जाएगा। और जैसे ही ज्योति दिन बनेगी, वैसे ही अहंकार बिलकुल बिखरा-बिखरा हो जाएगा। और जब दिन भी शीतल शुक्ल पक्ष बनने लगेगा, तो उधर चांद बड़ा होने लगेगा और इधर अहंकार क्रमशः क्षीण होने लगेगा। जिस दिन पूर्णिमा का चांद होगा, उस दिन अहंकार शून्य हो जाएगा।

लेकिन नीचे की यात्रा पर, दक्षिणायण के पथ पर अहंकार महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ेगा; महत्वपूर्ण मालूम पड़ेगा, पर का बोध कम होता चला जाएगा। जितना अंधेरा बढ़ेगा, धुआं आएगा बीच में, तो दूसरे धुंधले दिखाई पड़ने लगेंगे। पत्नी धुंधली हो जाएगी, पुत्र धुंधले हो जाएंगे, धन-संपत्ति धुंधली हो जाएगी। छूट नहीं जाएगी, धुंधली हो जाएगी। बीच में धुएं की एक पर्त आ जाएगी। और आदमी अपने भीतर सिकुड़ने लगेगा। और जितना भीतर सिकुड़ेगा, उतना ही अहंकार सख्त और ठोस और क्रिस्टलाइज्ड होने लगेगा।

रात्रि जब गहन हो जाएगी, अंधकार काफी हो जाएगा, धुआं सघन हो जाएगा, तो दूसरे दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे। उनसे सिर्फ टकराहट होगी, दिखाई नहीं पड़ेंगे। कभी-कभी टकराहट होगी, तो मालूम पड़ेगा, दूसरा है। लेकिन दूसरे का बोध क्रमशः कम होने लगेगा, जड़ता घनी होने लगेगी। आदमी चारों तरफ एक परकोटे से घिर जाएगा अंधकार के। लेकिन अभी भी दूसरे की टकराहट का पता चलेगा।

और फिर आता है कृष्ण पक्ष, अंधेरी रातों का बढ़ता हुआ क्रम, अमावस की तरफ यात्रा। फिर रोज-रोज रात भी और अंधेरी होने लगती है। और चांद की रोशनी रोज-रोज कम, और चांद रोज-रोज घटने लगता है। अंधेरी रात रोज-रोज बढ़ने लगेगी।

जिस मात्रा में, जैसा मैंने कहा, शुक्ल पक्ष के पंद्रह क्रम होंगे, वैसे ही कृष्ण पक्ष के भी पंद्रह खंड होंगे और रोज-रोज अंधकार गहन होगा। जिस मात्रा में अंधकार गहन होगा, उसी मात्रा में पर, संसार भूलने लगेगा। मिटने नहीं लगेगा, भूलने लगेगा। और इसी से भ्रम पैदा होता है कि जो अब भूलने लगा, वह शायद मिट गया।

इसलिए शुक्ल पक्ष के यात्री की तरह से कृष्ण पक्ष का यात्री सोच सकता है कि मैं भी उसी मार्ग पर चल रहा हूं। वह अर्थ ले सकता है कि अब मुझे संसार नहीं दिखाई पड़ता, तो मैं मुक्त हो गया हूं!

लेकिन जब तक अहंकार भीतर है, संसार से कोई मुक्त नहीं होता। कितने ही दूर हो जाए, कितने ही दूर और कितने ही गहन अपने अंधेरे में खो जाए, संसार से उसके संबंध विसर्जित नहीं होते और वह कभी भी वापस लौट आता है। जब तक अहंकार शेष है, जब तक वापसी शेष है। तब तक आदमी वापस लौट आएगा।

एक-एक दिन, जैसे कृष्ण पक्ष बढ़ता है, अमावस करीब आती है, वैसे-वैसे जगत खोता चला जाता है। और अमावस के दिन, अमावस की रात, जैसे पूर्णिमा की रात्रि अहंकार शून्य हो जाता है और परमात्मा पूर्ण हो जाता है, ठीक वैसे ही अमावस की रात्रि अहंकार पूर्ण हो जाता है और पर बिलकुल शून्य हो जाता है। और पर के साथ परमात्मा भी शून्य हो जाता है, लेकिन अहंकार पूर्ण हो जाता है।

मजे की बात है–और शब्द इसीलिए धोखा दे सकते हैं– पूर्णिमा की रात को उपलब्ध हुआ व्यक्ति भी कह सकता है, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। लेकिन उसका अर्थ होता है कि मैं अब नहीं हूं, ब्रह्म ही है। अमावस की स्थिति में पहुंचा हुआ व्यक्ति भी कह सकता है, अहं ब्रह्मास्मि। लेकिन उसका मतलब बिलकुल भिन्न होता है। वह भी कहता है, मैं ब्रह्म हूं। लेकिन उसका मतलब यह होता है, अब और कोई ब्रह्म नहीं, मैं ही ब्रह्म हूं!

पूर्णिमा की रात्रि को पहुंचा हुआ व्यक्ति कहता है, अहं ब्रह्मास्मि! क्योंकि वह कहता है, जो कुछ भी है, सभी ब्रह्म है। मैं भी ब्रह्म हूं, क्योंकि सभी कुछ ब्रह्म है। उसके इस अहं ब्रह्मास्मि में, उसके इस अहं में, उसके इस मैं में, मैं बिलकुल नहीं है और सब समा गया है। कहें, उसका यह अहं पूर्णरूपेण अहं-शून्य है, ईगोलेस ईगो। शब्द भर मैं है, लेकिन उसमें मैं-पन जरा भी नहीं है। क्योंकि वह पूरे ब्रह्म के साथ अपने को एक अनुभव करता है।

जैसे बूंद सागर में गिर जाए और कहे कि मैं सागर हूं। लेकिन गिरते ही बूंद तो खो जाती है। और अब मैं सागर हूं, इसका मतलब ही यह होता है कि अब सागर ही है, और मैं नहीं हूं। एक ही अर्थ होता है।

अमावस की रात को पहुंचा हुआ व्यक्ति भी यही कह सकता है, अहं ब्रह्मास्मि! जैसे बूंद सागर को बिलकुल भूल जाए और सागर का उसे पता ही न रहे और तब अकड़कर बूंद कह सके कि मैं ही सागर हूं, क्योंकि मुझसे बड़ा और कौन है! तब मैं ही सब कुछ रह जाता है और सब पर आरोपित हो जाता है।

अहं ब्रह्मास्मि की दक्षिणायण की भी अनुभूति है, उत्तरायण की भी। इसलिए बहुत बार भूल भी हो जाती है, जैसे कि मुसलमानों ने मंसूर को सूली दी। सूली देने का कारण सिर्फ इतना था कि मंसूर कह रहा था, अनलहक। मैं ब्रह्म हूं। आई एम दि डिवाइन। अहं ब्रह्मास्मि का अनुवाद है, अनलहक, मैं ब्रह्म हूं।

बड़ा मुश्किल है तय करना कि यह फकीर मंसूर, शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को पहुंचकर कह रहा है या अमावस की अंधेरी रात में पहुंचकर कह रहा है। कौन तय करे? कैसे तय करे? जो मंसूर को प्रेम करते हैं, वे कहते हैं कि यह पूर्णिमा की घोषणा है। और जो मंसूर के विरोधी थे, उन्होंने कहा, यह अमावस की घोषणा है। अमावस की घोषणा मानकर मुसलमानों ने मंसूर की हत्या कर दी।

लेकिन वह घोषणा अमावस की न थी। और जिन्होंने हत्या की, उनसे भूल हो गई। क्योंकि अगर वह अमावस की घोषणा होती, तो मरते वक्त पता चल जाता। क्योंकि मरते वक्त सब कुछ पता चल जाता है। अंतिम क्षण में, काल-क्षण में मंसूर ने जाहिर कर दिया कि जिन्होंने सूली दी, वे भूल में थे।

जब मंसूर के हाथ काटे जा रहे थे, तब भी वह हंस रहा था। जब उसके पैर काटे जा रहे थे, तब भी वह हंस रहा था। जब उसकी आंखें फोड़ी जा रही थीं, तब भी वह परमात्मा से दुआ मांग रहा था उन सबके लिए, जो उसकी हत्या कर रहे थे। जब उसके हाथ काटे गए और उसके हाथ से खून गिरने लगा, तो उसने दूसरे हाथ से खून को हाथ में लेकर वजू की, जैसा कि मुसलमान नमाज के पहले करते हैं।

एक आदमी ने चिल्लाकर पूछा कि मंसूर, यह तुम क्या कर रहे हो? वजू पानी से की जाती है!

मंसूर ने कहा, पानी की वजू भी कोई वजू है! प्रार्थना करने जिन्हें जाना है, उन्हें अपने खून से ही अपने को शुद्ध करना पड़ता है। और तुमने मुझे मौका दिया, तुम्हारा मैं अनुगृहीत हूं, शुक्रगुजार हूं कि तुमने मुझे खून से, अपने ही खून से वजू करने की सुविधा जुटा दी।

और मरते वक्त जब सारे लोगों ने उससे चिल्लाकर पूछा कि मंसूर, तुम नाराज भी नहीं हो, और तुम्हारी आंखें अभी भी प्रेम से भरी हैं, और तुम्हारे होंठों से अभी भी प्रेम की वर्षा हो रही है! बात क्या है?

तो मंसूर ने कहा, ताकि तुम जान सको कि तुमने जो किया, वह भूल भरा था; और तुमने जिस आदमी को मारा, वह आदमी वही नहीं था, जैसा तुमने उसे समझा था।

ईसा के साथ भी वही भूल हुई। जब ईसा ने कहा कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं, तो उनके विरोधियों ने समझा कि यह अमावस की रात में कही गई बात है। और तय करना सदा मुश्किल है। सदा मुश्किल है कि यह घोषणा जो की जा रही है, कहां से की जा रही है? घोषणा बिलकुल एक जैसी है। और निर्भर करता है इस बात पर कि आस-पास जो लोग इकट्ठे हैं, वे किस तरह के हैं, उनका इंटरप्रिटेशन!

अधिक लोग तो अमावस की रात की तरफ चलते हुए लोग हैं। अधिक लोग तो अंधेरे पक्ष की तरफ बढ़ते हुए लोग हैं। अधिक लोग तो नीचे गिरते हुए लोग हैं, ऊपर उठते हुए नहीं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनकी व्याख्या नीचे ही गिरने की व्याख्या हो। और जब वे जीसस या मंसूर के मुंह से सुनें कि मैं ही ब्रह्म हूं, तो वे समझें कि यह आदमी अहंकारी है। हम अहंकारी कुछ और समझ भी कैसे सकते हैं! हम अहंकारी हैं, इसलिए हम अहंकार की ही भाषा समझ पाते हैं।

और अगर कोई निरहंकारी भी बोले--और बोले तो अहंकार की भाषा बोलनी पड़ती है, क्योंकि और कोई भाषा नहीं है--तो हम समझते हैं कि वही बात फिर हुई जा रही है। यह आदमी कह रहा है कि मैं ब्रह्म हूं। यह आदमी अहंकार की भाषा बोल रहा है, और अहंकार तो बड़ा पाप है। और मजा यह है कि हम सब अहंकारी हैं और हम कभी भी नहीं सोचते कि कहीं भूल तो नहीं हुई जा रही। हमारे अहंकार तो कहीं व्याख्या में बाधा नहीं डाल रहे?

अगर कृष्ण भी आकर हमारे बीच खड़े होकर कहें कि मैं ब्रह्म हूं, तो हम कहेंगे, यह आदमी अहंकारी है। क्राइस्ट भी कहें कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं, तो हम कहेंगे, यह अहंकारी है। हमने ही कहा है युग-युग में, और हमने ही इन सारे लोगों को सूलियां और फांसियां दे दी हैं।

हम तो उस महात्मा को मानते हैं, जो हमारे पैरों पर सिर रख दे और कहे कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं। तब हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न होता है कि यह है महात्मा! लेकिन इसके महात्मा होने का कारण क्या है? इसके महात्मा होने का कारण यह है कि आपके चरणों पर इसने सिर रखा और आपके अहंकार की गहरी खुशामद की।

एक मेरे मित्र मुझसे कहते थे कि एक बहुत बड़े महात्मा के वे पास गए। उन महात्मा के शिष्य उनको बड़ा महात्मा बताते हैं। तो उन्होंने कहा कि मैं जरा परीक्षा करूं। वे गए महात्मा के पास, उन्होंने जाकर उनसे पूछा कि आपके शिष्य आपको बहुत बड़ा महात्मा बताते हैं,

क्या आप भी अपने को बहुत बड़ा महात्मा मानते हैं? उन महात्मा ने कहा, मैं तो तुच्छ आदमी हूं, आपके पैरों की धूल हूं। वे मित्र बिलकुल निर्णीत होकर आए और कहा कि वह आदमी बहुत बड़ा महात्मा है!

मैंने कहा, तुम्हें कैसे पता चला? उन्होंने कहा कि जब मैं गया, तो उन महात्मा ने कहा, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं। इससे पता चला तुम्हें! अगर तुम इतने समझदार हो, तो वह महात्मा भी तुमसे तो थोड़ा-बहुत ज्यादा समझदार होगा ही। अगर वह महात्मा कहता है कि हां, मैं बहुत बड़ा महात्मा हूं, तो तुम क्या खयाल लेकर लौटते? उन्होंने कहा, तब मैं पक्का मानकर लौटता कि यह आदमी बेईमान है।

तो मैंने कहा, जब तुम जानते हो ट्रिक, तो वह भी जानता होगा। इतनी-सी ट्रिक है कि तुम्हारे सामने अगर महात्मा सिद्ध होना हो, तो कहना चाहिए कि मैं तुम्हारे चरणों की धूल हूं। और अगर महात्मा सिद्ध न होना हो, तो घोषणा कर देनी चाहिए कि मैं महात्मा हूं। इतनी सरल-सी बात तुम्हें पता है, उसे पता न होगी! तुम फिर से जाओ।

मुश्किल है। क्योंकि भाषा जो हम समझते हैं, हम समझते हैं। और हमारी समझ, समझ ही कहां है!

जैसे-जैसे अंधेरे की तरफ, नीचे की तरफ बढ़ेगी चेतना, ऊर्जा, वैसे-वैसे पर का बोध खोता जाएगा। दि कांशसनेस आफ दि अदर, दूसरे का जो होश है हमें, वह विलीन हो जाएगा। एक घड़ी आएगी, जब मुझे सिर्फ मेरा ही होश रह जाएगा। एक घड़ी आएगी, जब मुझे मेरा ही होश रह जाएगा, मैं ही रह जाऊंगा। सारा जगत बंद और मैं एक अलग जगत, अपने भीतर हो जाऊंगा।

लीबनिज ने मोनोड की बात की है। लीबनिज ने कहा है कि प्रत्येक आदमी एक मोनोड है। मोनोड का अर्थ होता है, ऐसा मकान, जिसमें द्वार-दरवाजे नहीं हैं।

पता नहीं, हर आदमी मोनोड है या नहीं, लेकिन जब कोई अमावस की स्थिति में पहुंचता है, तो आदमी मोनोड हो जाता है। मोनोड, विंडोलेस, डोरलेस हाउस, कोई द्वार-दरवाजा नहीं। सब बंद हो गए द्वार-दरवाजे; मैं अपनी गुहा में भीतर कैद हो गया। मैं ही जगत हूं वहां, मैं ही परमात्मा हूं वहां। मैं ही हूं, और कुछ भी नहीं है।

लेकिन इस यात्रा में भी बड़ी साधना करनी पड़ती है संकल्प की। अब इसे और ठीक से समझ लें।

जो उत्तरायण में जाते हैं, उनकी साधना है समर्पण की, सरेंडर की। जो दक्षिणायण में जाते हैं, उनकी साधना है संकल्प की, विल की। और ये साधनाएं बड़ी उलटी हैं।

संकल्प का अर्थ ही है, स्वयं को, मैं को साधना। समर्पण का अर्थ है, स्वयं को, मैं को विसर्जित करना, खोना। दोनों की अलग-अलग साधनाएं हैं। हठयोग संकल्प की साधना है, राजयोग समर्पण की साधना है।

और जगत में दो ही तरह के योग हैं। उन्हें नाम कुछ भी दे दें। एक संकल्प के योग हैं, जिनमें अपने संकल्प को मजबूत करना है। इतना मजबूत करना है कि कोई जगत की ताकत मेरे संकल्प को न तोड़ पाए। तब मैं एक किले की दीवाल बनाकर उसके भीतर छिप जाऊंगा। फिर मैं सुरक्षित हूं।

और एक साधना है समर्पण की, कि अपने सब द्वार-दरवाजे खुले छोड़ देने हैं, कि कमजोर से कमजोर ताकत भी आए, कमजोर से कमजोर हवा का झोंका भी आए, तो भीतर चला आए, कोई बाधा न हो। मुझे मिटाने के लिए कोई ताकत आए, तो उसे जरा भी अड़चन न हो। मुझे मार डालने को कोई शक्ति निकले, तो मैं उसे द्वार पर ही स्वागत करता मिलूं। उसे दरवाजा खोलने की भी असुविधा न पड़े। समर्पण का अर्थ है, टु बी वलनरेबल, सब तरह से खुले हो जाना, जो हो उसके लिए राजी हो जाना।

ये दो साधनाएं हैं। एक साधना उस जगह पहुंचा देती है, जहां से कोई लौटना नहीं। दूसरी साधना भी कहीं पहुंचाती है, लेकिन वहां से लौटना है।

कृष्ण कहते हैं, इस दूसरे मार्ग से मरकर गया हुआ योगी–योगी कहते हैं उसे भी; वह भी संकल्प का योग साध रहा है–स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोगकर पीछे आता है। लेकिन एक बात और कही है, जो थोड़ी दुविधा में डालेगी, और वह यह है, धूम है, रात्रि है तथा कृष्ण पक्ष है और दक्षिणायण के छः माह हैं। उस मार्ग में मरकर गया हुआ योगी चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर, चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर, स्वर्ग में अपने कर्मों को भोगकर पीछे आता है।

यह चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर! इसे थोड़ा समझना पड़ेगा, क्योंकि इस अंधेरे के रास्ते पर चंद्रमा की ज्योति कहां? इस दक्षिणायण के मार्ग पर अमावस मिलेगी। यहां चंद्रमा की ज्योति कहां? यहां चंद्रमा कहां? इसे थोड़ा समझना पड़ेगा, यह थोड़ा दुरूह है, लेकिन समझेंगे तो खयाल में आ जाएगा।

जैसा मैंने कहा कि आकाश में चांद हो, तो झील में उसका प्रतिबिंब बन जाता है। जब कोई व्यक्ति अंधकार की झील हो जाता है, जस्ट ए डार्कनेस, गहन अंधकार की झील हो जाता है, तो अंधकार इतना सघन हो जाता है कि झील बन जाता है। तो भी, उसकी ही ऊर्ध्व यात्रा का जो अंतिम बिंदु है, उसकी झलक इस गहन अंधकार में दिखाई पड़ने लगती है।

यह थोड़ा समझना पड़ेगा।

जब नीचे का हिस्सा व्यक्ति का पूर्ण अंधकार से भर जाता है, तो इस अंधकार की गहराई में ही, इस गहनता में ही अंधकार की, वह जो ऊपर का शीर्ष बिंदु है व्यक्ति का, वह झलक उसकी दिखाई पड़ने लगती है। यह झलक अंधकार के अति पारदर्शी होने से घटित होती है; अंधकार के भी ट्रांसपैरेंट हो जाने से घटित होती है। संकल्प जब अंधकार से जुड़ता है और अंधकार को संवारता है, साधता है, तो अंधकार भी झलक देने लगता है।

सच तो यह है, अंधकार में, अंधकार की पृष्ठभूमि में, कंट्रास्ट में, जब स्वयं का शीर्ष बिंदु दिखाई पड़ता है, तो बड़ी भ्रांति पैदा होती है। ठीक ऐसी ही भ्रांति पैदा हो जाती है, जैसे झील में चांद को देखकर कोई समझ ले कि चांद यह रहा। और जितना गहरा उतरता जाता है, उतनी ही यह झलक साफ दिखाई पड़ती है। इसे आप एक छोटा-सा प्रयोग करें, तो समझ में आ जाए।

रात आकाश में तारे होते हैं। अभी भी तारे हैं। सुबह सूरज निकलता है, तारे खो जाते हैं। लेकिन कभी आपने सोचा कि तारे खोकर जाएंगे कहां? क्या अचानक सब तारे छिप जाते हैं कहीं! ये तारे सूरज के निकलने से जाएंगे कहां? ये तो अपनी ही जगह होंगे। सिर्फ सूरज की रोशनी के आ जाने से हमारी आंखों पर रोशनी इतनी तेज होती है कि हम इन तारों को देख नहीं पाते। ये तारे सब अपनी ही जगह होते हैं। जब रात सांझ होने लगती है, तो आप कहते हैं कि यह तारा उगा, यह दूसरा तारा उगा।

आप गलत भाषा बोल रहे हैं। ये तारे दिनभर यहीं थे। सिर्फ इस तारे पर से सूरज की रोशनी हट गई और आपकी आंख देखने लगी। दूसरे तारे पर से रोशनी हट गई, आपकी आंख देखने लगी। सूरज डूब रहा है, तारे वापस दिखाई पड़ने शुरू हो रहे हैं। उग नहीं रहे हैं। तारे अपनी जगह मौजूद थे, सिर्फ सूरज की रोशनी की वजह से, एक लंबा प्रकाश का पर्दा बीच में आ गया था, उसकी वजह से दिखाई नहीं पड़ते थे।

ध्यान रखें, अंधेरे का ही पर्दा नहीं होता, प्रकाश का भी पर्दा होता है। तेज प्रकाश आ जाए, तो कई चीजें दिखाई पड़नी बंद हो जाती हैं। सूरज की चकाचौंध थी, उसमें ये तारे दिखाई नहीं पड़ते थे।

आप एक काम करें; दिन में किसी गहरे कुएं में उतर जाएं। कुआं इतना गहरा होना चाहिए कि नीचे अंधेरा हो। कुएं में खड़े हो जाएं और आकाश को देखें। आप चकित हो जाएंगे। कुएं के भीतर से जो आकाश दिखाई पड़ेगा, उसमें आपको तारे दिन की दोपहरी में भी दिखाई पड़ेंगे। कुएं के अंधेरे में उतरकर जब आप देखते हैं ऊपर, तो जो तारे रोशनी में नहीं दिखाई पड़ रहे थे, वे अंधेरे से दिखाई पड़ने लगते हैं। अंधेरा कंट्रास्ट बन जाता है।

ठीक ऐसी ही घटना भीतर भी घटित होती है। जब कोई अपने ही अंधेरे के गर्त में उतर जाता है, अंधेरे के कुएं में नीचे और नीचे, और ऊपर उठकर देखता है, तो अपने ही शीर्ष पर जो चांद सदा से छिपा है, उसकी झलक उसे इतनी साफ दिखाई पड़ती है, जितनी साफ इस अंधेरे के कुएं के बाहर रहकर कभी दिखाई नहीं पड़ी थी, पता ही नहीं चला था। विपरीत की पृष्ठभूमि में चीजें बहुत साफ होकर दिखाई पड़ती हैं। इस अंधेरे से झलक मिलती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर!

चंद्रमा की एक ज्योति उसे उपलब्ध होती है, चंद्रमा उपलब्ध नहीं होता। चंद्रमा तो उपलब्ध होता है उत्तरायण के व्यक्ति को। इस व्यक्ति को तो चंद्रमा की ज्योति दिखाई पड़ती है, बड़ी प्रकट, बड़ी स्पष्ट। उसे यह उपलब्ध होती है। और स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोगकर वापस लौट आता है। स्वर्ग के संबंध में दोत्तीन बातें खयाल में ले लेनी चाहिए।

एक, स्वर्ग दोहरा अर्थवाची है। एक तो स्वर्ग उस अवस्था का नाम है, जहां दुख का हमने सब भांति निषेध कर दिया और केवल सुख का एक छोटा-सा कोना बचा लिया। सब दुख बंद कर दिए और केवल सुख को बचा लिया। पीछे छिपे रहेंगे दुख, जा नहीं सकते, क्योंकि वे सुख के ही हिस्से हैं। हमने एक ऐसा घर बना लिया, जिसमें हमने सिक्के चांदी के लगाकर उनका मुख अपनी तरफ कर लिया और पीठ पीछे की तरफ कर दी। हम उस घर के भीतर छिपकर खड़े हो गए। अब हम कह सकते हैं कि हमारे सभी सिक्कों में एक ही पहलू है।

शक्ल वाला हिस्सा हमें दिखाई पड़ता है, पीठ पीछे है। लेकिन पीठ पीछे मौजूद है, बहुत जल्द वह पीठ हमें अनुभव में आनी शुरू हो जाएगी। वही लौटना है वापस।

स्वर्ग का एक अनुभव है, दुख को छिपाकर सुख को पूरी तरह बचा लेने की स्थिति। यह मानसिक अवस्था भी है, भौतिक अवस्था भी है। ऐसे स्थान हैं इस विश्व में, जिन स्थानों पर ऐसे सुख की अधिकतम संभावना है। ऐसे स्थान हैं इस विश्व में, जहां इससे विपरीत दुख ही दुख हैं, उनकी संभावना है। लेकिन जो व्यक्ति भी ऐसी अवस्था को, या ऐसी स्थिति को, या ऐसे स्थान को उपलब्ध होता है, उसके पास संचित पूंजी है, वह उसे खर्च करके वापस लौट आता है। नर्क से भी लौट आता है आदमी, पाप की सारी पूंजी खर्च करके। स्वर्ग से भी लौट आता है आदमी, पुण्य की सारी पूंजी खर्च करके।

अब एक बात यहां खयाल ले लें। जब भी आप पाप करते हैं, तो संकल्प की कमी के कारण करते हैं। आपने तय किया है कि चोरी नहीं करूंगा, लेकिन हीरा पड़ा हुआ मिल जाता है। संकल्प कहता है, मत करो; लेकिन वासना कहती है, यह मौका चूकने जैसा नहीं। कसम फिर खा लेना, व्रत फिर ले लेना; यह हीरा फिर दुबारा मिले न मिले। व्रत तो कभी भी लिया जा सकता है। तोड़ भी दिया, तो पश्चात्ताप की व्यवस्था हो सकती है। प्रायश्चित्त कर लेना; कुछ दान-पुण्य कर देना। जो चाहो, कर देना, लेकिन इसे मत छोड़ो। पाप सदा ही संकल्प की कमी से होते हैं, ध्यान रखना; संकल्प की कमी से।

मुल्ला नसरुद्दीन का बाप उसे समझा रहा है कोई दवा लेने को। अभी लड़का ही है वह। और बाप उससे कह रहा है कि यह दवा तुझे पीनी ही पड़ेगी। और देख, ध्यान रख, माना कि यह कड़वी है, लेकिन आदमी को संकल्पवान होना चाहिए। विल पावर होनी चाहिए आदमी में। जब मैं तेरी उम्र का था, तो कितनी ही कड़वी दवा हो, जब मैं एक दफा तय कर लेता था कि पीऊंगा, तो पीकर ही रहता था।

नसरुद्दीन ने कहा, मैं भी संकल्प में आपसे पीछे नहीं हूं। जब मैं एक दफा तय कर लेता हूं कि नहीं पीऊंगा, तो नहीं ही पीता हूं!

संकल्प का अर्थ है, जो तय कर लिया, वह कर लिया।

सब पाप--क्योंकि पापी से पापी व्यक्ति भी पाप करने का तय कभी नहीं करता, हालांकि पाप कर लेता है। यह खयाल में रखना आप। पापी से पापी व्यक्ति भी पाप करने का तय नहीं करता, तय तो सदा पुण्य करने का ही करता है, लेकिन पाप कर लेता है। सब पाप संकल्प की कमी से पैदा होते हैं। संकल्प की कमी नर्क का द्वार है।

सब पुण्य संकल्प की सामर्थ्य से पैदा होते हैं, इसलिए संकल्प स्वर्ग की कुंजी है।

लेकिन मोक्ष न संकल्प से मिलता और न संकल्प की कमी से मिलता। संकल्प की कमी भी संकल्प की ही कमी है। वहां भी संकल्प मौजूद है, कमजोर, दीन-हीन, कुटा-पिटा, लेकिन मौजूद है। मोक्ष मिलता है संकल्प के विसर्जन से, संकल्प के पूर्ण विसर्जन से, संकल्प के समर्पण से, सरेंडर से।

तीन बातें। संकल्प हो पूरा, तो आदमी दक्षिणायण के पथ पर विकसित हो जाता है। संकल्प न हो पूरा, तो आदमी प्रकृति के मार्ग पर ही भटकता रहता है। अगर संकल्प बहुत कमजोर हो, तो भटकता है, भटकता है, नर्क बना लेता है। संकल्प मजबूत हो, तो स्वर्ग निर्मित कर लेता है। लेकिन स्वर्ग से भी वापसी है, नर्क से भी वापसी है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, इस मार्ग को गया हुआ व्यक्ति भी अपने कर्मों के फल को भोगकर वापस लौट आता है। क्योंकि जगत के ये दो प्रकार, शुक्ल और कृष्ण अर्थात देवयान और पितृयान की गति अर्थात मार्ग सनातन माने गए हैं। इनमें एक के द्वारा गया हुआ पीछे न आने वाली गति को प्राप्त होता है; और दूसरे के द्वारा गया हुआ पीछे आता है अर्थात जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है।

संक्षिप्त में, एक है हमारे कर्मों की उपलब्धि, हमारे किए हुए का फल। बुरा होगा तो बुरा मिल जाएगा, भला होगा तो भला मिल जाएगा, लेकिन है हमारे कर्मों का किया हुआ। जो हम कर्म से करते हैं, वह चुक जाएगा।

हमारा किया हुआ शाश्वत नहीं हो सकता। कितनी ही बड़ी संपदा हो, चुक जाएगी। कितने ही बड़े पुण्य हों, खर्च हो जाएंगे, भोग लिए जाएंगे। कितना ही बड़ा सुख हो, रिक्त हो जाएगा। सागर भी बूंद-बूंद गिरकर रिक्त हो सकता है। क्योंकि सागर भी बूंद-बूंद गिरकर ही भरता है। कितना ही महापुण्य हो, कितना ही दूर-दूर, वर्षों-वर्षों, जन्मों-जन्मों तक चलने वाला सुख हो, चुक ही जाता है। और चुककर हम वापस रिक्त, दीन-हीन, वहीं खड़े हो जाते हैं, जहां से हमने एक दिन संकल्प करके उसे कमाया था। कर्म शाश्वत को नहीं देते, कर्म नित्य को नहीं देते। कर्म जो भी देते हैं, वह क्षणिक है। वह क्षण कितना ही लंबा हो सकता है।

और एक मजे की बात है कि स्वर्ग कितना ही लंबा हो, क्षणिक से ज्यादा कभी नहीं होता। यह थोड़ा कठिन लगेगा। वही काल का रहस्य फिर थोड़ा खयाल में लेना पड़ेगा। स्वर्ग कितना ही लंबा हो, क्षण से ज्यादा नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि जितना ज्यादा सुख हो, उतना ही समय छोटा मालूम पड़ता है।

मैंने पीछे कहा आपको कि सुख ज्यादा हो, समय छोटा हो जाता है। दुख ज्यादा हो, समय लंबा हो जाता है। ईसाई कहते हैं कि नर्क इटरनल है, शाश्वत है; वहां से कोई छूट नहीं सकता।

बर्ट्रेंड रसेल ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि ईसाइयों की यह बात मुझे बहुत अनजस्टीफाइड मालूम होती है, बहुत न्यायपूर्ण नहीं मालूम होती, अन्यायपूर्ण मालूम होती है। क्योंकि मैंने कितने ही पाप किए हों, लेकिन मेरे कितने ही पापों की कितनी ही बड़ी संख्या हो, तो भी मुझे सदा के लिए नरक में डालना न्यायपूर्ण नहीं हो सकता। मैंने जितने पाप किए हैं, उस अनुपात में मुझे नरक में डाला जाना चाहिए।

और रसेल ने कहा है कि मैंने जितने पाप किए, अगर उनको जोड़ लूं; और जो मैंने नहीं किए और सिर्फ सोचे, करना चाहता था, नहीं कर पाया, उनको भी जोड़ लूं और सबको प्रकट कर दूं, तो इस जमीन पर सख्त से सख्त कानून की व्यवस्था भी मुझे चार-पांच साल से ज्यादा की कैद नहीं दे सकती।

आदमी भला था। और वह ठीक कह रहा है। चार-पांच साल भी ज्यादा कह रहा है; इतनी भी सजा उसको नहीं दी जा सकती।

तो रसेल का कहना ठीक है कि जब मैं कहता हूं कि मेरे सारे पापों का हिसाब लगा लिया जाए, जो मैंने किए; और जो मैंने सोचे, वे भी जोड़ लिए जाएं; तो भी सख्त से सख्त कानून मुझे पांच साल का कठोर दंड दे सकता है। तो मुझे शाश्वत, सदा के लिए, इटरनली नरक में डालने वाली ईसाइयत अन्यायपूर्ण मालूम पड़ती है।

बर्ट्रेंड रसेल को कोई ईसाई जवाब नहीं दे सका, क्योंकि रसेल आदमी बहुत पुण्यात्मा था। अच्छे से अच्छे, भले से भले लोगों में एक था। जिनको हम शुभ और नैतिक से नैतिक व्यक्ति कहें, परम नैतिक, वैसा व्यक्ति था। तो ऐसे व्यक्ति को ईसाइयत जवाब न दे पाई।

बात तो साफ दिखाई पड़ती है। हिटलर को भी अगर नर्क में डालना हो, तो भी सदा के लिए डालना अन्यायपूर्ण मालूम पड़ेगा। कितना ही पाप हो, आखिर एक अनुपात है, उस अनुपात में दंड मिलना चाहिए। लेकिन ईसाइयत जवाब नहीं दे पाई, क्योंकि ईसाइयत को काल का जो रहस्य है, उसका स्पष्टीकरण नहीं है।

जब मैंने रसेल का यह वक्तव्य पढ़ा, तो रसेल मर चुका था। जिंदा होता, तो मैं उससे कहना चाहता कि नर्क चाहे क्षणभर के लिए मिले, इटरनल मालूम पड़ता है। चाहे क्षणभर के लिए कोई नर्क में जाए, तो ऐसा लगता है, अब इसका अंत कभी नहीं होगा।

नरक शाश्वत नहीं है, लेकिन नरक की प्रतीति सभी को शाश्वत जैसी मालूम पड़ती है। और स्वर्ग भी क्षणिक नहीं, लेकिन स्वर्ग की प्रतीति सभी को क्षणिक जैसी मालूम पड़ती है। क्योंकि सुख समय को छोटा कर देता है, दुख समय को लंबा कर देता है। और नर्क का अर्थ है, परम दुख, तो समय बहुत लंबा हो जाएगा, ओर-छोर दिखाई नहीं पड़ेंगे। और स्वर्ग का अर्थ है, परम सुख, समय बिलकुल सिकुड़ जाएगा और क्षण में स्वर्ग बीत जाएगा।

पर आदमी के किए हुए कर्म सभी चुक जाते हैं। क्या ऐसा भी कुछ है आदमी के जीवन में, जो उसके कर्म से नहीं मिलता? जो उसका किया हुआ नहीं है? अगर ऐसा कुछ है, तो आदमी उससे कभी वापस नहीं लौटेगा।

इसलिए संकल्प के मार्ग से गया हुआ व्यक्ति वापस लौट आएगा, क्योंकि संकल्प है आदमी का कर्म।

समर्पण के मार्ग से गया हुआ व्यक्ति कभी वापस नहीं लौटेगा, क्योंकि समर्पण के मार्ग पर जो घटना घटती है, वह व्यक्ति के कर्म का फल नहीं, व्यक्ति के समर्पण का फल है। और समर्पण कर्म नहीं है, समस्त कर्मों का विसर्जन है। असल में समर्पण से जो उपलब्ध होता है, वह प्रभु-प्रसाद है, वह ग्रेस है, वह अनुकंपा है। संकल्प से जो मिलता है, वह मेरी उपलब्धि है। समर्पण से जो मिलता है, वह मैं मिट जाता हूं, तब मिलता है; वह मेरी उपलब्धि नहीं है, वह मेरे खो जाने की उपलब्धि है।

जीसस ने कहा है, जो अपने को बचाएंगे, वे खो देंगे; और जो अपने को खो देते हैं, वे सदा के लिए अपने को बचा लेते हैं।

ओशो – गीता-दर्शन – भाग 4
तत्वज्ञ—कर्मकांड के पार—अध्याय—8 – प्रवचन—ग्यारहवां

सूत्रः

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयक्तो भवार्जुन।। 27 ।।
वेदेषु यज्ञषु तपः सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सवर्मिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।। 28 ।।
और हे पार्थ इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता हुआ, कोई भी योगी मोहित नहीं होता है। हस कारण हे अर्जुन, तू सब काल में योग से युक्त हो अर्थात निरंतर मेरी प्राप्ति के लिए साधन करने वाला हो।

क्योंकि योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दानादि के करने में जो पुण्यफल कहा है, उस सब को निस्संदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परम पद को प्राप्त होता है।

प्रभु की खोज में, परम सत्य की खोज में दो मार्गों की हमने समझी उस संबंध में दों-तीन बातें और भी बात। खयाल में ले लेनी जरूरी हैं। और तब आसान होगा आज के इस अक्षर ब्रह्म योग अध्याय अंतिम दो सूत्रों को समझने में।

इधर सिग्मंड फ्रायड ने विगत आधी सदी में शायद गहनतम प्रभाव आदमी के मस्तिष्क पर छोड़ा है। सिग्मंड फ्रायड इधर तीन सौ वर्षों में तीन बड़े नामों में से एक है। एक व्यक्ति है गैलीलियो, दूसरा व्यक्ति है चार्ल्स डार्विन और तीसरा व्यक्ति है सिग्मंड फ्रायड। इन तीन व्यक्तियों ने मनुष्य की चेतना और मनुष्य के जीवन को आमूल बदलने की दृष्टि दी है।

सिग्मंड फ्रायड की जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोज है, वह खोज है, डिस्कवरी आफ दि अनकांशस, आदमी के भीतर जो अचेतन है, उसकी खोज। आदमी का मन, जैसा हम जानते हैं उसे, वह केवल ऊपर की पर्त है, चेतन मन, कांशस माइंड है। उससे गहरी पर्त, उससे नीचे दबा हुआ मन, जो कि ज्यादा महत्वपूर्ण, ज्यादा प्रभावशाली और जड़ों में छिपा है, और जिससे हम चालित होते हैं जीवनभर, जिससे हम चलते, उठते, बैठते और काम करते हैं, वह गहरा मन अनकांशस है, अचेतन है। फ्रायड ने उस अचेतन के महाद्वीप को खोजा है।

यह खोज बड़ी आकस्मिक थी। फ्रायड ऐसे तो खोज कर रहा था काम-विकारों के संबंध में, सेक्स परवरशस के संबंध में आदमी के चित्त में जितनी विक्षिप्तताएं पैदा होती हैं, उनमें से कोई नब्बे प्रतिशत उसकी कामवासना की विकृतियां हैं। तो फ्रायड तो चिकित्सक की भांति, आदमी के काम-विकार क्यों पैदा होते हैं, इसकी खोज में लगा था।

इस खोज में उतरते -उतरते अचानक ही उसे मनुष्य के मन के नीचे छिपे हुए मन का पता चला। वह मन इस मन से बहुत बडा है, जिसे हम समझते हैं, मैं हूं। जैसे कि हम एक बर्फ की चट्टान पानी में डाल दें, तो नौ हिस्सा चट्टान नीचे डूब जाती है, एक हिस्सा ऊपर रहती है। फ्रायड ने अनुभव किया कि जिस मन को हम अपना सब कुछ समझकर बैठे -हुए हैं, वह एक हिस्सा है, और नौ हिस्सा हमारा असली मन नीचे अंधेरे में डूबा हुआ है।

फ्रायड के शिष्य और बाद में फ्रायड से अलग और विरोध में हो गए कार्ल गुस्ताव जुंग ने इस अनकांशस, इस अचेतन मन की और भी गहरी खोज की। और उसे पता चला कि अचेतन के नीचे और भी गहरा अचेतन छिपा है, जिसे उसने कलेक्टिव अनकांशस, समूह-अचेतन का नाम दिया। उसने कहा कि व्यक्ति के मन के नीचे एक मन है, जो अचेतन है। अचेतन के नीचे भी और गहरा मन मालूम पड़ता है, जो कि समूह- अचेतन है। सबका अचेतन जुड़ा हुआ है।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि आपको दक्षिणायण की पूरी की पूरी धारणा वैज्ञानिक रूप से समझ में आ जाए। फ्रायड और कं जो काम किए हैं, वह दक्षिणायण के पथ पर है।

अगर हम मनुष्य के अचेतन में प्रवेश करेंगे, तो हम नीचे उतरते जाते हैं। लेकिन मनुष्य के अचेतन की भांति ही मनुष्य का अति-चेतन, सुपर-कांशस माइंड भी है। यदि हम ऊपर की तरफ यात्रा करें, तो सुपर-कांशस, अति-चेतन मन की यात्रा शुरू होती है।

अब हम ऐसा समझ लें कि जिस मन से हम परिचित हैं, वह मन है चेतन; उससे नीचे उतरें, तो अचेतन; और भी नीचे उतरें, तो समूह-अचेतन। ऊपर बढ़े, तो अति-चेतन; और ऊपर बढ़े, तो ब्रह्म-चेतन।

उत्तरायण का पथ अभी भी वैज्ञानिक रूप से आविष्कृत नहीं हुआ है। दक्षिणायण का पथ वैज्ञानिक रूप से भी आविष्कृत हो गया है। और अगर दक्षिणायण का पथ ही आविष्कृत रहा, तो पश्चिम अपना आत्मघात कर लेगा। क्योंकि नीचे उतरने का पता चल जाए और ऊपर

चढ़ने का पता न हो और ऐसा अनुभव में आने लगे कि नीचे उतरना ही स्वाभाविक है, तो मनुष्य जाति की सारी संभावनाएं विलुप्त हो जाएंगी।

पश्चिम में आज जो हमें नैतिक ह्रास और आध्यात्मिक पतन दिखाई पड़ता है, उसका वास्तविक कारण पश्चिम का भौतिकवाद नहीं है, मैटीरियलिज्म नहीं है। वस्तुत: तो जब कोई समाज बहुत भौतिक हो जाता है, तो वहा आध्यात्मिक जागृति शुरू होती है। क्योंकि जैसे ही भौतिक सुविधाएं उपलब्ध होती हैं, उन सुविधाओं की व्यर्थता भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। जैसे ही धन मिलता है, धन की सार्थकता खो जाती है। और जैसे ही हम सब कुछ पा लेते हैं वस्तुओं के जगत में, वैसे ही पता चलता है कि आत्मा वस्तुओं से घिर गई है, लेकिन आत्मा बिलकुल खाली, रिक्त और अर्थहीन हो गई है। भौतिकवाद तो अध्यात्म के लिए बड़ी गहरी स्फुरणा बन जाती है।

इसलिए जब भी कोई समाज भौतिक रूप से समृद्ध होता है, तो उसका अंतिम शिखर आध्यात्मिक होता है। गरीब समाज आध्यात्मिक होने में बड़ी कठिनाई अनुभव करता है। क्योंकि गरीब को अनासक्त होना अति कठिन मालूम पड़ता है। जिसके पास छोड़ने को कुछ नहीं है, निश्चित ही उसे छोड़ना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। और जिसके पास है ही नहीं, उसकी अनासक्ति का कोई बहुत मूल्य भी नहीं मालूम होता। और जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसकी अनासक्ति बहुत गहरे में संतोष होती है, कसोलेशन होती है। लेकिन जिसके पास है, उसकी अनासक्ति केवल संतोष और कसोलेशन, सांत्वना नहीं होती; उसकी अनासक्ति एक आंतरिक उपलब्धि होती है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि गरीब आदमी अध्यात्म को उपलब्ध नहीं हो सकता। गरीब व्यक्ति तो उपलब्ध हो सकता है, गरीब समाज उपलब्ध नहीं हो पाता। गरीब व्यक्ति, व्यक्तिगत बात है। लेकिन यह गरीब व्यक्ति भी अपने अन्य जन्मों में धन को जाना हो, तो ही इस जन्म में धन से मुक्त हो सकता है। हम जो जान लेते हैं, उसी से मुक्त होते हैं। शान के अतिरिक्त मुक्ति का कोई भी उपाय नहीं है।

लेकिन धनी समाज पूरा का पूरा धन से, वस्तुओं से, पदार्थ से गहरी विरक्ति से भर जाता है।

पश्चिम का पतन, पश्चिम की नैतिक गिरावट, भौतिकवाद का परिणाम नहीं है। पश्चिम की नैतिक गिरावट का मूल कारण है, पश्चिम ने दक्षिणायण, नीचे की तरफ उतरने वाली पद्धति और मार्ग को तो खोज लिया है; और ऊपर की तरफ जाने वाली पद्धति को खोजने की पहली किरण भी पश्चिम में अभी नहीं उतरी है।

लेकिन पश्चिम के विचारशील मनुष्यों को संदेह पैदा हो गया है। यदि मन के नीचे पर्तें हो सकती हैं, तो मन के ऊपर भी पर्तें हो सकती हैं। कल तक, केवल साठ-सत्तर वर्ष पहले तक पश्चिम का कोई विचारक मानने को राजी नहीं था कि जो मन हम जानते हैं, इसके अलावा भी कोई मन हो सकता है। लेकिन नीचे उतरकर पश्चिम को अनुभव में आया है कि बहुत अंधेरी पर्तें मनुष्य की हैं, वे भी हैं। और वे ज्यादा शक्तिशाली हैं और मनुष्य की गर्दन उनके हाथों में है। अगर इतना ही अनुभव हमारा रहा..।

और पश्चिम का विचार पूरब पर भी छाता चला जा रहा है। आज पूरब का विचारशील, शिक्षित, सुसंस्कृत व्यक्ति भी पूरब का मनुष्य नहीं है। वह भी पश्चिम की पैदावार है, वह भी पश्चिम की ही बाइप्रोडक्ट है। पूरब के विश्वविद्यालय, पूरब के शिक्षाशास्त्री पूरब के संबंध में शायद ही कुछ जानते हैं। वे जो भी जानते हैं, सब पश्चिम से आया हुआ, निर्यात किया हुआ है। और वह भी सेकेंड हैंड, वह भी बासा। क्योंकि पश्चिम में जो बीस-तीस साल पुराना हो जाता है-उसके पूरब में आते-आते इतना वक्त लग जाता है-जब वह वहा आउट आफ डेट हो जाता है, फिंक जाता है कचरे में, तब यहा के विश्वविद्यालय उसे अपनी टेक्स बुक्स में रखना शुरू करते हैं।

यह स्वाभाविक है। जो भी लोग उधार जीते हैं, उन्हें इतना पीछे जीना ही पड़ेगा। पश्चिम की टेबल से जो भोजन नीचे गिरा दिए जाते हैं, वे पूरब के भिक्षापात्र में गिर जाते हैं।

पश्चिम जिन बातों को व्यर्थ मानकर छोड़ देता है, जब तक वह व्यर्थ मान पाता है, तब तक हम उनको समझकर सार्थक मानने की स्थिति में आ पाते हैं।

पश्चिम के फ्रायड और दा की खोजों ने मनुष्य के नीचे उतरने की सीढ़ियां तो बहुत साफ कर दीं, लेकिन बहुत खतरनाक स्थिति हो गई है। इस नीचे के मन को जानकर ऐसा लगना शुरू हुआ पश्चिम के मनसविद को कि आदमी का नीचे उतरना बिलकुल ही स्वाभाविक है और आदमी के चेतन मन की कोई भी सामर्थ्य नहीं है। अचेतन शक्तिशाली है और अचेतन के हाथों में जीना ही स्वस्थ होने का उपाय है। और जो व्यक्ति अपने अचेतन से लड़ेगा, वह विक्षिप्त होगा, परवर्ट होगा, विकृत होगा, रुग्ण हो जाएगा।

मैंने सुना है कि एक मानसिक बीमार था। उसे एक आदत थी, एक आब्सेशन था कि जब भी वह किसी शराबघर में या चायघर में या काफीघर में जाता, तो आधा गिलास तो पी लेता, और आधा गिलास दुकान के मालिक के ऊपर उंडेल देता। अनेक लोगों ने उसे सलाह दी। और फिर वह क्षमा मांगता और कहता कि मेरी मजबूरी है; मैं कर नहीं पाता कुछ और। यह मुझे करना ही पड़ता है। यह मेरे भीतर से कोई करवा लेता है।

एक दुकान में उसने यही किया, शराबघर में, आधा गिलास मालिक के ऊपर उंडेला। तो मालिक नाराज हुआ और उस मालिक ने कहा, अच्छा हो कि तुम किसी मनसविद की सलाह लो, किसी साइकोएनालिस्ट, किसी मनोविश्लेषक के पास जाओ। यह तो बड़ी खतरनाक बात है!

छः महीने बाद वह आदमी दुबारा आया। बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ रहा था। आकर उसने फिर एक गिलास में शराब ली। आधी पी और आधी बड़े आनंद से फिर मालिक कै ऊपर उडेली। मालिक ने कहा, हद्द हो गई। मैंने तो सुना था कि तुमने मनोविश्लेषक के पास जाना शुरू कर दिया। और छः महीने से तुम इलाज करवा रहे हो! उस आदमी ने कहा कि निश्चित ही छः महीने से मैं इलाज करवा रहा हूं और मुझे बड़ा फायदा हुआ है। उस दुकानदार ने कहा, फायदा कोई दिखाई नहीं पड़ता। फिर तुमने वही काम किया! उसने कहा, वही काम किया, लेकिन अब मैं पश्चात्ताप जरा भी नहीं करता हूं। नाउ आई डोंट फील गिल्टी। क्योंकि मनसविद ने मुझे समझा दिया है कि यह बिलकुल स्वाभाविक है। यह होगा ही। इसे तुम नार्मल समझो। इसमें कुछ एबनार्मल नहीं है। अब मुझे पश्चात्ताप नहीं होता है।

पश्चिम की पूरी की पूरी विकृति का कारण यह है कि पश्चिम में मनसविद ने यह समझा दिया है लोगों को कि तुम जो भी कर रहे हो-अगर तुम होमोसेक्यूअल हो, अगर तुम समलिंगी-काम से पीड़ित हो, अगर तुम हर रोज अपनी पत्नी को बदलना चाहते हो, अगर तुम पत्नी के साथ उलटे-सीधे कामवासना के प्रयोग करना चाहते हो-तो यह सब स्वाभाविक है, क्योंकि यह मनुष्य के अचेतन में छिपा पड़ा है। यह होगा ही। और अगर तुमने यह नहीं किया, तो तुम रुग्ण हो जाओगे। यह तुम्हें करना ही चाहिए, तो ही तुम सामान्य, स्वस्थ रह पाओगे।

पश्चिम में जो सारा उपद्रव का जाल फैला है, वह भौतिकवाद का परिणाम नहीं, पश्चिम में फ्रायड की खोज का-अधूरी खोज का-स्वाभाविक रूप से हुआ घातक फल है। अधूरी खोज सदा ही घातक होती है। आधा शान सदा ही खतरनाक सिद्ध होता है। आधा ज्ञान कभी-कभी तो आत्मघाती होता है।

कृष्ण ने दोनों मार्गों की सीधी बात की है। ऊपर का मार्ग साफ न हो, तो अच्छा है कि नीचे के मार्ग से हम परिचित ही न हों। ऊपर का मार्ग स्पष्ट हो जाए, तो नीचे के मार्ग की कठिनाई समाप्त हो जाती है।

तो कृष्ण कहते हैं, हे पार्थ, इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता हुआ, कोई भी योगी मोहित नहीं होता है।

इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता हुआ, कोई भी योगी मोहित नहीं होता है। जिस व्यक्ति ने, जिस साधक ने इन दोनों तत्वों को, इन दोनों मार्गों को उनकी आंतरिक गहनता में स्पष्ट रूप से जान लिया, पहचान लिया, अनुभव कर लिया, वह मोहित नहीं होता है।

यह मोहित होने की बात को थोड़ा खयाल में ले लें। इस मोहित होने का क्या अर्थ होगा? जिसने इन दोनों मार्गों को जान लिया, वह मोहित नहीं होता है। जो एक को जानेगा, वह मोहित हो सकता है।

मोह का मैकेनिज्म, मोह की जो यांत्रिक प्रक्रिया है, वह खयाल में ले लें।

मोहित हम सदा विपरीत से होते हैं। मोहित हम सदा विपरीत से होते हैं-दि अपोजिट इज आलवेज दि अट्रैक्यान। और हर आदमी जिससे मोहित होता है, वह उसके विपरीत होता है। यह विपरीत का नियम जीवन के समस्त पहलुओं पर लागू होता है। पुरुष स्त्रियों में आकर्षित होते हैं, उनकी विपरीतता के कारण। स्त्रियां पुरुषों में आकर्षित होती हैं, उनकी विपरीतता के कारण।

आप हैरान होंगे यह जानकर कि आप जो कुछ भी जीवन में पसंद करते हैं, जिसको आप कहते हैं, मैं बहुत पसंद करता हूं-आपको खयाल में ही न होगा-वह आपसे विपरीत चीज है। इसलिए जिसको आप पसंद करते हैं, अगर उससे दूर रहें, तो पसंदगी जारी रह सकती है। जिसे आप पसंद करते हैं, अगर उसके ही साथ रहने लगें, तो कलह अनिवार्य है। क्योंकि जो विपरीत है, उससे आप आकर्षित हो सकते हैं, लेकिन साथ नहीं रह सकते। क्योंकि साथ रहने पर विपरीत से कलह होनी शुरू हो जाएगी। जो विपरीत है, उससे संघर्ष होगा ही।

यह बड़े मजे की बात है। यह आदमी के मन का बहुत पैराडाक्सिकल हिसाब है कि विपरीत से आकर्षित होते हैं, लेकिन विपरीत के साथ रह नहीं सकते। आकर्षण दूर पर होता है, पास आने पर संघर्ष शुरू हो जाता है। वस्तुतः हमें जो आकर्षित करता है, बहुत गहरे में हम उससे भयभीत हो जाते हैं। और जो हमें आकर्षित करता है, बहुत गहरे में हमें वह शत्रु भी मालूम पड़ता है। क्योंकि हम उसके गुलाम हो जाते हैं, और उसका आकर्षण हमारे ऊपर पजेशन, मालकियत बन जाता है।

लेकिन सभी मोह, सभी अटैचमेंट, विपरीत से, अपोजिट से होता है। ठीक अपने समान व्यक्ति को आप प्रेम नहीं कर सकते। समान एक-दूसरे को रिपेल करते हैं। जैसे कि चुंबक, ऋण और धन एक-दूसरे को खींचते हैं। धन और धन को अगर पास लाएं, तो एक-दूसरे को खींचते नहीं हैं। ऋण और ऋण, एक-दूसरे को खींचते नहीं हैं। खिंचावट के लिए ऋण और धन चाहिए। निगेटिव और पाजिटिव पोल एक-दूसरे को खींचते हैं। समानजातीय, समानधर्मा व्यक्ति एक-दूसरे को खींचते नहीं।

इसलिए बहुत आश्चर्य की बात नहीं है कि बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति एक ही समय में हों, लेकिन एक-दूसरे के पास बिलकुल नहीं आते। पोलेरिटी नहीं है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है, अक्सर ऐसा होता है कि समानधर्मा व्यक्ति एक-दूसरे से फासले पर ही बने रहते हैं। विपरीत आकर्षित हो जाते हैं और निकट आ जाते हैं। विपरीत ही आकर्षण का सूत्र है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता है! तत्व से जानने का अर्थ है, वन हू हैज एक्सपीरिएंस्ट; जिसने अनुभव से जाना, वही तत्व से जानता है। और जिसने अनुभव से नहीं जाना, वह केवल सिद्धात से जानता है, तत्व से नहीं। तो सिद्धात से तो कोई भी पढ़कर जान सकता है। लेकिन वह शान तत्व-ज्ञान नहीं है। वह ज्ञान नालेज नहीं है, एक्येनटेंस है।

बर्ट्रेंड रसेल ने ज्ञान के दो विभाजन किए हैं। एक को कहा है नालेज, ज्ञान, और एक को कहा है एक्येनटेंस, परिचय। तो जो हम सिद्धात से जानते हैं, वह परिचय मात्र है, मियर एक्येनटेंस। वह ज्ञान नहीं है। जिसको रसेल ने ज्ञान कहा है, उसी को कृष्ण तत्व से जानना कहते हैं। टु नो ए थिंग इन इट्स एलिमेंट, उसकी जो गहरी से गहरी तात्विकता है, उसकी जो गहरी से गहरी बुनियाद है, उसमें ही जानना। अनुभव के अतिरिक्त बुनियाद में जानने का कोई उपाय नहीं है।

जो व्यक्ति इन दोनों मार्गों को अनुभव से जानता है, वह मोहित नहीं होता। क्योंकि जो दोनों को जान लेता है, उसके लिए विपरीत का आकर्षण विलीन हो जाता है। इसे ऐसा समझें, जो व्यक्ति दक्षिणायण के मार्ग पर चलेगा, वह चलता रहे दक्षिणायण के मार्ग पर, लेकिन उसके चित्त में निरंतर ही आकर्षण उत्तरायण की तरफ बना रहेगा; विपरीत खींचता रहेगा। जो व्यक्ति उत्तरायण की तरफ चलेगा सीधा, बिना दक्षिणायण के अनुभव के, उस व्यक्ति को दक्षिणायण का मार्ग निरंतर ही आकर्षित करता रहेगा, बुलाता रहेगा, पुकारता रहेगा, बाधा बनता रहेगा। और सदा मार्ग में ऐसी अड़चनें आ जाएंगी, जब वह आदमी ! कभी उत्तरायण की तरफ, कभी दक्षिणायण की तरफ डोलने। लगेगा। और जो व्यक्ति विपरीत की तरफ डांवाडोल होता रहे, वह अग्रसर नहीं हो पाता है।

इन दोनों मार्गों को जो उनके तत्व में जान लेता है, वह फिर मोहित नहीं होता है। वह इन दोनों मार्गों में ही मोहित नहीं होता है, ऐसा नहीं, वह समस्त विपरीतता के चक्कर से मुक्त हो जाता है। संसार से मुक्त होने का गहनतम जो अर्थ है, वह है, मुक्त हो जाना संसार की विपरीतता के नियम से, दि ला आफ दि अपोजिट। वह जो' विपरीत खींचता है..।

इसलिए योगी स्त्री को छोड्कर इसलिए नहीं जाता कि वह स्त्री है। या योगी स्त्री के साथ रहकर भी स्त्री को इसलिए नहीं छोड़ देता है कि वह स्त्री है। या अगर योगिनी है, तो पुरुष को छोड्कर इसलिए नहीं जाती, या पुरुष के साथ रहकर भी पुरुष का आकर्षण इसलिए नहीं छोड़ देती कि वह पुरुष है, बल्कि इसलिए कि वह अपोजिट है, वह विपरीत है।

और विपरीत से मुक्त हुए बिना कोई भी व्यक्ति शात नहीं हो सकता। मोह से मुक्त हुए बिना, निर्मोह हुए बिना कोई भी व्यक्ति शात नहीं हो सकता। क्योंकि वह दूसरा खींचता ही रहेगा। और जब आप एक तरफ होते हैं, तब दूसरा आपको खींचता है, जब आप दूसरी तरफ जाते हैं, तब जिससे आप हट गए हैं, वह आपको पुन: खींचने लगता है। पूरा जीवन इसी तरह घड़ी के पेंडुलम की तरह दो अतियों के बीच में डांवाडोल होता है। जिसे छोड़ देते हैं, वह फिर आकर्षक हो जाता है, फिर पुकारने लगता है, फिर बुलाने लगता है। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक दंपतियों को सलाह देते हैं कि अगर पत्नी से न बन रही हो ठीक, या पति से ठीक न बन रही हो, तो थोड़ी देर के लिए दूसरे स्त्री-पुरुषों के साथ प्रेम के अस्थायी संबंध निर्मित कर लेने चाहिए।

बड़ी हैरानी की बात है। क्योंकि कोई स्त्री यह नहीं सोच सकती कि उसका पति, जब उससे नहीं बन रही है, अगर किसी और स्त्री के थोड़े-बहुत दिन के प्रेम में पड़ जाए, तो इससे कुछ लाभ होगा। इससे तो बात बिलकुल टूट जाएगी।

लेकिन पश्चिम का मनोवैज्ञानिक ठीक कहता है। वह कहता है, दूसरी स्त्री से थोड़े दिन संबंध बनाकर वह फिर अपनी स्त्री के प्रति आकर्षित हो जाता है; अतियों में डोल जाता है।

इसलिए पश्चिम में एक बहुत ही अजीब-सी घटना चल रही है, और वह यह है कि स्त्रियों की बदलाहट करनी-स्वोपिंग क्लब्स, जहां मित्र अपनी पत्नियों को बदलने का गुप्त प्रयोग करते रहते हैं। और हैरानी की बात है कि जिन पति-पत्नी के बीच नहीं बनता था, उनके बीच फिर से बनाव आ सकता है।

असल में जिससे हम दूर हटते हैं, उसके प्रति हम फिर आकर्षित होने लगते हैं। दूर हटना, पास आने की तरकीब है, पास आना, दूर जाने की व्यवस्था है। हर चीज ऐसे ही खींचती रहती है।

आज अमेरिका में करोड़पति परिवारों के बच्चे भिखमंगों की भांति सड्कों पर घूमने सारी दुनिया में निकल पड़े हैं। गरीबी भी अब आकर्षण बन गई है। अमीरी बहुत है, तो गरीबी पुकारती है। विपरीत फिर खींचने लगता है।

तो जिसे परम मुक्ति चाहिए, उसे विपरीत से मुक्त होना पड़ेगा। ये दो विपरीत मार्ग मनुष्य के भीतर हैं। यदि इनको तत्व से कोई जान ले, तो इन दोनों का आकर्षण खो जाता है। और जब दोनों का ही आकर्षण खो जाता है, जब दोनों ही नहीं पुकारते, जब दोनों ही नहीं बुलाते, जब दोनों की विपरीतता मिट जाती है, और दोनों ही एक सिक्के के पहलू मालूम पड़ने लगते हैं-उसी क्षण व्यक्ति परम मुक्ति को उपलब्ध हो जाता है; उसी क्षण। उस क्षण के बाद उसके लिए संसार में कोई भी अर्थ नहीं है। उसके बाद उसके लिए मोह, वासना और तृष्णा का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, तत्व से जानता हुआ कोई भी योगी फिर मोहित नहीं होता है। इस कारण हे अर्जुन, तू सब काल में योग-युक्त हो।

सब काल में, सब समय में, हर स्थिति में योग-युक्त हो। यहां योग-युक्त का अर्थ दोनों अतियों के बीच मध्य में थिर हो जाना है, दो अतियों के बीच मध्य में थिर हो जाना है, निर्मोह हो जाना है। जो पुकारते हैं आकर्षण के बिंदु बहुत आसान है एक से दूसरे पर हट जाना। एक आदमी बहुत भोजन करता है, उसे उपवास आकर्षित करने लगता है। इसलिए उपवास जहां-जहां करवाया जाता है, वहां अक्सर ज्यादा भोजन करने वाले पेटू लोग चिकित्सा के लिए इकट्ठे होते हैं। आपके उरली काचन में आप सदा पाएंगे, वे ही लोग वहां चिकित्सा के लिए आएंगे, जो ज्यादा खा गए हैं, ओवर फेड!

यह बड़े मजे की बात है कि जो भी समाज धनी होता है; वह ज्यादा खाने लगता है, तो उस समाज में उपवास सहज बन जाता है। हिंदुस्तान में जैनों के समाज में उपवास भारी चीज है। और उसका कुल कारण यह नहीं कि उपवास भारी चीज है, उसका कुल कारण यह है कि हिंदुस्तान में ओवर फेड, ज्यादा खाने वाला समाज जैनों का है। जहां भी ज्यादा भोजन होगा, वहा उपवास आकर्षित करने लगेगा।

यह बड़े मजे की बात है कि गरीब समाज का जब धार्मिक दिन आएगा, तो उस दिन वे अच्छा भोजन बनाएंगे। और अमीर समाज का जब धार्मिक दिन आएगा, तो उस दिन वे उपवास करेंगे, दि अपोजिट! अगर गरीब आदमी का धार्मिक दिन आएगा, मुसलमान का अगर धार्मिक दिन आएगा, तो वह नए, ताजे और रंगीन कपड़े पहनकर सड़क पर निकलेगा। और अगर अमीर धार्मिक का धर्म का दिन आ जाए, तो वह सादगी वरण करेगा, उस दिन वह सादा होगा। वह जो विपरीत है, वह हमारे मन में जगह बना लेता है। वह जो विपरीत है, वह हमें खींचता रहता है। इसलिए ज्यादा खाने वाला उपवास में उत्सुक हो जाएगा। ज्यादा पहनने वाला नग्न होने की भी तैयारी दिखा सकता है।

लेकिन विपरीत पर चले जाने से अंत नहीं होता। विपरीत पर जो गया है, वह मोह के ही बंधन में गया है। इसलिए उलटे को मत चुनना। उलटे का चुनाव खतरनाक है। अगर चुनना ही हो, तो दोनों के मध्य को चुनना। दि एग्जेक्ट मिडिल इज दि प्याइंट आफ फ्रीडम। दो अतियों के बीच जो बिलकुल ठीक मध्य है, वही मुक्त होने की जगह है।

अगर बहुत भोजन करते हों, तो उपवास को मत चुनना, सम्यक भोजन को चुनना; बीच में रुक जाना। वह कठिन होगा। उपवास आसान पड़ेगा, क्योंकि अति आसान है सदा। अगर क्रोधी आदमी है, तो क्षमावान बनना आसान है, अक्रोधी होना मुश्किल है। दूसरी तरफ जाना सदा आसान है। क्योंकि हम एक तरफ अति पर आकर मोमेंटम इकट्ठा कर लेते हैं। फिर पेंडुलम को छोड़ दो, वह अपने आप दूसरी तरफ चला जाता है। बीच में रुकना बहुत कठिन है। योग-युक्त होने का अर्थ है, जो व्यक्ति सदा अतियों के बीच में खड़ा हो जाता है, वही योगी है। उसने ही जाना वह बिंदु, जहां से मुक्ति का आयाम शुरू होता है।

कृष्ण कहते हैं, इस कारण हे अर्जुन, तू सब काल में योग-युक्त हो और सदा ही मेरी प्राप्ति के लिए साधन करने वाला हो।

यह बिंदु भी थोड़ा-सा कठिन है। हम सदा ही परमात्मा को संसार के विपरीत रखते हैं। हम सदा ही मोक्ष को संसार के विपरीत रखते हैं। हम सदा यही सोचते हैं कि संसार को छोड़ना है और परमात्मा को पाना है। हमारे मन में परमात्मा भी एक अपोजिट है, एक विपरीतता है, संसार के विपरीत। जो संसार से ऊब गया, वह

कहता है, अब तो मुझे परमात्मा को पाना है। संसार के विपरीत हम परमात्मा के वैपरीत्य को खड़ा करते हैं, एक पोलर अपोजिट की तरह। एक आदमी कहता है, अब धन तो बहुत कर लिया, अब धर्म करना है।

लेकिन परमात्मा विपरीत नहीं है। और जिसका परमात्मा संसार के विपरीत है, उसका परमात्मा सांसारिक ही होगा। और जिसका परमात्मा संसार से उलटा है, उसका परमात्मा संसार के बाहर नहीं है, विदिन दि पोलर अपोजिट, वह जो विपरीत है, उसके भीतर ही है। वह भी संसार की एक अति है।

इसलिए कृष्ण का जीवन बहुत अदभुत है। कृष्ण का जीवन उन थोड़े-से जीवन में से एक है, जो संसार के विरोध में नहीं हैं। कृष्ण का जीवन विरागी का जीवन नहीं है, और कृष्ण का जीवन रागी का जीवन भी नहीं है। और कृष्ण वहीं खड़े हैं, जहां सब रागी खडे रहते हैं।

और कृष्ण ऐसे खड़े हैं, जैसे विरागी खड़े रहते हैं। कृष्ण का जीवन, दो विपरीत के बीच मध्य की खोज है। इतना मध्यस्थ व्यक्ति पृथ्वी पर शायद ठीक दूसरा नहीं हुआ।

हम तो आमतौर से कहेंगे कि अगर कृष्ण शांतिवादी हैं, तो युद्ध में कदम नहीं रखना चाहिए। और अगर युद्धवादी हैं, तो फिर परमात्मा और दिव्यता और ब्रह्म, इनकी बात नहीं करनी चाहिए। दो में से कुछ एक साफ चुन लो।

हम तो कहते हैं, अगर कृष्ण कहते हैं, अनासक्ति ही जीवन का सूत्र है, तो यह गोपियों के बीच नृत्य इनकसिस्टेंट है, असंगत है। यह नहीं चलना चाहिए। यह बंद होना चाहिए। और अगर यह गोपियों के बीच नृत्य ही चलना है और यह बांसुरी ही बजनी है, और यह मोर-मुकुट बांधकर नाचना ही है, तो फिर अनासक्ति और योग और समाधि और ब्रह्म, इसकी चर्चा बंद कर देनी चाहिए। दो में से कुछ साफ चुन लो।

और कृष्ण कहते हैं, हम चुनेंगे ही नहीं। इसलिए कृष्ण बहुत बेबूझ हैं, बहुत रहस्यमय हैं। गणित की तरह साफ-सुथरे नहीं हैं, काव्य की तरह रहस्यमय हैं। तर्क की तरह कटे-बंटे नहीं हैं, प्रेम की तरह बहुत रहस्यपूर्ण हैं। दोनों हैं एक साथ। और दोनों नहीं हैं। योग-युक्त होने का यही अर्थ है।

इसलिए हम कृष्ण को महायोगी कह सके। महायोगी कहने का कारण है, और वह कारण यह है कि कृष्ण शायद पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने दोनों अतियों के बीच में-ठीक बीच में-खड़े होने की व्यवस्था दी है। अगर हम ठीक बीच में भी खड़े हों, तो थोड़ा-सा मन डांवाडोल होता है। अगर हम बीच में भी खड़े हों, तो हम इसीलिए खड़े होना चाहते हैं कि संसार से कैसे मुक्त हो जाएं! अगर संसार से कैसे मुक्त हो जाएं, यही भीतर लगा हुआ है, तो आप थोड़े-से झुके हुए खड़े होंगे, बीच में खड़े नहीं हो सकते हैं। मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की दो पत्नियां थीं। और निश्चित ही, दो पत्नियां जिसकी होती हैं, वह जानता है कि उसकी क्या मुसीबत हो सकती है! एक पत्नी में आप हजार का गुणा कर लें, दो का नहीं। क्योंकि जब दो पत्नियां होती हैं, तो जोड़ नहीं होता, गुणनफल होता है। बड़ी मुसीबत में था और निरंतर यह विवाद था, दोनों पत्नियां आमने-सामने पूछ लेती थीं उससे, कि बोलो, हम दोनों में सुंदर कौन है? मुल्ला नसरुद्दीन कहता था, तुम दोनों एक-दूसरे से ज्यादा सुंदर हो!

लेकिन पत्नियों को शक था कि वह किसी की तरफ ज्यादा झुका हुआ होगा ही। दो स्त्रियां मान ही नहीं सकतीं कि उनके बीच में कोई पुरुष खड़ा हो, तो वह जरा-सा कहीं ज्यादा झुका हुआ नहीं होगा। और ऐसे सौ में निन्यानबे मौके पर यह बात सच भी है। उनका शक काफी दूर तक सही है। हम बीच में खड़े हो ही नहीं सकते।

पहली पत्नी की मृत्यु हुई, तो उसने कहा कि जिंदगी में जो हुआ हुआ, लेकिन एक बात का वायदा कर दो कि मरने के बाद दोनों पत्नियों की तुम कब्र बनाना और अपनी कब्र बिलकुल ठीक बीच में बनाना, जस्ट राइट इन दि मिडिल। क्योंकि जिंदगी में जो हुआ हुआ; लेकिन मरने के बाद कयामत तक मैं कब्र में परेशान नहीं होना चाहती कि तुम जरा उस तरफ झुके हुए हो। बिलकुल ठीक ज्यामिति के हिसाब से, गणित के हिसाब से साफ कर लेना। नसरुद्दीन ने वायदा किया।

दूसरी पत्नी का भी आग्रह यही था। कभी नसरुद्दीन ने बताया नहीं। पहली पत्नी का नाम था फातिमा, दूसरी पत्नी का नाम था सुलाना। उसका मन सदा दूसरी की तरफ थोड़ा झुका हुआ था, लेकिन यह कहने की हिम्मत उसे कभी जुटी नहीं।

दोनों मर गईं, तो नसरुद्दीन ने अपने कब्र बनाने वाले को कहा कि बिलकुल ठीक बीच में बनाना मेरी कब्र, लेकिन जरा-सी झुकी हुई सुलाना की तरफ; जरा-सी, जस्ट ए बिट लीनिंग टुवर्ड्स सुलाना। बनाना बीच में, लेकिन जरा तिरछी बनाना, झुकी हुई! लेकिन कब्र बनाने वाले ने कहा कि तुम्हारी दोनों पत्नियों की वसीयत में लिखा हुआ है, ठीक बीच में होनी चाहिए। और दो मृत आत्माओं को मैं कष्ट नहीं देना चाहूंगा। और फिर कौन झंझट में पड़े तुम्हारी। तो मैं किसी झंझट में पीछे नहीं पड़ना चाहता हूं। मैं तो ठीक बीच में बना दूंगा। मैं झुकी हुई नहीं बना सकता।

तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, तो फिर ऐसा करना कि मुझे करवट लेकर भीतर लिटा देना, सुलाना की तरफ करवट लेकर; सीधा मत लिटाना!

बीच में होना बड़ा कठिन है। रस हमारा चुनाव करना चाहता है। अगर हम परमात्मा को भी चुनते हैं, तो संसार के खिलाफ। लेकिन जो आदमी संसार के खिलाफ परमात्मा को चुनता है, वह परमात्मा को चुनता ही नहीं। क्योंकि परमात्मा को केवल वही चुन सकता है, जिसने सब चुनाव छोड़ दिए, च्वाइसलेस हो गया, जिसका कोई चुनाव नहीं है। जो कहता है, संसार भी मेरे लिए परमात्मा है; जो कहता है, परमात्मा भी मेरे लिए संसार है; अब मुझे कुछ फर्क न रही। जो कहता है, जीवन मुझे मृत्यु है, मृत्यु मुझे जीवन है। जो कहता है, धन भी मेरे लिए निर्धनता है, और निर्धनता भी मेरे लिए धन है। ऐसा व्यक्ति ही ठीक मध्य में खड़ा होता है। और ऐसे मध्य में खड़े व्यक्ति का नाम ही योग-युक्त है।

योग-युक्त का अर्थ है, पूर्ण रूप से संतुलित हो गया जो। जैसे कि तराजू का काटा बीच में खड़ा हो जाए और दोनों पलड़े बराबर हों, जरा भी यहां-वहां झुके हुए नहीं। जब तराजू का काटा ठीक बीच में होता है, तो योग-युक्त होता है। ऐसे ही जब आपका चित्त ठीक बीच में होता है, तो योग-युक्त होता है।

जीवन के समस्त विरोधों में मध्य में खड़े हो जाने का नाम योग है। जीवन की समस्त विपरीतताओ में अचुनाव का नाम योग-युक्त होना है। और ऐसा जो योग-युक्त है, वही, कृष्ण कहते हैं, मेरी प्राप्ति का अधिकारी है।

इसे ठीक से खयाल में ले लें।

परमात्मा को कभी भी संसार के विपरीत लक्ष्य न बनाएं। मोक्ष को कभी भी संसार के विरोध में खडा न करें। मोक्ष किसी का भी विरोध नहीं है। मोक्ष केवल चुनाव का विरोध है। चुनाव ही मत करें। और जिस क्षण भी आप चुनाव-शून्य हैं, च्वाइसलेस हैं, उसी क्षण वह परम घटना घट जाती है, जिसकी कृष्ण चर्चा कर रहे हैं। क्योंकि योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर, वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दानादि के करने में जो पुण्य फल कहा है, उस सबको निस्संदेह उल्लंघन कर जाते हैं और सनातन परम पद को प्राप्त होते हैं।

यह बड़ा क्रांतिकारी वचन है। और गीता में होगा, इसका खयाल भी एकदम से नहीं आता। क्योंकि कृष्ण यह कह रहे हैं कि जो पुरुष, जो योगी पुरुष इस तत्व के रहस्य को जान लेते हैं, उनके लिए वेद का ज्ञान, यज्ञ के फल, दान का पुण्य, सब व्यर्थ हो जाते हैं। वे सब का उल्लंघन कर जाते हैं।

वेद के ज्ञान का फिर कोई मूल्य नहीं है उसे, जिसने तत्व से जान लिया। तब वेद सिर्फ तोतारटत रह जाते हैं। तब वेदपाठी केवल शब्दों का जानकार रह जाता है, मात्र कोरा पंडित। और कोरे पंडित से ज्यादा दयनीय अवस्था इस जगत में किसी की भी नहीं है, अज्ञानी की भी नहीं है।

अज्ञानी के लिए भी उपाय है, पंडित के लिए उपाय भी नहीं बचता। क्योंकि अज्ञानी को एक तो विनम्रता होती ही है कि मैं नहीं जानता हूं। पंडित को वह विनम्रता भी खो जाती है। पंडित को लगता है, मैं जानता तो हूं ही, और जानता बिलकुल नहीं है।

पंडित का अज्ञान और भी अहंकारी अज्ञान हो जाता है। जानता हुआ, झूठा ही जानता हुआ..। क्योंकि शब्द को जानकर सत्य कभी जाना नहीं गया है। हा, सत्य को जानकर शब्द मैं कोई सत्य को खोज लेता है, वह दूसरी बात है। लेकिन सत्य, शब्द को जानकर कभी नहीं जाना गया है। सत्य को जानकर शब्द जान लिए जाते हैं। जो तत्व से जान लेता है, अनुभूति से, उसके लिए वेद परम ज्ञान के आधार हो जाते हैं। लेकिन जो वेद को ही जानता है, जो वेद को ही जानता है, वह वैसी स्थिति में होता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक राह से गुजरता था और पानी भरने को कुएं पर झुका। भूल-चूक हो गई और कुएं में गिर गया। बड़ी देर तक हाथ. पैर मारे, बड़ी देर तक चिल्लाया। और तब राह से कोई ग्रामीण, कोई बुद्ध बिलकुल गंवार। झांककर उसने नीचे देखा। उसने कहा, अच्छा! अरे! तो तुम! तो मैं तुम्हें अभी निकाले देता हूं। लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हारा बोलना बिलकुल असंस्कृत है। मैं तू करके अजनबियों से बात की जाती है? तो उस आदमी ने कहा, रुको। मैं महीने, पंद्रह दिन में वापस लौटूंगा सुसंस्कृत होकर! नसरुद्दीन ने कहा कि मैं रुक सकता हूं महीने, पंद्रह दिन। लेकिन जिस आदमी को शब्दों का भी ठीक-ठीक बोध नहीं, बोलचाल की भाषा भी ठीक नहीं आती, उसके हाथ से निकाला जाना पसंद नहीं कर सकता हूं।

शब्द से घिरे हुए लोग, संसार में नसरुद्दीन जैसा कुएं में पड़ा है, ऐसे पड जाते हैं। अगर कबीर जैसा आदमी आकर उनका द्वार खटखटाए, तो उन्हें बिलकुल न जंचेगा। क्योंकि कबीर वेद को बिलकुल नहीं जानते। अगर नानक उनका हाथ पकड़कर कहें कि आओ, मैं तुम्हें कुएं के बाहर निकाल लूं; तो वे कहेंगे कि संस्कृत कहां तक पढ़ी है? काशी में कितने दिन रहे हो? कितने वेदों के जानकार हो? नानक को किसी वेद का कोई भी पता नहीं है। और फिर भी वेदों में जो कहा है, वह सब पता है। और कबीर ने कोई वेद पढ़ा नहीं है, फिर भी वेदों में जो कहा है, कबीर जितना जानते हैं, वेदपाठी नहीं जानते।

जानने का एक और द्वार भी है सीधा, इमीजिएट, माध्यम से मुक्त, शब्द से मुक्त, उसको ही तत्व-शान कहा है, वही है तत्व-शान। उस तत्व-शान को जो उपलब्ध होता है, तब फिर वेदों का पढना और यज्ञ करना, और तप और दान, इन सभी का उल्लंघन कर जाता है। इन सब का फिर कोई अर्थ नहीं रह जाता। ये सब उनके लिए हैं, जिन्होंने अभी जानने की वास्तविक यात्रा शुरू ही नहीं की है, जिन्होंने अभी खोज के ऊपर पहला कदम ही नहीं रखा है।

बहुत हैं लेकिन ऐसे लोग, जो शब्दों के संग्रह को सोच लेते हैं ज्ञान की उपलब्धि। जो इकट्ठा करते जाते हैं शब्दों को, शास्त्रों को, और सोचते हैं कि मुक्ति करीब आ रही है। उन्हें पता नहीं कि वे केवल शब्दों के बोझ से और भी दबे जा रहे हैं। मुक्ति शायद और भी दूर हुई जा रही है। शायद शब्दों का, शास्त्रों का बोझ उन्हें और भी संसार की गहरी पर्तों में डुबाने वाला सिद्ध होगा। क्योंकि शास्त्र बोझ ही बन जाते हैं, सत्य ही मुक्ति बनता है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वेदों का कोई उपयोग नहीं है। इसका यह भी अर्थ नहीं कि वेदों में रहस्य नहीं छिपा है। इसका यह भी अर्थ नहीं कि शब्द की सामर्थ्य नहीं है। लेकिन शब्द की सामर्थ्य भी उसी के लिए है, जो शब्द पर रुकने के लिए तैयार नहीं है, शब्द के पार जाना है। और वेद भी उसके लिए सहयोगी हो जाता है, जो वेद को पार करने की क्षमता रखता है। और गुरु केवल उन्हीं के लिए गुरु सिद्ध होते हैं, जो गुरु से भी मुक्त होने की क्षमता, साहस से भरे हैं।

नहीं तो गुरु भी बंधन बन जाते हैं। नहीं तो शास्त्र भी बंधन बन जाते हैं। नहीं तो वे शब्द भी, जो सत्यों के लिए प्रयुक्त किए हैं, वे भी केवल कारागृह ही सिद्ध होते हैं और हम उनमें कैद हो जाते हैं।

कृष्ण कहते हैं, जो तत्व से जान लेता है योगी, वह सबसे मुका हो जाता है।

लेकिन वेद से ही नहीं। उन्होंने और बातें भी कही हैं। उन्होंने कहा, यज्ञ से भी मुका हो जाता है। क्योंकि यज्ञ से अर्थ है, समस्त क्रिया-कांड, रिचुअल, धर्मों का समस्त क्रिया-कांड। धर्मों के समस्त शास्त्र-ज्ञान से अर्थ है, वेद। धर्मों के समस्त रिचुअल, क्रिया-काड, उससे अर्थ है, यज्ञ। उससे भी मुक्त हो जाता है। क्योंकि जिसने अपने भीतर परमात्मा को जाना, अब कोई भी क्रिया, अब कोई भी कर्म, अब कोई भी रिचुअल, कोई भी उपासना-पद्धति व्यर्थ हो गई। अब बाहर दौड़ने का कोई प्रयोजन न रहा।

जिसने भीतर की ही अग्नि को जान लिया, अब बाहर अग्नियां जलाकर वह उनकी पूजा करने बैठेगा, तो पागल है। और अगर कभी बैठ भी जाता हो, तो सिर्फ इसीलिए कि जिन्होंने भी भीतर की अग्नि नहीं जलाई है, शायद उनके लिए सहयोगी हो सके। और अगर खंडन भी नहीं करता है कि यह व्यर्थ है, तो सिर्फ इसीलिए कि जिनको अभी भीतर का कोई पता नहीं, शायद बाहर की अग्नि भी उनके लिए प्रतीक बने, सहयोगी बने, यात्रा में साथी हो जाए।

लेकिन जब भी ऐसा व्यक्ति देखेगा कि बाहर की अग्नि भीतर की अग्नि तक पहुंचने में सहयोगी न रही, बाधा बन गई, तो विरोध भी करता है, खंडन भी करता है। और इसीलिए निरंतर धार्मिक व्यक्ति पुराने रिचुअल्स, पुराने किया-काड के विपरीत पड़ जाते दिखाई पड़ते हैं। लेकिन तय करना मुश्किल है कि वह क्या करेगा। अगर आप यज्ञ कर रहे हों, तो वैसा योगी जिसने तत्व से जाना है, क्या करेगा, कहना मुश्किल है। अगर उसको आपके भीतर भी बाहर जलती अग्नि की थोडी-सी भी झलक दिखाई पडे, तो वह बराबर आपके यज्ञ का सहयोग करेगा। लेकिन अगर आपके भीतर धुआं ही धुआं, अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़े और बाहर की अग्नि उस अंधकार को और भी बढ़ाती हो, तो वह निश्चित ही विरोध करेगा।

इसलिए ऐसे व्यक्ति के वक्तव्य निरंतर असंगत होंगे, इनकंसिस्टेंट होंगे। कभी वह कहेगा कि ठीक है मंदिर; और कभी कहेगा, व्यर्थ है। और कभी कहेगा कि इस मूर्ति में परमात्मा है; और कभी कहेगा, इस मूर्ति को तोड़ डालो, इसी के कारण परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है। निर्भर करेगा इस बात पर कि वह किससे कह रहा है।

लेकिन यश की ही बात नहीं करते छोड़ने की, वे कहते हैं, तप भी, तप भी व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि जिसे भीतर का स्रोत दिखाई पड़ गया, अब वह व्यर्थ अपने को कष्ट देने की चेष्टा में संलग्न नहीं होता है।

और अक्सर तो ऐसा होता है कि जो लोग अपने को कष्ट देते हैं, वे कष्ट देने में रस पाते हैं-सैडिस्ट हैं। अपने को सताने में या दूसरे को सताने में। या सैडिस्ट हैं या मैसोचिस्ट हैं। जो लोग तप को बहुत आदर देते हैं, वे अक्सर मैसोचिस्ट होते हैं, खुद को सताने में रस पाते हैं।

मैसोच एक लेखक हुआ है, जो अपने को कोड़े मारता, तभी प्रफुल्लित हो सकता। अपने को काटे चुभाता, अपने को सताता, भूखा मारता, अपनी नसों को काट लेता, तभी उसे थोड़ी-सी सुख की रसानुभूति होती।

और एक दूसरा लेखक हुआ, मारकुस सादे। वह जब तक दूसरे को सता न ले! तो वह अपने प्रेमियों को मारने के लिए हंटर रखता, अपनी प्रेयसियों को सताने के लिए पूरा इंतजाम अपने साथ रखता। एक झोला रखता। क्योंकि नाखून ज्यादा नहीं सता सकते, तो वह छुरी-काटे अपने साथ रखता। ताला बंद कर देता, और तब प्रेयसी को प्रेम करना शुरू करता, और प्रेम का अंत अक्सर होता कि वह लहूलुहान कर देता। लेकिन जब तक वह दूसरे को लहूलुहान न कर ले, तब तक उसे रस की अनुभूति न होती।

ये विकृतियां हैं। अध्यात्म में भी ये विकृतियां खूब प्रवेश कर जाती हैं। कुछ लोग हैं, जो अपने को सताने में ही मजा लेने लगते हैं। और इन लोगों के आस-पास, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं, मैसोच जैसे लोग, इनके आस-पास सैडिस्ट इकट्ठे हो जाते हैं, जो दूसरे को सताने में मजा लेते हैं।

अगर एक आदमी ने बीस दिन का उपवास किया है, तो उसके जुलूस में पचासों लोग इकट्ठे होकर सम्मिलित होंगे। आप देख लेना, जो उपवास किया है, वह मैसोचिस्ट है, और जो जुलूस में सम्मिलित हुए हैं, वे सैडिस्ट हैं। इनको मजा आ रहा है कि इसने उपवास किया,

इनको बडा मजा आ रहा है कि यह आदमी भूखा मरा। यह भूखा मरने वाला है, इसने अपने को सताकर मजा लिया। ये इसके सताए जाने में मजा ले रहे हैं। इनको बड़ा रस आ रहा है।

तप के नाम से सौ में निन्यानबे मौकों पर मानसिक बीमार संलग्न होते हैं। लेकिन एक व्यक्ति सौ में ऐसा भी होता है, जो तप में मानसिक बीमारी की तरह नहीं जाता। वस्तुत: सत्य की खोज में जो भी कष्ट आ जाएं, उन्हें सहने की तैयारी दिखाता है, उसी का नाम तप है। सत्य की खोज में जो भी कष्ट आ जाएं! कष्टों को निर्मित नहीं करता। अगर वह ध्यान करने खड़ा है और धूप आ जाए, तो वह धूप को सहने को तैयार होता है। लेकिन वह ध्यान करने के लिए धूप की खोज नहीं करता, कि छाया में बैठा हो, तो ध्यान न कर सके। अगर उसे लगे कि ध्यान करते वक्त अगर भोजन नहीं लिया जाए तो ध्यान गहरा हो जाता है, तो वह उपवास भी करता है। लेकिन वह ऐसा नहीं कहता कि उपवास करो, तो ही ध्यान हो सकेगा। सहज जो भी कष्ट उसे झेलने पडे परम सत्य की खोज में, वह उनके लिए तैयार होता है, सहर्ष!

लेकिन तब उनकी प्रशंसा की वह चिंता नहीं करता। अगर आप उससे कहें कि तुमने धूप में रहकर बडा काम किया है, हम तुम्हारी पूजा करेंगे। तो वह कहेगा कि तुम पागल हो। धूप में खड़े रहकर मैंने कोई काम नहीं किया है। काम तो मैं भीतर कर रहा था, धूप आ गई, तो मैंने उसकी बाधा को अस्वीकार नहीं किया। – मैंने उसे स्वीकार कर लिया। ध्यान तो मैं भीतर कर रहा था। भूख लग गई, अगर भोजन के लिए जाऊं तो बाधा पडेगी, इसलिए भोजन के लिए नहीं गया; भूख के लिए राजी हो गया। काम तो मैं भीतर कर रहा था। मैं भूखा नहीं रहा हूं। मैं धूप में नहीं खड़ा हूं। यह परिस्थिति थी, उसे मैंने शांति से सह लिया है।

तप का वास्तविक अर्थ है, सत्य की खोज में जो भी दुख आ जाएं, उन्हें सहज स्वीकार करने की तैयारी। लेकिन सत्य की खोज से विचलित न होना, सत्य की खोज से रंचमात्र भी यहां-वहां न जाना, चाहे कितने ही कांटे हों पथ पर।

लेकिन बीमार आदमी उस पथ पर चलेंगे ही नहीं, जहां काटे न हों। वे कहेंगे, काटे कहां हैं! पहले कांटे बिछाओ, तब हम चलेंगे। यह फर्क समझ लेना। सत्य का खोजी अगर काटे रास्ते पर हों, तो उन काटो को भी झेलने को तैयार रहेगा। लेकिन रुग्ण, परवटेंड माइंड, सैडिस्ट हो या मैसोचिस्ट, वह कहेगा, यह सत्य का रास्ता हो ही नहीं सकता। इस पर काटे कहां हैं? पहले कांटे बिछाओ, तब हम चलेंगे! अगर उसको फूलों वाला रास्ता मिल जाए, तो वह मुकर जाएगा कि इस पर हम नहीं जाते। इस पर तो फूल बिछे हैं! और सत्य के रास्ते परेतो सूली ही लगती है; फूल कहौ!

यह आदमी सूली में उत्सुक है, सत्य में नहीं। यह कीटों में उत्सुक है, सत्य में नहीं। तो यह अपने लिए काटे निर्मित करता रहेगा। ऐसा तप रुग्ण है।

लेकिन वह एक प्रतिशत तप भी, कृष्ण कहते हैं, छूट जाता है। निश्चित ही! जब तत्व का बोध हो जाए, तो तप करने की क्या जरूरत रही? जब मंजिल मिल जाए, तो रास्ते पर दौडने का फिर क्या प्रयोजन है? फिर कोई भी प्रयोजन नहीं है। अगर कभी सत्य को पा लेने वाला भी तप करता है, तो उसका एक ही कारण होता है, ताकि दूसरे तप को सहने की सामर्थ्य को पैदा कर लें। और कोई प्रयोजन नहीं होता।

अगर महावीर ने ज्ञान के बाद भी उपवास किए तो इसलिए नहीं कि अब उन्हें उपवास की कोई भी जरूरत थी। और अगर महावीर शान के बाद भी नग्न ही बने रहे, उन्होंने वस्त्र न पहने, तो इसका यह कारण नहीं कि वस्त्रों से उन्हें अब कोई भय था, और नग्न रहने की कोई जरूरत थी। लेकिन जो पीछे लोग आ रहे हैं, अगर महावीर उपवास छोड़ दें, नग्नता छोड़ दें, महावीर वापस महल में आकर रहने लगें, तो वे जो पीछे आने वाले लोग हैं, वे बीच की यात्रा कभी कर ही न पाएंगे। शायद वे यही समझेंगे कि महावीर को अपनी भूल पता चल गई, लौट आए अपने घर! हम पहले से ही अपने घर हैं। अच्छा हुआ, झंझट में न पड़े!

महावीर को महल का अब कोई भय नहीं है। महावीर के लिए महल और जंगल बराबर हो गए। लेकिन फिर भी महावीर जंगल में रहे चले जाते हैं, केवल उन लोगों के प्रति करुणावश, जिनको अभी महल के कारागृह से ऊपर उठना है।

वैसा व्यक्ति अगर तप जारी भी रखे, तो सिर्फ इसलिए; अगर वैसा व्यक्ति वेद की चर्चा भी जारी रखे, तो सिर्फ इसलिए कि किसी के काम पड़ जाए। वैसा व्यक्ति अगर यश में भी सहयोगी हो, तो इसीलिए कि जो अभी तत्व तक नहीं उठ सकते, वे शायद रिचुअल के माध्यम से, उपासना से, कोई क्रिया-काड से सहारा पा लें और ऊपर उठ जाए।

कृष्य कहते हैं, वैसा व्यक्ति दान से भी मुक्त हो जाता है।

दान भी सत्य की खोज में एक सहयोगी मार्ग है। दान का अर्थ है, जो भी हम दे सकें-वह दे दें; और जिसको जरूरत हो, उसे दे दें। दान का मौलिक अर्थ है हम जो व्यर्थ है, उसे संगृहीत न करें। दान का गहरा अर्थ है, अपरिग्रह। हम, जो जरूरी हो, उतना काफी; शेष सब उन्हें दे दें, जिन्हें उसकी जरूरत है। और कभी ऐसा क्षण भी आ जाए कि हमसे ज्यादा जरूरत किसी को हो, तो भी हम दे दें।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, ऐसा व्यक्ति दान से भी मुक्त हो जाता है। यह और भी कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि इसका अर्थ हुआ कि वैसा व्यक्ति दान नहीं करता है।

नहीं, इसका यह अर्थ नहीं कि वैसा व्यक्ति दान नहीं करता। इसका यह अर्थ हुआ कि वैसा व्यक्ति अब पाता ही नहीं कि कोई पराया है। वैसा व्यक्ति अब पाता ही नहीं कि मैं अलग हूं। वैसा व्यक्ति अब पाता ही नहीं कि यह जगत और मेरे बीच कोई फासला है। वैसा व्यक्ति दान नहीं करता, उसका इतना ही अर्थ है कि वैसे व्यक्ति के पास अब दान करने को कुछ बचा नहीं; उसने स्वयं को ही दान कर दिया है। अब सब समर्पित हो गया है; सब विसर्जित हो गया है। एक छोटी-सी घटना कहूं शायद उससे खयाल में आए।

कबीर के घर बहुत लोग इकट्ठे होते हैं रोज। वे रोज उन्हें भोजन करा देते हैं। कबीर का बेटा मुश्किल में पड़ गया है। और उसने कहा, हम पर कर्ज होता चला जाता है। रोज लोग आते हैं, आप

रोज उनसे जाते वक्त कहते हैं, भोजन कर जाओ। वे भजन-कीर्तन करने आते हैं, उनको जाने दें, भोजन के लिए मत रोकें। कबीर रोज कहते कि कल खयाल रखूंगा। कल फिर वही भूल होती। लोग भजन-कीर्तन करने सुबह आते, और जब जाने लगते, तो कबीर कहते, भोजन तो कर जाओ!

आखिर एक दिन उसके बेटे ने कहा कि अब यह असंभव है और आगे खींचना। क्या मैं चोरी करने लगूं? कर्ज बढ़ता चला जाता है!

तो कबीर एकदम आनंदित हो गए और उन्होंने कहा, पागल, अगर चोरी से यह हल हो सकता था, तो तूने पहले क्यों न सोचा? कमाल तो थोड़ा दिक्कत में पड़ा, उनका बेटा तो दिक्कत में पडा। समझा उसने कि शायद कबीर समझ नहीं पाए कि मैंने क्या कहा, चोरी! उसने कहा, आप समझे भी! सुना भी! मैं कह रहा हूं क्या मैं चोरी करने लग? कबीर ने कहा, बिलकुल समझा। लेकिन इतने दिन से तेरी बुद्धि कहां गई थी?

कमाल ने कहा, अब बात को आखिर तक ही खींचना पड़ेगा। कमाल था बेटा, और कमाल का ही बेटा था। कबीर ने उसे नाम दिया था और अदभुत बेटा था। उसने कहा, तो फिर ठीक है। तो आज मैं चोरी को जाता हूं।

रात उठा, आधी रात, और उसने कहा, मैं जा रहा हूं। आज्ञा है? आशीर्वाद है? कबीर ने कहा कि प्रभु तेरी सब भांति सहायता करें। कमाल केवल कबीर की परीक्षा ले रहा है कि बात कहो तक जाती है! हद्द इसकी कहा है! कमाल ने कहा, लेकिन अकेला शायद सामान ज्यादा चुरा लूं र तो लाने में दिक्कत हो। क्या आप भी साथ चलने को तैयार हैं? कबीर ने कहा, अब तो नींद टूट ही गई। चलो, चला चलता हूं।

तब कमाल की बेचैनी बहुत बढ़ने लगी। यह क्या हो रहा है। कबीर! और चोरी को जा रहा है! पर कमाल ही था, उसका बेटा ही था, उसने कहा, इतनी जल्दी छुटकारा ठीक नहीं। बात पूरे लाजिकल एंड, तर्क के अंत तक ले जानी जरूरी है, तभी शायद पहचान हो पाए कि यह मजाक है या गंभीरता है।

जाकर उसने सेंध लगाई। कबीर पास खड़ा रहा। सेंध लगाते वक्त उसका हाथ कंपता था। कभी चोरी की नहीं। कभी चोरी का सोचा नहीं। लेकिन कबीर ने उससे कहा, तेरा हाथ क्यों कंपता है? चोरी ही कर रहे हैं न, कुछ बुरा तो नहीं कर रहे! कबीर के बेटे ने अपने सिर पर हाथ ठोंक लिया। उसने कहा, हद्द हो गई! चोरी ही कर रहे हैं, कुछ बुरा तो नहीं कर रहे हैं! अब बुरा और क्या होता है? कबीर ने कहा, यह हाथ का कंपना बहुत बुरा है। जब चोरी कर रहे हैं, तो पूरी कुशलता से करनी चाहिए।

योग कर्म की कुशलता है, हाथ न कंपे।

फिर कमाल भीतर गया, और एक बोरा गेहूं खींचकर बाहर लाया। कबीर ने उसे खींचने में सहायता दी। और जब कमाल उसे अपने कंधे पर रखने लगा, उठाने लगा, तो कबीर ने कहा, रुक। घर के लोगों को बता आया कि नहीं? घर के लोगों को जाकर कम से कम कह दे कि हम एक बोरा चुराकर लिए जा रहे हैं! कमाल ने कहा, यह चोरी हो रही है या क्या हो रहा है!

और जब कमाल ने कबीर से पूछा कि इस सबका मतलब क्या है? तो कबीर ने कहा कि जब से हम न रहे, वही रह गया, तो अब किसकी चोरी, और कौन करे! और कौन दान दे और कौन ले? उसी का माल है। वही वहा सोते सोच रहा है कि मेरा है। मैं भी उसी का। वही मेरे भीतर कह रहा है कि ले चलो। वही सुबह कीर्तन करने आएगा। उससे कैसे कहूं कि बिना भोजन किए जाओ? सभी उसका है।

इस तल पर उठ जाने की भी संभावना है तत्वविद की। तत्वविद निश्चित ही इस तल पर उठ जाता है, जहां चोरी चोरी नहीं रह जाती; जहां दान दान नहीं रह जाता; जहां नीति- अनीति की सब सीमाएं अतिक्रमित हो जाती हैं। जहां सब, जिसे हम धर्म कहते हैं, वह कचरे की

भांति नीचे गिर जाता है और व्यक्ति उस परम चैतन्य के साथ इतना एकरस, एकभूत हो जाता है कि जो करवा रहा है, वही। जो कर रहा है, वही। जिस पर हो रहा है, वही। भेद जहां नहीं, वहां नीति कहां? भेद जहां नहीं, वहां दान, धर्म, पुण्य कहां!

भेद जहां नहीं, वही कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि अगर तू तत्वविद हो जाए, तो कौन मारता है और कौन मरता है! पागलों की बातें हैं। न कोई मरता, और न कोई मारता है। और ये जो सामने तेरे खड़े हैं, इनमें भी वही है, जो कभी मरता नहीं। और तू जो लड़ने खड़ा है, तुझमें भी वही है, जो कभी मरता नहीं। और जो ये देहें खडी हैं, ये देहें तो मर ही जाती हैं।

कृष्ण का यह जो संदेश है, बहुत एमारल है, बहुत अतिनैतिक है। इसलिए जिन लोगों ने-डयूसन ने, या शापेनहार ने जब पहली दफा गीता पढ़ी, तो बहुत घबड़ा गए। घबड़ा गए, क्योंकि इसका मतलब क्या हुआ? इतनी अतिनैतिक बात, तो हमारी नीति का क्या होगा? हमारी नीतिमत्ता का क्या होगा? हमारी मारैलिटी का क्या होगा? अगर दान भी व्यर्थ हो जाता है, तप भी व्यर्थ हो जाता है, यश भी व्यर्थ हो जाता है, वेद भी व्यर्थ हो जाते हैं, तो सभी कुछ व्यर्थ हो जाता है, जिसे हमने आधार समझा है।

निश्चित ही, जो परम आधार की तरफ चलता है, उसके लिए हमारे समाज के द्वारा दिए गए सभी आधार व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन वह अनैतिक नहीं हो जाता; वह अतिनैतिक हो जाता है। वह इम्मारल नहीं होता, एमारल हो जाता है या सुपर मारल हो जाता है। शायद वही परम नैतिकता है, सुप्रीम मारैलिटी है। समस्त नीति के पार हो जाना ही शायद परम नीति है। और समस्त धर्मों के ऊपर उठ जाना ही शायद परम धर्म है।

कृष्ण ने यह उल्लंघन की बात कही है कि इन सबका उल्लंघन करके, वह सनातन पद को, परम पद को प्राप्त होता है। वह फिर ब्रह्म जैसा हो जाता है। वह ब्रह्म ही हो जाता है।